भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन

राष्ट्रीय विचार गोष्ठी

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादकीय

भारत की लोकप्रिय भाषा, जन-जन की भाषा और राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' अपनी संस्थापना के प्रारम्भ से ही विज्ञान का प्रचार-प्रसार करती आ रही है। अप्रैल 1915 से 'विज्ञान' (मासिक पत्रिका) तथा 1958 से 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' (त्रैमासिक शोध पत्रिका) का निरन्तर प्रकाशन परिषद् के संकल्प के दो महत्वपूर्ण कदम रहे हैं। पत्र-प्रकाशन के अतिरिक्त प्रसार के अन्य कार्यक्रमों के रूप में प्रतिवर्ष अनेक अवसरों पर स्थानीय स्तर की विचार गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं और विद्वानों के व्याख्यान भी कराये जाते हैं। इन गोष्ठियों के माध्यम से विज्ञान को अधिकाधिक लोकप्रिय और जनसुलभ बनाने के उद्देश्य से आपस में विचारों के आदान-प्रदान का अवसर प्राप्त होता रहा है।

वर्ष 1983 में परिषद् द्वारा 'वैज्ञानिक अभिरुचि' विषय पर एक द्विदिवसीय अखिल भारतीय संगोष्ठी (27-28 सितम्बर) का आयोजन हुआ जिसमें देश के विभिन्न भागों के वैज्ञानिकों और लेखकों ने भाग लिया। उनके द्वारा गोष्ठी में व्यक्त विचारों (92 पृष्ठ) को अलग से प्रकाशित भी किया गया था।

14 दिसम्बर 1987 को पुनः 'विज्ञान, तकनीकी और पर्यावरण 2001' नाम से एक अखिल भारतीय स्तर की संगोष्ठी आयोजित की गई थी। इस संगोष्ठी में प्रस्तुत आलेखों को भी 'विज्ञान, तकनीकी और पर्यावरण 2001' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया था।

इन संगोष्ठियों के माध्यम से जो विचार-विमर्श हुए एवं जो परिकल्पनायें सामने आयीं उनके विषय में हमारा ऐसा अनुभव रहा कि विचारों का आदान-प्रदान मात्र हिन्दी भाषा-भाषियों तक ही सीमित रह गया है। हम राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए कृतसंकल्प अवश्य हैं, किन्तु जितना हमें हिन्दी से प्रेम है, उतना ही हमें हिन्दी भाषा की सहेलियों—बंगला, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि अन्य भारतीय भाषाओं से भी हैं। इन भाषाओं में किस प्रकार का विज्ञान लेखन हो रहा है, हिन्दीतर भाषा-भाषियों के क्या विचार हैं, यह जानने की हमारी इच्छा प्रबल से प्रबलतर होती

गई पर अपनी सीमाओं के कारण चाहते हुए भी हमें इस बात में सफलता नहीं मिल पाई थी कि हम हिन्दी के साथ अन्य भाषा-भाषियों को एक मंच पर ला सकें, उन्हें सुन सकें, उनके विचार जान सकें। विज्ञान लेखन में उनकी क्या कठिनाइयाँ रही हैं, वर्तमान कठिनाइयाँ क्या हैं और उन कठिनाइयों पर उन्होंने कैसे विजय प्राप्त की, यह जानने को हम सदैव उत्सुक रहे हैं।

हमारी यह उत्सुकता ही प्रेरणा बनी। हमारे प्रयास जारी रहे। अन्ततः हमारे प्रयासों को मूर्त रूप दिया एन० सी० एस० टी० सी०, नई दिल्ली ने 80 हजार रूपये की सहायता राशि प्रदान करके। इसके लिए हम केन्द्र सरकार व एन० सी० एस० टी० सी० के निदेशक डॉ० नरेन्द्र सहगल के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने कृपा करके विज्ञान परिषद् को यह धनराशि सुलभ कराई। इस आर्थिक सहायता के अभाव में हमारे लिए 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन : समस्यायें और समाधान' (11-13 दिसम्बर, 1988) त्रिदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन कर पाना कदापि संभव न होता। 11-13 दिसम्बर, 1988 की यह अखिल भारतीय त्रिदिवसीय संगोष्ठी विज्ञान परिषद् के इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है।

हम यह दावा नहीं कर सकते कि इस गोष्ठी के सम्बन्ध में हमारी जैसी परिकल्पना थी, वह पूर्णरूपेण सफलीभूत हुई, पर पूर्ण विश्वास के साथ इतना अवश्य कह सकते हैं कि विज्ञान परिषद् को बड़ी सीमा तक सफलता मिली। पहली बार देश की किसी वैज्ञानिक संस्था के आमन्त्रण पर विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखक, सम्पादक, वैज्ञानिक परिषदों/समितियों के पदाधिकारी एक मंच पर एकत्र हुए एवं उनके लिए एक दूसरे से विचार-विनिमय सम्भव हो सका। उनमें विज्ञान लेखन और प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों की चर्चा हुई और समाधान भी प्रस्तुत किए गए। हमें पहली बार ऐसा लगा कि चाहे किसी भी भारतीय भाषा का भाषी क्यों न हों, वह मूल रूप से भारतीय है. भारत की मिट्टी से जुड़ा व्यक्ति, भारतीय मिट्टी की रस-गन्ध में सना व्यक्ति। सभी भारतीय भाषा-भाषियों की समान समस्यायें हैं, समस्याओं के बावजूद सभी कार्यरत हैं और देश को विश्व के उन्नतदेशों के शीर्ष पर ले जाने को उत्सुक और बेचैन हैं।

हम पुनः इस गोष्ठी की चर्चा पर वापस आते हैं। गोष्ठी प्रमुख 4 सत्रों में विभाजित थी। उद्घाटन और समापन सहित कुल 6 सत्र सम्पन्न हुए। इस तीन दिन की गोष्ठी में जो भी विचार व्यक्त किए गए, जो भी आलेख हमें प्राप्त हुए उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में गोष्ठी के प्रथम सत्र 'संचार माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन' में प्रस्तुत आलेखों को सम्मिलित किया गया है।

द्वितीय सत्र 'वैज्ञानिक पुस्तक साहित्य' के अंतर्गत प्रस्तुत आलेखों को द्वितीय खण्ड, चतुर्थ सत्र 'शब्दावली एवं अनुवाद' में प्रस्तुत आलेखों को तृतीय खण्ड और 'विज्ञान कथाओं' से सम्बन्धित तृतीय सत्र में प्रस्तुत आलेखों को चतुर्थ खण्ड में सम्मिलित किया गया है।

इस प्रकार कुल मिलाकर इस पुस्तक में चार खण्ड हैं जो गोष्ठी के चारों सत्रों से सम्बन्धित हैं।

कुछ आलेख हमें अंग्रेजी में प्राप्त हुए थे। हमने उन्हें उसी रूप में इस पुस्तक में रखा है, किन्तु प्रारम्भ में उनका सारांश हिन्दी में दे दिया गया है।

हम चाहते थे कि गोष्ठी में सभी भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि विज्ञान लेखक आयें पर ऐसा हो नहीं सका। क्या ही अच्छा होता यदि और भाषाओं के विज्ञान लेलक भी आते। पर इस प्रकार के आयोजन को एक ही गोष्ठी के माध्यम से पूरा नहीं किया जा सकता। हम तो इसे अपनी आंशिक सफलता ही मानते हैं, पर हम न केवल सफल रहे वरन् अग्रणी भी रहे, विभिन्न भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों को एक मंच पर लाने के अपने उद्देश्य में।

यह गोष्ठी इस दिशा में पहला कदम है। इस प्रकार की जब अनेक गोष्ठियाँ होंगी तब कहीं जाकर कोई स्पष्ट चित्र उभरेगा क्योंकि अपना देश बहुभाषा-भाषी विशाल देश है। हमने तो इस गोष्ठी से बहुत कुछ सीखा और आशा करते हैं कि अन्य भाषाओं के विज्ञान लेखकों की भी कुछ इसी प्रकार की अनुभूति होगी।

इस गोष्ठी के माध्यम से विभिन्न भाषा-भाषियों में सौहार्द बढ़ा है, एक दूसरे को समझने का अवसर मिला है और जो सबसे बड़ी बात है वह यह कि विभिन्न भारतीय भाषाओं की विज्ञान समितियों का अखिल भारतीय संगठन 'भारतीय विज्ञान साहित्य महा परिषद्' का गठन सम्भव हुआ।

यह महापरिषद् हिन्दी एवं अन्य सभी भारतीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार में लगी संस्थाओं के मुख्य संगठन के रूप में काम करेगी। इस रूप में इसका प्रमुख उद्देश्य होगा विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो रहे वैज्ञानिक साहित्य के पारस्परिक अनुवाद एवं आदान-प्रदान को बढ़ावा देना। इस निमित्त यह महापरिषद् एक द्वैमासिक पत्रिका का प्रकाशन करेगी, जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं के सर्वोत्कृष्ट विज्ञान लेख हिन्दी में छपेंगे, साथ ही उन लेखों का अंग्रेजी सारांश भी होगा। एक अन्य त्रैमासिक पत्रिका भी शुरू की जायेगी जिसमें हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के सभी वैज्ञानिक लेखों के सारांश छपेंगे। इस महापरिषद् का मुख्यालय इलाहाबाद में विज्ञान परिषद् भवन होगा।

प्रतिभागियों ने एक स्वर से यह मत व्यक्त किया कि संप्रति 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' के प्रधानमंत्री इस महापरिषद् के संयोजक होंगे। 'भारतीय विज्ञान साहित्य महा-परिषद्' का प्रथम औपचारिक अधिवेशन 'मराठी विज्ञान परिषद्' के 'रजत जयन्ती अधि-वेशन' के अवसर पर बम्बई में आयोजित किये जाने का प्रस्ताव भी ध्वनिमत से स्वीकार कर लिया गया। इस अखिल भारतीय संगठन का उदय विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच आपसी सहयोग एवं राष्ट्रीय एकता की दिशा में उल्लेखनीय कदम है।

किन्तु इस गोष्ठी को सफल बनाने में जिन व्यक्तियों अथवा संस्थाओं का योग रहा है यदि उनके प्रति हम अपनी कृतज्ञता न ज्ञापित करें तो अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जायेंगे। एन० सी० एस० टी० सी० और इसके निदेशक डॉ० नरेन्द्र सगहल के तो हम आभारी हैं ही, हम उन सब लेखकों/सम्पादकों के प्रति भी हृदय से आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने देश के कोने-कोने से आकर इस संगोष्ठी में भाग लिया और अपने आलेख प्रस्तुत किए। हम उन व्यक्तियों के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं जो किन्हीं अपरिहार्य कारणों से गोष्ठी में आ न सके, पर जिन्होंने अपने आलेख हमारे निवेदन पर भेज दिए थे।

स्वामी सत्यप्रकाश जी के प्रति हम किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करें यह समझ में नहीं आता। स्वामी जी का इस गोष्ठी के लिए न केवल हमें आशीर्वाद प्राप्त था वरन् इलाहाबाद से बाहर जाने का अपना कार्यक्रम रद्द करके वे तीनों दिन बराबर विद्यमान रहे। फादर मुदार्था ने गोष्ठी के चतुर्थ सत्र में आने का कष्ट किया और अनुग्रह करके न केवल हमारा उत्साह बढ़ाया बल्कि हमें आशीर्वाद भी दिया। हम फादर मुदार्था के हृदय से आभारी हैं। हम इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० वहीदुद्दीन मलिक के ऋणी हैं, जिन्होंने अपने उद्घाटन भाषण द्वारा हमें उपकृत किया।

हम अपने परिषद् की कार्यकारिणी के सदस्यों के प्रति भी आभार व्यक्य करते हैं जिन्होंने कम समय में दिन-रात एक करके, इस गोष्ठी की सम्पूर्ण रूप रेखा तैयार की और अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। हम प्रो० यशपाल प्रो० रामदास तिवारी प्रो० रामचरण मेहरोत्रा और प्रो० चन्द्रिका प्रसाद के विशेष रूप से आभारी हैं क्योंकि उन्होंने समय-समय पर हमारा मार्ग निष्कंटक बनाया है।

सांगीतिक संध्या में गायन-वादन के रंगारंग कार्यक्रमों के प्रस्तुतिकरण के लिए हम इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के प्रो० झा, श्री साहित्य कुमार नाहर, श्री शैलेन्द्र कुमार मिश्र और छात्रा कु० नीता शर्मा के विशेष रूप से आभारी हैं।

अन्त में हम उन सभी सक्रिय कार्यकर्ताओं के प्रति भी आभार प्रदर्शित करते हैं जिन्होंने बाहर से आये हमारे अतिथियों को ठहराने, उन्हें स्टेशन से लाने-ले जाने का कठिन कार्य किया और गोष्ठी के दौरान वितरित साहित्य के प्रकाशन में योग दिया। इनमें श्री आशुतोष मिश्र, श्री अरविन्द मिश्र, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, श्री पवन सिरोठिया,

श्री चन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव, श्री दिनेश मणि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हमारे कार्यालय के प्रभारी श्री गंगाधर तिवारी, टाइपिस्ट श्री राजमणि तिवारी और श्री चन्द्र भान सिंह ने अतिरिक्त समय देकर मनोयोग से गोष्ठी का कार्य किया है। ये सभी साधुवाद के पात्र हैं।

पूर्ण चन्द्र गुप्त (प्रधानमंत्री)
शिवगोपाल मिश्र (संयोजक)
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव (संपादक 'विज्ञान')
अनिल कुमार शुक्ल (संयुक्त मंत्री)

भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन संगोष्ठी

(संक्षिप्त रिपोर्ट)

देशी भाषाओं में विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए 75 साल पूर्व स्थापित संस्था 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' ने अपने अमृत जयंती समारोह के अन्तर्गत 11-13 दिसंबर, 1988 को 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन : समस्याएँ और समाधान' विषय पर एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की। इस संगोष्ठी में देश की अधिकांश संविधान सम्मत भाषाओं के विज्ञान लेखकों/संपादकों/अध्यापकों ने भाग लिया। यह संगोष्ठी 'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी हेतु राष्ट्रीय संचार परिषद्' (एन० सी० एस० टी० सी०), नई दिल्ली के आर्थिक सहयोग से आयोजित की गई थी। संगोष्ठी की विषयवस्तु चार सत्रों में विभाजित थी। उद्घाटन एवं समापन सत्र को मिलाकर कुछ छः सत्र आयोजित किए गये।

उद्घाटन

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता प्रो० रामचरण मेहरोत्रा (जयपुर) ने की तथा मुख्य अतिथि के रूप में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० वहीदुद्दीन मलिक ने मंच की गरिमा बढ़ाई। इनके अलावा मंच पर परिषद् के उपसभापति डॉ० चंद्रिका प्रसाद, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त तथा गोष्ठी के संयोजक डॉ० शिवगोपाल मिश्र भी उपस्थित रहे। संगोष्ठी के इस उद्घाटन सत्र का शुभारंभ इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत सरस्वती-वंदन से हुआ। इसके पश्चात् डॉ० प्रभाकर द्विवेदी ने राष्ट्रभाषा की वंदना की। वरदायिनी माँ वीणापाणि तथा राष्ट्रभाषा की वंदना के उपरान्त सत्र के संचालक और परिषद् के संयुक्त मंत्री अनिल कुमार शुक्ल द्वारा मंच पर आसीन व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया

तथा परिषद् के दूसरे संयुक्त मंत्री डॉ० अशोक कुमार गुप्ता एवं 'विज्ञान' पत्रिका के संपादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव द्वारा अतिथियों को माल्यार्पण किया गया।

परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त ने देश के कोने-कोने से आए गोष्ठी के प्रतिभागियों का 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' की तरफ से हार्दिक स्वागत किया और उनके सहयोग एवं समर्थन के लिए आभार प्रकट किया। औपचारिकताओं के पश्चात् स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने विज्ञान परिषद् के 75 वर्षीय गौरवशाली इतिहास का स्मरण कराते हुए कहा कि विज्ञान के क्षेत्र में परिषद् का महत्व 'नागरी प्रचारिणी सभा एवं 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', राष्ट्रभाषा की दिग्गज संस्थाओं तथा अकादमियों से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

संगोष्ठी के संयोजक डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने परिषद् की अमृत जयंती के उपलक्ष्य में 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' विषय पर गोष्ठी के आयोजन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला। डॉ० मिश्र ने कहा कि हम सभी हिन्दी हैं, हिन्द वाले हैं, चाहे हमारी भाषाएँ एवं बोलियाँ अनेक हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दी अपनी सहेलियों से खुलकर बोल सके और सहेलियाँ भी अपनी मुस्कान बिखेर सकें। डॉ० मिश्र ने संतोष व्यक्त किया कि आज जब 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की उम्र 75 साल है, तब 'विज्ञान प्रगति', 'आविष्कार' और 'वैज्ञानिक' जैसी पत्रिकाएँ अपने निखार पर हैं और 'विज्ञान गंगा', 'जिज्ञासा' तथा 'विज्ञान परिचय' जैसी पत्रिकाओं ने हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के लिए आशा की नई किरणें संजोई हैं। अतः 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' हिन्दी की ज्योति जालए रखने की जिम्मेदारी इन नवागंतुकों को सौंपकर अपना समस्त ध्यान भारतीय भाषाओं की विज्ञान पत्रकारिता के समन्वय की ओर केन्द्रित करना चाहती है। आपसी समन्वय और सहयोग की इसी भावना के साथ 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' ने अपनी 75वीं वर्षगाँठ के अवसर पर इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया है। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि यह संगोष्ठी हम सबके लिए एक-दूसरे से जुड़ने का अवसर सिद्ध होगी।

संगोष्ठी परिचय के उपरांत इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि प्रो० वहीदुद्दीन मलिक ने परिषद् की 'अमृत जयंती स्मारिका' का विमोचन किया तथा उदघाटन भाषण दिया। इस स्मारिका का सम्पादन 'विज्ञान' के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया है। अपने उद्घाटन भाषण में प्रो० मलिक ने कहा कि भारतीय भाषाओं में लेनदेन के रिश्ते के मजबूत होने से हिन्दी को भी लाभ होगा और अन्य भाषा-भाषियों में भी अलगाव की भावना नहीं पनपने पाएगी। भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन को समृद्ध बनाने के लिए लेखकों का यह सामंजस्य बहुत जरूरी है। अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ० रामचरण मेहरोत्रा ने इस बात पर बल दिया कि विदेशी भाषा को सीखने में श्रम बरबाद करने से बेहतर यही है कि उसका इस्तेमाल अपनी भाषाओं के विकास में किया जाय।

अंत में परिषद् के उपसभापति डॉ० चन्द्रिका प्रसाद ने स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, कुलपति प्रो० मलिक, अध्यक्ष डॉ० मेहरोत्रा तथा समस्त आगत अतिथियों एवं श्रोताओं के प्रति आभार माना एवं गोष्ठी के आगामी सत्रों में सक्रिय विचार-विमर्श के लिए आमंत्रित किया ।

प्रथम-सत्र

औपचारिक उद्‌घाटन समारोह के बाद संगोष्ठी का प्रथम सत्र शुरू हुआ । 'संचार माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन' विषय पर केन्द्रित इस सत्र की अध्यक्षता कर्नाटक साइंस कॉलेज, धारवाड़ के प्रोफेसर राजशेखर भूसनूरमठ ने की और संचालन किया, परिषद् के संयुक्त मंत्री अनिल कुमार शुक्ल ने। इस सत्र में कुल दस आलेख थे। पहला आलेख था श्री जे० कोनेटी राव (विशाखापत्तनम्) का जिन्होंने तेलुगु विज्ञान पत्रकारिता के विकास हेतु आंध्र सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों की चर्चा की। लेकिन साथ ही उन्होंने तेलुगु में विज्ञान पत्रिकाओं के अभाव और पाठकों की कमी जैसी समस्याओं की ओर भी संकेत किया। श्री सम्मेता गोवर्धन (हानमकोंडा, आंध्र प्रदेश) के प्रपत्र में तेलुगु भाषा में वैज्ञानिक पुस्तकों की रचना और प्रकाशन की तीव्र गति तथा जनोपयोगी विज्ञान लेखन की मंदगति का विवेचन था। श्रीमती हरिप्रसाद (मैसूर) के आलेख में कन्नड़ भाषा की वैज्ञानिक पुस्तकों, वैज्ञानिक विश्वकोषों और पत्रिकाओं का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया। उनके आलेख में कर्नाटक राज्य विज्ञान परिषद् की गतिविधियों की भी चर्चा थी। एक अन्य प्रतिभागी वरिष्ठ कन्नड़ विज्ञान लेखक प्रो० जे० टी० नारायण राव (मैसूर) के प्रपत्र में कन्नड़ विज्ञान लेखन के गिरते स्तर के प्रति चिंता व्यक्त की गई। प्रो० शिवगोपाल मिश्र (इलाहाबाद) ने 'विज्ञान लेखक और उसकी मानसिकता' शीर्षक अपने आलेख से एक सार्थक और विचारोत्तेजक संवाद शुरू किया और अत्यंत महत्वपूर्ण विचार रखे। श्री विजय जी (इलाहाबाद) ने हिन्दी भाषी विज्ञान लेखकों की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित कराते हुए वैज्ञानिक शोध केन्द्रों एवं हिन्दी विज्ञान लेखकों के बीच अंग्रेजी की अभेद्य दीवार तोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया। डॉ० रामकृष्ण पाराशर (फैजाबाद) ने भारत की आधुनिक कृषि पत्रकारिता के इतिहास का व्यापक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। श्री मनोज कुमार पटैरिया (नई दिल्ली) के आलेख में हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के उद्‌भव एवं विकास का एक शोधपूर्ण और विस्तृत विवेचन दिया गया। स्वामी आत्मानन्द परमहंस (वाराणसी) ने शोध एवं संचार की भाषा अविलम्ब हिन्दी को बनाए जाने पर बल दिया और यह भी सुझाया कि उपयुक्त हिन्दी शब्द न मिलने पर अंग्रेजी शब्दों को ही देवनागरी लिपि में लिख लिया जाय। रोहतक (हरियाणा) के डॉ० ओमप्रभात अग्रवाल ने हिन्दी में विज्ञान लेखन की विश्वसनीयता के संकट का महत्वपूर्ण प्रश्न अपने आलेख में उठाया और व्यवसायिक पत्रिकाओं व पुस्तकों में प्रकाशित त्रुटिपूर्ण तथ्यों एवं भ्रामक बातों के उदाहरण देते हुए इस दिशा में उचित कदम उठाने की माँग की।

सत्र के अंत में अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्रो० भूसनूरमठ ने 'कर्नाटक राज्य विज्ञान परिषद्' के अनुभवों की चर्चा की ओर सुझाव दिया कि अन्य राज्य सरकारों को भी चाहिए कि वे अपने-अपने प्रदेशों के सभी स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में अपनी-अपनी प्रदेशीय भाषाओं की विज्ञान पुस्तकों एवं पत्रिकाओं की खरीद के लिए पुस्तकालय अनुदान का प्रतिशत निश्चित कर दें।

इस सत्र की समाप्ति के पश्चात् गोष्ठी के प्रतिभागियों के सम्मान में एक लघु सांगीतिक संध्या का आयोजन हुआ। इस सांगीतिक संध्या में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग की छात्रा कु० नीता शर्मा ने तीन मधुर भजन प्रस्तुत किए। तत्पश्चात् इसी विभाग के अध्यापक और प्रख्यात सितारवादक श्री साहित्य कुमार नाहर ने सितार पर 'राग किरवानी' की मोहक प्रस्तुति की। दोनों ही कार्यक्रमों में तबले पर कुशल संगति विभाग के ही एक अन्य अध्यापक श्री शैलेन्द्र कुमार मिश्र ने की।

द्वितीय सत्र

12 दिसम्बर को संगोष्ठी का दूसरा सत्र "वैज्ञानिक पुस्तक साहित्य" पर केन्द्रित था। इंजीनियरी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री विश्वम्भर प्रसाद 'गुप्त बंधु' ने इस सत्र की अध्यक्षता की। इस सत्र से संबंधित कुल 11 आलेख थे। सर्वप्रथम जयपुर विश्वविद्यालय के रसायन के प्रोफेसर डॉ० रामचरण मेहरोत्रा ने हिन्दी को अधिक गतिशील बनाने के लिए विविध सार्थक उपायों की चर्चा की। उन्होंने राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा शोध-स्तर की अर्द्धवार्षिक पत्रिका "रसायन समीक्षा" की ओर भी ध्यान आकर्षित किया। रक्षा प्रयोगशाला के उपनिदेशक डॉ० रामगोपाल ने प्रयोगशालाओं में बन्द उपयोगी शोध तथा तकनीकी ज्ञान को जनमानस तक पहुँचाने के लिए हिन्दी के प्रयोग किये जाने की जोरदार अपील की। उनका कहना था कि वैज्ञानिक, तकनीशियन तथा मजदूर समान रूप से हिन्दी का व्यवहार करें। बम्बई से आये "वैज्ञानिक" के सम्पादक डॉ० गोविन्द प्रसाद कोठियाल ने "वैज्ञानिक" पत्रिका द्वारा तकनीकी हिन्दी के विकास का जो वातावरण तैयार किया गया है उसका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया। उज्जैन के प्रतिभागी रसायन शास्त्र के विशेषज्ञ डॉ० महेन्द्र सिंह वर्मा ने सभी नौकरियों में हिन्दी को प्रोत्साहन दिये जाने और सरकारी तंत्रों द्वारा भी शोधपत्रिकाएँ प्रकाशित किये जाने पर बल दिया। मराठी विज्ञान परिषद् के अधिकारी विद्वान डॉ० मनोहर मोघे ने मराठी में विज्ञान लेखन की स्थिति पर विस्तृत प्रकाश डाला। दिल्ली की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के अधिकारी और विज्ञान लेखक श्री विष्णुदत्त शर्मा ने वैज्ञानिकों एवं साहित्यिकों को एक मंच पर आने के लिए आमंत्रित किया जिससे एक दूसरे की समस्याएँ समझी जा सकें। इसके अतिरिक्त बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के अध्यक्ष डॉ० महाराज नारायण मेहरोत्रा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल, 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' के पाठ्यक्रम शोध अधिकारी डॉ० सुप्रभात मुकर्जी, राजेन्द्र

कृषि विश्वविद्यालय पूसा (बिहार) के उमेश सिंह के लेखों द्वारा विज्ञान लेखन की कुछ कठिनाइयों, अच्छे लेखों के हिन्दी अनुवाद, अध्यापन में हिन्दी के प्रयोग तथा हिन्दी में विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों के स्तर के विषय पर व्यापक चर्चायें की गई। श्री विश्वम्भर प्रसाद गुप्त ने अपने अध्यक्षीय भाषण में 1932 से महाराष्ट्र में निर्मित इंजीनियरी शब्दावली तथा हिन्दी में भी उसी प्रकार के कार्यों का उल्लेख करते हुए वर्तमान वस्तुस्थिति से परिचय कराया।

इस सत्र के विचारविमर्श के पूर्व प्रथम सत्र में दक्षिण भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन पर जो विचारोत्तेजक बहस हो चुकी थी, उसमें कुछ और नये वैचारिक बिन्दुओं का समावेश हुआ।

तृतीय सत्र

12 दिसम्बर, 1988 को "भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथा लेखन" पर विचार किया गया। इस सत्र की अध्यक्षता हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के श्री गिरिराज किशोर और संचालन श्री रमेश दत्त शर्मा ने किया। प्रथम वक्ता प्रोफेसर राजशेखर भूसनूरमठ ने कन्नड़ भाषा में पहली विज्ञान कथा लिखने का श्रेय डॉ० सदानंद को दिया। सन् 1935 में 'आधुनिक अमरावती' शीर्षक से विज्ञान कथा प्रकाशित हुई थी। बाद में "सुधा साप्ताहिक" में प्रो० भूसनूरमठ ने अपने विज्ञान-स्तंभ में नियमित रूप से विज्ञान कथा लेखन प्रारम्भ किया। उन्होंने बताया कि भारतीय विज्ञान कथा लेखकों का एक संघ बनाया गया है, जिसके अध्यक्ष डॉ० जयंत नार्लीकर हैं और उपाध्यक्ष 'साइंस टुडे' के भूतपूर्व संपादक डॉ० फोंडके। इसके सचिव श्री भूसनूरमठ हैं। यह संघ भारतीय भाषाओं के विज्ञान-कथा लेखन को प्रोत्साहन देने और मान्यता दिलाने के लिये प्रयासरत है।

तेलुगु भाषा में विज्ञान कथा लेखन की स्थिति पर श्री पी० रंगनाथ ने प्रकाश डाला। उन्होंने भारत की पौराणिक गाथाओं में विज्ञान कथाओं के लिए पर्याप्त सामग्री होने के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि उनके सूत्रों से भारतीय परिवेश को आलोकित करने वाली सुन्दर विज्ञान कथाओं का सृजन किया जा सकता है—जैसे कि रामायण में संजीवनी बूटी लेने के लिए उड़ते हनुमान की समुद्र में पड़ती छाया को पकड़कर उन्हें आसमान से नीचे खींच लेने की घटना।

झांसी से आये श्री अरविंद मिश्र ने हिंदी में और अंग्रेजी में विज्ञान कथाओं के नाम पर लिखी जा रही छद्म विज्ञान कथाओं और फंतासियों की आलोचना करते हुए कहा कि हमें विशुद्ध वैज्ञानिक तथ्यों के इर्द-गिर्द बुनी हुई विज्ञान कथाएँ ही लिखनी चाहिए। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के छात्र श्री आशुतोष मिश्र ने भी यह

सत्र में कृषि महाविद्यालय (नैनी) के डॉ अशोक कुमार गुप्ता ने भी विज्ञान लेखन में अनुवाद की समस्या पर अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किए ।

सत्र के अन्त में संचालक श्री रमेशदत्त शर्मा ने वैज्ञानिक साहित्य में शब्दावली एवं अनुवाद की महत्ता पर प्रकाश डाला । तेलुगु के विख्यात लेखक श्री जे० कोनेटी राव ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में उच्चस्तरीय अनुवाद पर बल दिया और वैज्ञानिक साहित्य में आयोग-सम्मत पारिभाषिक शब्दों का समावेश करने के लिए लेखकों को प्रेरित किया ।

अन्य विषय

इसी सत्र में कतिपय ऐसे आलेखों को भी प्रस्तुत किया गया जो किन्हीं कारणों से अपने निर्धारित सत्रों में प्रस्तुत नहीं किए जा सके थे । साथ ही उन सरकारी और स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्य का भी विवरण प्रस्तुत किया गया जो जनमानस तक विज्ञान को पहुँचाने के लिए तत्पर हैं । इस उपसत्र की अध्यक्षता जिज्ञासु केन्द्र इलाहाबाद के बिशप मुदार्था ने की तथा इसका संचालन नई दिल्ली के श्री प्रेमानन्द चन्दोला ने किया ।

वैज्ञानिक मनोवृत्ति का प्रसार करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं पर प्रकाश डालते हुए 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्', नई दिल्ली के श्री रमेशदत्त शर्मा ने बतलाया कि इन सभी संस्थाओं के लिए एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता है । श्री शर्मा ने विज्ञान परिषद्, प्रयाग, बंगीय साहित्य परिषद्, मराठी विज्ञान परिषद्, केरल शास्त्र साहित्य परिषद्, कर्नाटक विज्ञान साहित्य परिषद् आदि अनेक अग्रणी संस्थाओं के महत्वपूर्ण योगदान का परिचय दिया । एल० वी० डी० कॉलेज, रायपुर के श्री सी० डी० पाटिल ने जनमानस तक पहुँचने के लिए विभिन्न साधनों की चर्चा की—जैसे प्रादेशिक भाषाओं की पत्रिकाओं द्वारा, विज्ञान मेलों द्वारा, किसानों के लिए आयोजित कार्यशालाओं द्वारा, रेडियो, फिल्म, टी० वी० द्वारा आदि ।

श्री वसन्तम वेंकटराव ने उन कारणों को बताया जिनसे अब तब भारतीय भाषाओं, विशेषकर तेलुगु में विज्ञान का प्रचार-प्रसार उचित रूप से संभव नहीं हो सका है । इनमें से मुख्य हैं—आर्थिक विपन्नता, उच्च श्रेणी के वैज्ञानिकों का क्षेत्रीय भाषाओं में लेखन के प्रति लगाव न होना तथा लेखकों की शैली का प्रभावकारी न होना ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से आये डॉ० रमेशचन्द्र तिवारी ने अपने व्याख्यान में उदाहरणों के साथ इस बात की पुष्टि की, कि विज्ञान की लोकप्रियता, हिन्दी, क्षेत्रीय, तथा स्थानीय भाषाओं के माध्यम से ही संभव है । ''सुनो, करो और देखो'' ही वैज्ञानिक लोकप्रियता के आधार स्तम्भ हैं । विज्ञान की वस्तुओं का ज्ञान, काम चलाऊ पढ़े लिखे और अनपढ़ लोगों को उनकी भाषा में ही सही ढंग से दिया जा सकता है ।

रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर के डॉ० लोकेन्द्र सिंह ने विचार व्यक्त किया कि यदि हिन्दी में लिखे शोधपत्र एवं लेख नौकरियों के साक्षात्कार के समय उपयोगी बन सकें तो हिन्दी में विज्ञान लेखन की होड़ लग जाए। उन्होंने कहा कि अपनी संकीर्ण मानसिकता को छोड़कर जनता के व्यापक हित में हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को खुले दिल से अपनाना चाहिए।

झाँसी मेडिकल कॉलेज के डॉ० देवेन्द्रनाथ सिन्हा तथा स्टूडेन्ट साइंस सोसाइटी ऑव इंडिया, शाहजहाँपुर के श्री इरफान भारतीय स्वयं उपस्थित नहीं हो सके अतः इनके लेख पढ़े गये।

रामगढ़ के श्री प्रमोद कुमार के आलेख में भारतीय वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन में लगी संस्थाओं की चर्चा थी। शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान इलाहाबाद के शोधछात्र, श्री दिनेश द्विवेदी "मणि" ने 'विज्ञान लेखन और कविता' विषय पर बोलते हुए कहा कि विज्ञान को लोकप्रिय और रुचिकर बनाने के लिए काव्य का माध्यम अपनाने की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

शीलाधर संस्थान के ही श्री युगल किशोर अग्निहोत्री ने विज्ञान परिषद् की कार्य-प्रणाली से संबंधित कुछ सुझाव श्रोताओं के समक्ष रखे। श्री अग्निहोत्री ने उन माध्यमों की चर्चा की, जिनके द्वारा परिषद् अपना कार्यक्षेत्र विस्तृत कर सकती है और जनमानस को विज्ञान के निकट अधिक से अधिक पहुँचाने का प्रयत्न कर सकती है।

इलाहाबाद के ही बहुचर्चित लेखक श्री शुकदेव प्रसाद ने हिन्दी में विज्ञान साहित्य के इतिहास का समग्र परिचय दिया।

बिशप मुदार्था ने अपने अध्यक्षीय भाषण में लेखकों को प्रेरित किया कि उनका लेखन जनमानस के हित एवं उसकी समृद्धि के लिए केन्द्रित होना चाहिए।

समापन सत्र

13 दिसम्बर 1988 की त्रिदिवसीय संगोष्ठी के अन्त में भारयीय भाषाओं में विज्ञान लेखन में देशभर की वैज्ञानिक समितियों के प्रतिनिधियों तथा विज्ञान लेखकों ने परस्पर सहयोग बढ़ाने तथा हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच आपसी आदान-प्रदान को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निम्न संकल्प पारित किए गए—

प्रस्ताव संख्या 1

(1) देश की समस्त भाषाओं की वैज्ञानिक समितियों का एक अखिल भारतीय संगठन स्थापित किया जाय। इस संगठन का नाम 'भारतीय विज्ञान साहित्य महापरिषद्' होगा।

(2) इस संगठन का मुख्यालय इलाहाबाद में 'विज्ञान परिषद् भवन' में होगा।

(3) इस संगठन का प्रथम औपचारिक अधिवेशन 'मराठी विज्ञान परिषद्' की रजत जयन्ती अधिवेशन के अवसर पर बम्बई में होगा। इस प्रथम अधि-वेशन में ही इस महापरिषद् की नियमावली स्वीकृत की जायेगी तथा पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी के सदस्यों का चुनाव किया जाएगा।

(4) जब तक महापरिषद् का प्रथम औपचारिक अधिवेशन नहीं आयोजित होता, तब तक 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' के प्रधानमंत्री इसके 'संयोजक' होंगे। वे अपनी सहायता के लिए किसी अन्य व्यक्ति/व्यक्तियों का नाम प्रस्तावित कर सकते हैं। इस महापरिषद् के गठन की घोषणा पर हस्ताक्षर करने वाले सभी व्यक्ति इसके संस्थापक सदस्य हैं, अतः वे सभी, संप्रति, महापरिषद् की तदर्थ कार्यकारिणी के सदस्य होंगे। जिन भाषाओं की वैज्ञानिक समितियों का कोई प्रतिनिधि इस घोषणा के समय उपस्थित नहीं है, उन समितियों से अनुरोध किया जायगा कि अपने किसी एक प्रतिनिधि का नाम तदर्थ कार्यकारिणी के लिए शीघ्र भेजें।

(5) इस महापरिषद् की सदस्यता ऐसी प्रत्येक संस्था एवं समिति के लिए खुली है जो किसी भी मान्य भारतीय भाषा के माध्यम से जनसामान्य में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार एवं वैज्ञानिक मनोवृत्ति के उदय (प्रचार) का कार्य कर रही हैं।

(6) 'भारतीय विज्ञान साहित्य महापरिषद्' द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दो पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाएगा। पहली पत्रिका 'विज्ञान संगम' द्वैमासिक होगी, जिसमें सभी भारतीय भाषाओं से चुने गये सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिक लेखों, विज्ञान कथाओं आदि के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होंगे। इन प्रकाशित रचनाओं के साथ इनका अंग्रेजी सारांश भी होगा। दूसरी पत्रिका 'विज्ञान संक्षेपिका' त्रैमासिक होगी और इसमें हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में छपे सभी वैज्ञानिक लेखों के सारांश छपेंगे।

(7) इन दोनों पत्रिकाओं के संपादक मंडल में सभी मान्य भारतीय भाषाओं से कम से कम एक विज्ञान लेखक होगा। इस प्रकार हर भाषा का संपादक (अपनी परिषद् द्वारा मनोनीत) अपनी भाषा के सर्वोत्कृष्ट लेख के चयन, अनुवाद तथा सारांश की तैयारी के लिए उत्तरदायी होगा। संपादक मंडल के प्रत्येक सदस्य को उचित मानदेय दिया जाएगा।

(8) इस महापरिषद् की सदस्यता प्राप्त समस्त वैज्ञानिक समितियाँ अपने प्रकाशन विनिमय के रूप में अन्य सदस्यों को भेजेंगी। ये समितियाँ अपने क्षेत्र में प्रकाशित/उपलब्ध पत्र-पत्रिकाओं में छपी वैज्ञानिक रचनाओं की प्रतिलिपि व कतरनें संपादन मण्डल को उपलब्ध करायेंगी।

(9) विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्तरीय विज्ञान साहित्य के प्रसार को सुनिश्चित करने के लिए यह महापरिषद् 'भाषाई विज्ञान फीचर सेवा' शुरू करने का काम प्राथमिकता के आधार पर करेगी।

(10) इस महापरिषद् के वार्षिक अधिवेशन प्रतिवर्ष अलग-अलग भाषाओं की वैज्ञानिक समितियों के तत्वावधान में आयोजित किए जायेंगे। आगामी वर्ष की आयोजक समिति का निश्चय प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन में कर लिया जाएगा। आयोजक समिति आगामी वर्ष के लिए नयी कार्यकारिणी के नाम प्रस्तावित करेगी और इस प्रकार चुनी गई कार्यकारिणी प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के अन्त में कार्यभार ग्रहण करेगी।

प्रस्तावक—डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रस्ताव संख्या 2

'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' के अमृत जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित अखिल भारतीय गोष्ठी 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' के लिए कोने-कोने से आये विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधियों तथा विज्ञान प्रेमियों की यह सभा सर्वसम्मति से प्रस्ताव करती है कि—

(1) सभी भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों/पत्रकारों/संपादकों का संक्षिप्त परिचय एवं पते का विवरण संकलित करने वाली संदर्भ विवरणिका शीघ्र प्रकाशित की जाय ताकि विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखकों के बीच आपसी सम्पर्क आसान हो सके। केन्द्रीय विज्ञान एवं प्रोद्योगिक विभाग के अन्तर्गत स्थापित विज्ञान एवं प्रौद्योगिक हेतु राष्ट्रीय संचार परिषद् (एन० सी० एस० टी० सी) इस महत्वपूर्ण कार्य को प्राथमिकता के आधार पर शीघ्र सम्पन्न करे।

(2) वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी० एस० आई० आर०) द्वारा 'तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन' के अवसर पर प्रकाशित 'तकनीकी हिन्दी प्रकाशन निर्देशिका (1966-83), को अद्यतन एवं पूर्ण बनाकर पुर्नप्रकाशित किया जाय। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' इस कार्य को लेने को तत्पर है और सर्वाधिक उपयुक्त संस्था है, अतः विज्ञान एवं प्रौद्योगिक विभाग उसे इस कार्य के लिए आर्थिक अनुदान उपलब्ध कराए।

(3) अन्य भारतीय भाषाओं की विज्ञान समितियाँ भी अपने-अपने राज्य सरकारों एवं केन्द्रीय सरकार के आर्थिक अनुदान से अथवा अपने स्रोतों से इसी प्रकार की प्रामाणिक निर्देशिकाएं प्रकाशित करने का कार्य प्राथमिकता के आधार पर करें।

(4) राष्ट्रभाषा हिन्दी में वैज्ञानिक शोध को प्रकट करने की क्षमता 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' के 30 वर्षों से निरन्तर प्रकाशन ने पूर्णतया प्रमाणित कर दी है। अतः सरकारी अनुदान से प्रकाशित सभी वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं (जर्नलों) में हिन्दी में भी शोधपत्रों के छपने की सुविधा दी जाय। इन समस्त शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित सभी शोधपत्रों का सारांश अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी छापना अनिवार्य किया जाय। ताकि हिन्दी सम्पर्क भाषा के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह भली-भाँति कर सके।

प्रस्तावक—अनिल कुमार शुक्ल

प्रस्ताव संख्या 3

(क) राष्ट्रीय सूचना नीति के निर्माण, क्रियान्वयन एवं समीक्षा के प्रत्येक स्तर पर जनप्रिय विज्ञान की सूचना सुलभ बनाने की आवश्यकता पर गौर किया जाय और इस आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में उचित कदम अविलम्ब उठाये जायँ। क्योंकि आज के इलेक्ट्रॉनिक युग में, एक तरफ विशिष्ट सुविधा प्राप्त वर्ग के पास सूचनाओं का अम्बार लगता जा रहा है तो दूसरी और जनसाधारण के पास सूचनाओं का पहुँचना दुर्लभ, जटिल तथा मँहगा बनता जा रहा है। अतः जनोपयोगी वैज्ञानिक सूचनाओं की उपलब्धता में व्याप रही इस विषमता को समाप्त करने की दिशा में अविलम्ब प्रभावी कदम उठाये जायँ।

(ख) 'रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स' के वार्षिक प्रतिवेदनों में वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं से सम्बन्धित एक नया सूचना संवर्ग अविलम्ब शुरू किया जाय।

(ग) दूरदर्शन पर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान एवं तकनीकी सम्वन्धी अधिकाधिक कार्यक्रम शुरू किये जायँ।

प्रस्ताविका—डॉ० (श्रीमती) बी० अनुराधा

प्रस्ताव संख्या 4

(क) 1964-66 के शिक्षा आयोग की संस्तुतियों के आधार पर स्थापित विभिन्न प्रदेशों की ग्रन्थ अकादमियों तथा सरकारी सहायता प्राप्त अन्य साहित्यिक अकादमियों द्वारा प्रोत्साहन एवं सम्मान स्वरूप प्रदान किए जाने वाले पुरस्कारों में प्रायः वैज्ञानिक पुस्तकों/विज्ञान लेखकों की उपेक्षा की जाती है। इस उपेक्षापूर्ण स्थिति में सुधार के लिए अविलम्ब निम्न कदम उठाये जाएँ—

(1) पुरस्कारों की चयन समिति में किसी वरिष्ठ विज्ञान लेखक को अनिवार्यतः शामिल किया जाय।

(2) पुरस्कारों के लिए आवेदन सम्बन्धी विज्ञापन उस क्षेत्र/प्रदेश की भाषा में छपने वाली सभी विज्ञान पत्रिकाओं में अवश्य निकाले जायें।

(3) दीर्घकालीन विशिष्ट सेवाओं के लिए सम्मानित किये जाने वाले व्यक्तियों में प्रतिवर्ष कम से कम एक विज्ञान साहित्यकार अवश्य हो।

(4) यदि कोई विज्ञान लेखक अपनी लोकप्रिय वैज्ञानिक रचनाओं को पुस्तक रूप में छपाना चाहे तो उसे सरकार की तरफ से उपदान अवश्य दिया जाय, ताकि लेखक प्रकाशकों के मुखापेक्षी न रहें और अपने प्रयास से भी वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन कर सकें।

(5) देश के सभी स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों एवं सार्वजनिक पुस्तकालयों द्वारा प्रतिवर्ष क्रय की जाने वाली पुस्तकों का कम से कम 15% लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों का हो। ऐसी अनिवार्य व्यवस्था वैज्ञानिक साहित्य के सृजन एवं प्रसार की दिशा में महत्व-पूर्ण कदम सिद्ध होगी।

(6) अच्छे विज्ञान लेखन के लिए विभिन्न सरकारी मंत्रालयों तथा संस्थाओं द्वारा लेखकों को पुरस्कृत किया जाता है। वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन को बढ़ावा देने के लिए इसी प्रकार की आर्थिक सहायता या उपदान वैज्ञानिक साहित्य के निजी प्रकाशकों को भी दिया जाय—ताकि वे इस ओर उन्मुख एवं प्रेरित हों।

प्रस्तावक—आर० एस० भूसनूरमठ तथा एम० एम० मोघे

प्रस्ताव संख्या 5

(1) भारतीय जन संचार, संस्थान, नई दिल्ली द्वारा हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन एवं रिपोर्टिंग पर नियमित पाठ्यक्रम अविलम्ब शुरू किया जाय ताकि विज्ञान लेखकों की प्रशिक्षित टोलियाँ वैज्ञानिक साहित्य की गुणवत्ता एवं स्तर को और ऊँचा उठा सकें।

(2) विभिन्न प्रदेशों की वैज्ञानिक समितियाँ अपने-अपने प्रदेशों में नवोदित विज्ञान लेखकों के लिए 'विज्ञान रचना शिविर' आयोजित करने की परम्परा शुरू करें। इन रचना शिविरों में वरिष्ठ विज्ञान लेखकों के सह-वास एवं दिशा निर्देशन में दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं विभिन्न पत्र-पत्रि-काओं के लिए रचे जाने वाले साहित्य में भेद एवं समानताओं की मूलभूत जानकारी नवोदित विज्ञान लेखकों को हो सकेगी।

प्रस्तावक—श्री रमेश दत्त शर्मा तथा डॉ मनोहर एम० मोघे

प्रस्ताव संख्या 6

सभी भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों एवं वैज्ञानिक संस्थाओं के आपसी आदान-प्रदान को बढ़ावा देने तथा देश की विविध भाषाओं में रचे जा रहे वैज्ञानिक साहित्य

में शब्दावली की एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' द्वारा तैयार अखिल भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली अविलम्ब विभिन्न प्रदेशों की स्वयंसेवी वैज्ञानिक समितियों को उपलब्ध करा दी जाय।

प्रस्तावक—श्री प्रेमानन्द चन्दोला

प्रस्ताव संख्या 7

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित विषयों पर नीति-निर्धारण एवं उनके क्रियान्वयन पर निगरानी रखने के लिए सरकार द्वारा बनाई जाने वाली विभिन्न समितियों में सम्बन्धित प्रदेशों की विज्ञान समितियों/विज्ञान परिषदों के प्रतिनिधि अवश्य शामिल किये जायँ ताकि सरकार को उस क्षेत्र की आम जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप मिर्णय लेने में आसानी हो। सरकार द्वारा हाल ही में शुरू किये गये प्रौद्योगिकी मिशनों की सफलता इस प्रकार से सुनिश्चित हो सकेगी।

प्रस्तावक—डॉ० आर० एस० भूसनूरमठ

प्रस्ताव संख्या 8

(क) संघ की सेवाओं एवं पदों में भरती के समय अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त किए जाने सम्बन्धी, संसद के 1967 के संकल्प को अविलम्ब लागू किया जाय। इसी माँग को लेकर 'अखिल भारतीय भाषा संरक्षण संगठन' द्वारा 16 अगस्त 1988 से चलाए जा रहे धरने एवं अनशन के प्रति पूरी सहानुभूति एवं समर्थन व्यक्त करते हुए हम संघ एवं राज्य सरकार की सभी भरती परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त किए जाने की पुरजोर माँग करते हैं।

(ख) संघ एवं राज्य सरकार की समस्त वैज्ञानिक सेवाओं में साक्षात्कार एवं पदोन्नति के लिए भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित भारतीय भाषाओं के लेखों/शोधपत्रों की संख्या एवं गुणवत्ता को महत्व दिया जाय।

प्रस्तावक—श्री विश्वंभर प्रसाद 'गुप्त बन्धु'

प्रस्ताव संख्या 9

विज्ञान लेखकों की बढ़ती हुई संख्या के बावजूद लेखों के स्तर में अपेक्षित सुधार नहीं दिखाई पड़ता। दूसरे के लेखों के चोरी से पुनर्प्रकाशन या नकल कर लेने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। ऐसी दुष्प्रवृत्तियों को रोकने तथा रचे जा रहे वैज्ञानिक साहित्य के स्तर में

सुधार हेतु लेखकों के लिए मार्गदर्शक आचार संहिता बनाए जाने की आवश्यकता है। इस दिशा में विविध वैज्ञानिक समितियाँ अग्रणी भूमिका निभा सकती हैं।

प्रस्तावक—श्री डी० एन० भटनागर

प्रस्ताव संख्या 10

'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' की अमृत जयन्ती समारोह के अवसर पर एकत्रित विविध भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखक एक स्वर से यह माँग करते हैं कि विज्ञान के प्रसार की दृष्टि से भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो रही वैज्ञानिक पत्रिकाओं को राष्ट्रीय महत्व की पत्रिकाएँ घोषित किया जाय और इनके प्रबन्ध एवं वित्त सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करके इनका प्रसार बढ़ाने के लिए अविलम्ब कदम उठाए जायें।

प्रस्तावक—श्री तुरशनपाल पाठक

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

संचार माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन

श्री जी० टी० नारायण राव

कन्नड़ में विज्ञान संचार : समस्याएँ एवं निदान

लेखक ने सर्वप्रथम यह भ्रान्ति दूर करने का प्रयास किया है कि अंग्रेजी या जर्मन भाषा में ही विज्ञान को अच्छी तरह लिखा और समझा जा सकता है। उनका तर्क है कि यदि इसमें चाह हो और हम चुनौती को स्वीकारें तो कोई कारण नहीं कि हिन्दी या कन्नड़ में वह क्षमता उत्पन्न न हो सके। विज्ञान में भाषा के तीन कार्य होते हैं—अंकित करना, संरक्षण करना और संचार करना। वास्तव में अंग्रेजी में संचार की जो क्षमता आई वह क्रमबद्ध विकास द्वारा और फिर मानकीकरण द्वारा आई। हमारी भाषाओं के लिए अब यह सम्भव नहीं अतएव हम अंग्रेजी के माध्यम से वैज्ञानिक संकल्पनाओं की तह तक पहुँचकर उन्हें अपनी भाषाओं में अभिव्यक्ति प्रदान करें। इसे किसी अध्यादेश से नहीं अपितु संकल्प द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

लेखक ने अंग्रेजी में उत्तम विज्ञान-साहित्य के **पाँच नियमों** का उल्लेख किया है (उन्हें **पंचशील कहा** है)। ये हैं—पारिभाषिक शब्द, संक्षेपण, संकल्पनाएँ तथा स्वयंसिद्धियाँ, तार्किकता तथा भाषा सौन्दर्य। लेखक का विश्वास है कि सौन्दर्य तो विज्ञान की प्रेरक शक्ति है और अंग्रेजी की आदर्श विज्ञान-कृति मूलतः सौन्दर्यपूर्ण होती है।

प्रस्तुत लेख में इन पांचों नियमों का कन्नड़ के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है। लेखक का कहना है कि कन्नड़ में बहुत ही खुले दिमाग से विश्व के किसी भी कोने के **पारिभाषिक शब्द** को स्वीकार किया जाता है किन्तु ये शब्द संस्कृत भाषा की सहायता से ही बनाये जाते हैं—कोई भी भाषा (यहाँ तक कि तमिल भी) संस्कृत की उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सकती। कन्नड़ में इसीलिए पारिभाषिक शब्द कभी सरदर्द नहीं बने।

लेखक ने विज्ञान लेखक के व्यक्तित्व के विषय में तीन बातें आवश्यक बताई हैं–विषय में दक्षता, भाषा पर अधिकार तथा उत्साह। लेखक में विषय पर पूरा पूरा अधिकार होना लाजमी है और भाषा पर भी। लेखक को उत्कृष्टता पर सदैव दृष्टि रखनी होगी। ज्ञान का संचार मानव मात्र के लिए सर्वोत्कृष्ट प्रसन्नता है—उसे आन्तरिक प्रेरणा से इस ओर उन्मुख होना चाहिए। किसी प्रकार के दबाव में आने से उसके द्वारा प्रदत्त साहित्य शुष्क होगा। यदि वे तीनों गुण किसी में एकसाथ मिलें तो मानों सोने में सुहागे का संयोग है। ऐसे लेखक-संचारक कन्नड़ में विरले ही मिलते हैं।

संचार के दो पक्ष हैं—संचारक तथा ग्राहक। कन्नड़ में ग्राहक का अभाव है—इसके लिए एकमात्र क्षेत्र शिक्षा का है और वह भी हाईस्कूल के स्तर तक जहाँ कन्नड़ शिक्षा का माध्यम है। इसके कारण विज्ञान की आत्मा का हनन हुआ है। भला ऐसे ऊसर में कोई संचारक कैसे बढ़ सकता है? यद्यपि कन्नड़ में पत्रिकाओं, कोशों, विश्वकोशों, पाठ्यपुस्तकों, अनुवादों, विज्ञान कथाओं का अभाव नहीं है, किन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से अभी मीलों पीछे है। लेखक का मत है कि अंग्रेजी में लिखित विज्ञान-सामग्री का ही चर्वित-चर्वण कन्नड़-भाषी लोगों तक पहुँचता है। यह अच्छी बात नहीं।

G. T. Narayana Rao

Science Communication in Kannada : Problems and Prospects

I have been in the field of science writing, teaching and editing through my mother tongue Kannada for the past forty-odd years. I feel therefore I can writc with some degree of authenticity on this subject. I have every reason to believe that the problems and prospects may not vary very much in other Indian languages.

When I say science here, I mean modern science and its application, the technology. Science progresses in its pursuit of beauty by observation, data collection, experimentation, modelling, law derivation, theory formation and comparison of this end-product with mother nature. Naturally science has to record its findings in the appropriate language. Thus the role of language in science is three-fold : to record, to preserve and to communicate.

For historical reasons science got fillip in western countries, and naturally the languages in vogue there got the opportunity to serve it as vehicles of thought and media of expression. Thus when one says that English or German has served science well and effectively, it does not imply that Kannada or Hindi hasn't got the same potential. Given the challenge and the will to accept it any language can fill the bill.

I have heard well-meaning but ill-equipped academicians (and not political opportunists or linguistic chauvinists) citing passages in English

from Relativity or Genetics and throwing the challenge to communicate such complex concepts equally crisply and effectively through Indian languages. Some of them go to the extent of quoting some passages from an old book in our language chosen at random and criticise them for the looseness in construction, confusion in concept, nonuniformity in technical terms etc, and thus generalize that our languages are unfit for science communication.

Such enthusiasts of 'clear concept,' know not what they talk. First, for various unacademic reasons you do not allow a language to develop in the field of science communication. And secondly, you make this—the non-development—a weapon to maul the very same language.

The right approach would be to find how English got its elasticity to communicate science effectively.

First, science thoughts and their expression have had a symbiotic evolution in English. It was not as though an alien thought was transplanted to the language or an ill-equipped language foisted on a new concept. Since the evolution was natural one could get easy access to the frontier of knowledge through English as also express one's research findings through it.

Secondly, over the years the language of science has got standardized so that the descriptive part of the text does not pose any problem of meaning, precision or clarity. For example *force, power and energy* though used almost synonymously in literature connote different physical entities in science.

And finally, interdisciplinary use of language has enriched each discipline, and conversely, the language has drawn sustenance from its immediate employer. This is because the growth and development of different disciplines have more or less been uniform.

Obviously none of our languages can now take to this natural course of evolution Hence the latent potential of English acquired by evolution, standardization and interdisciplinary interaction is conspicuously absent in them. The only way open to us now is to get into the kernel of scientific concepts through English and give concrete expression to it in our languages. Naturally these have to be trimmed and tuned to assimilate and communicate modern scientific thoughts. This has to be done in an atmosphere tempered with reason and unhampered by

chauvinism. What I mean is that one cannot get it done by passing ordinances to demolish English and put in its place the regional language overnight.

When one follows the dictates of reason, as was done by the founding fathers of modern science literature in Kannada in the second and third decades of the present century, one comes across several problems which one solve by drawing lessons from the evolutionary path of English as medium of science communication. A careful examination of any standard work on science in English reveals broadly three mutually inclusive characteristics :

1. Description. Concepts, steps, manipulations, conclusions etc are clearly explained. Minimum number of words consistent with clarity is the guiding principle.

2. Symbols. Subjects such as mathematics, physics and chemistry communicate mainly through abbreviations, symbols and signs.

3. Figures. Diagrams, graphs, illustrations and such other visual aids are integral parts of science literature.

Of these 2 and 3 can be directly transplanted into our languages because they are universal in their form and appeal. For example $\triangle ABC$, H_2O, $E=mc^2$, $\sin x$, a, b, c, x, y, z, 0, 1, 2, 3 etc. need not and should not be translated or transliterated.

The accreted wisdom of the best brains of the human race is a readily available boon to us for just asking. We must make use of it. Of course we have to initiate the reader into these 'solidified' concepts. For this purpose we have to employ our language suitably.

How can we do it ? This question takes us into a closer scrutiny of the language content in science literature in English. One notices here five, again mutually supplementary, characteristics :

(i) Technical terms. Scientific concepts are closely packed in them. *Tangent*, *acid*, *radiation*, *quasar* are but a few examples. They are to be treated as proper names failing which the intended meaning will be lost on the readers. In the absence of technical terms the narrative part of the text would degenerate into labyrinthine and meandering sentences conveying precious little sense. Verbiage and verbosity have no place in science literature.

(ii) Abbreviations. These are special types of technical terms, something similar to pawns in a game of chess. One can play on them and with them too in accordance with the set rules of the game. Example :

$$\sin (A+B) = \sin A \cos B + \cos A \sin B$$

$$C_2H_5\ OH + O_2 \rightarrow CH_3\ COOH + H_3O$$
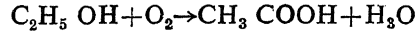
In the absence of abbreviations the development of science literature, nay, the development of science itself, will be haphazard and imperfect.

(iii) Axioms and hypotheses. Axioms are basic concepts. While one is sure of their correctness or consistency with reality one can neither prove nor disprove them. Based on data analysis and experimental verification relevant hypotheses, which are just conceptual models, are framed to fit into the observed phenomena.

(iv) Logical consistency. Perfect logical consistency is the hallmark of nature. 'God may be subtle, but He is never mallcious' said Einstein. Science literature can ill afford to lose sight of this guiding principle. Correct understanding of concepts, proper employment of technical words and accurate usage of abbreviations with an eye on linguistic nuances are necessary to achieve logical consistency.

(v) Language beauty. 'A scientist studies nature because it is beautiful' remaked Poincare. Beauty is the motivating force for the pursuit of science. And so the verbal or narrative part which is the reflection of nature should also be beautiful. Any standard science work in English is basically 'a thing of beauty' whose reading is therefore 'a joy for ever."

These are the *panchaseela* of good science literature in English. They ought to guide us when we venture to produce scienence literature in our language. I will narrate here briefly our experience in Kannada.

(i) Technical terms. One hears ad nauseam in Karnataka that the problem of technical words is the major stumbling block in the production of science literature. It is just a cliche, a remark by an escapist who has never faced the issue squarely and yet who wants to pose as a scienc writer. Let me assure you that among these selfappointed and selfprojected guardians of sanctity and protectors of chastity of mother Kannada two distinct classes of nonstarters can be identificd : advocates of the socalled simplicity, and Kannada fanatics. They make occasional

political noises from inconsequential platforms which are rightly ignored by the genuine workers in the field.

How have we faced this problem academically ? We in Karnataka have an open mind to accept any technical word from any corner of the world provided it fits into the genius of our language, communicates the meaning clearly and unambiguously, lends itself flexibly for the derivation of compound words, and helps the reader to understand interdisciplinary subjects well. Over-Englishization, over-Sanskritization or over-Kannadization are discouraged knowing fully well that such a bigoted attitude hampers the very process of communication. Nor does it provide Kannada with any extra strength. In short utility consitent with clarity, simplicity consistent with the subject under consideration, and derivability of compound words consistent with the genius of Kannada are the guiding principles. Thus we may translate, transliterate or recreate an alien term and assimilate it into our system. *Electron* is transliterated. *Electron microscope* becomes *electron sookshmadarsaka. Electrolysis* is translated to read *vidyudvisleshana. Metabolism* is recreated to become *upapachaya. Rotation, revolution, ionization* and *hydrogenation* are respectively *avartane, paribhramane, ayaneekarana,* and *hydrojaneekarana.* Sanskrit words and roots come in quite handy just as those of Greek and Latin do for English.

I may safely assert here, with some practical experience in the handling of this problem, that any Indian language (Tamil included) just cannot ignore Sanskrit (and English of course) except for fanatical reasons, and if it does it is to the allround detriment of the users of that language. How can geographical or manmade boundaries control the free flow of sunshine, air and water ? Science and fanaticism do not go together. A language that does not heed this pragmatic advice may surely succeed in creating an Esperanto but this unwanted progeny of an unholy marriage of fanticism and chauvinism can at best 'decorate' a museum gallery. It will never facilitate the reader to get into the inner kingdom of science : he will miss the seed for the chaff. Let us not forget even for a moment that our ultimate aim is communication and not exhibition, displaying reality correctly and not resorting to jargonized skullduggery.

Techincal terms have never posed any real serious problem to us in Kannada. Complex concepts enunciated in Astrophysics, Quantun Dynamics or Superstring theory. latest developments in Space Travel,

Genetics or Superconductivity, or minor advances in Oceanography, Thermal Energy or Nuclear Waste have been expressed in modern Kannada with a reasonable degree of success. The lapses observed here are of personal nature which I will explain soon.

(ii) Abbreviations. We have absorbed them lock stock barrel into our literature. It would be foolish, nay criminal, to meddle with these islets of concepts which have transcended temporal and national barriers. The international nature of science is nowwhere pronounced and obvious than here. In the highest state, science communicates through symbols, signs, abbreviations and equations, (iii) The next three characteristics, namely, axioms and hypotheses, logical consistency, and language beauty, are dealt here under one head called the personal element.

The *personal element* in a science writer comprises three basic faculties : subject competence, language mastery and missionary zeal. In the absence of any one or more of these faculties his work will be a lacklustre attemt failing to communicate.

(a) Subject comptence. He should be able to write from a position of strength. Only then will he have a clear picture of what to present and how to do it. He is fully aware of the structural plan of his intended construction. One can artain such a mastery only by studying reference works of technical excellence and not by reading popular literature alone in the subject.

(b) Language mastery. He should be able to hadle the language with authority. His felicity here should match that of a creative writer. Quite a number of science writers in Kannada seem to think otherwise. They feel any normal student of Kannada, if he wants to write on science, ought to be able to do so without any great difficulty. The writings of such people betray them : conceptual clarity is shrouded by a cloud of jargonized bunch of words confusing equally the writer and the reader ; Journalism is not literature. Scientific concepts are more abstract and abstruse and as such more difficult to understand than real life situations. Hence a science writer cannot communicate effectively without being a master of his language. A glance into the popular works of Einstein, Jeans or Gamow of yesteryears or of Asimov, Sagan or Patrick-Moore of present times not to forget our own inimitable Jayant Narlikar will bring home the strength of my argument. Language is the building block of the conceptual citadel.

(c) Missionary zeal. He should be fired with a missionary zeal to accomplish the selfchosen task keeping excellence foremost. Communication is one the greatest joys that human beings can indulge in without getting spoiled. In fact every successive attempt renders the intellect sharper and language clearer. If however one attends to this exhilaration work with a sense of compulsion or reluctance one misses the joy and the resulting output is dry and drab literature. Zeal is the binding force keeping the building blocks in position and shape.

A happy blend of these personal traits will make an excellent author. *Such author-communicators are rare in Kannada.* This is not because of any inherent deficiency in the language but because the field is not attractive, financially and otherwise, to original talents to make a debut into it. And those who are active in the field at the present times, most of them at any rate, are just unaware of the faculties mentioned above. Position of weakness, poor command of Kannada and lack of zeal to communicate or ignorance of the art of writing are their 'qualities,' and their work naturally suffer from beriberi. The result is mediocrity being paraded as high talent. Gresham's law in action.

Why the field is not attractive to genuine talents ? Communication implies two parties ; communicator and receiver. The receiver is simply not there in Kannada except in the field of education where up to SSLC, science subjects are offered in Kannada *also.* This *also* factor has killed the very soul of science. The model books produced by the Government agencies are models of antiexcellence and inelegance. In such a barren field how can a first-rate communicator thrive ? He will move in search of pastures fresh where he can bloom better.

When I say this I am not blind or deaf to the mass of science literature produced in Kannada. We have popular journals, dictionaries, encyclopaedias, referenee works, textbooks, translations, biographies, science fiction, and aids and guides to technical workforce. In addition to the Universities and the Government Educational Department, several public institutions like Akashvani, Dooradarsan, CFTRI, NGEF, Government Forest and Agricultural Departments, Kannada Sahitya Parishat, Karnataka Rajya Vijnana Parishat and private publishers like IBH Prakashana, Navakarnataka Publications Private Ltd etc are bringing out science books and pamphlets. Newspapers and periodicals devote regular pages/columns for matters in science. Quantitatively the productions make an impressive mark. Statistically we are very progressive. But qualitatively ? Miles to walk, and climb too.

Science communication in Kannada is definitely in bad shape. An *n*th carbon copy of some mediocre publication in English or borrowed matter from English dailies (not scientific journals) brought out in Kannada script cannot be considered as basic science literature. This is not a happy state. It can be set right only if the Government authorities in charge of Education (school, college and university) wake up from the age old hybernation due to inertia, unconcern and Narcissus complex and create an academic atmosphere where excellence alone is the coin in currency. Knowing too well the country's current political climate it is utopian to hope such a situation to unravel round the corner. Until it is done science communication in Kannada will continue to linger at the mediocre level now prevalent. Occasional crests of excellence may be noticed. But they are highly individualistic attributes and not institutional attainments. So the non-English-knowing Kannadiga readers will continue to get poor stuff whereas their brethren, the English-knowing Kannadiga readers will have access to first-rate literature in English. This is certainly not a desirable state in a democratic welfare state.

You may rightly ask me my part in the field of science communication through Kannada. In my limited sphere of work I strive to maintain conceptual clarity foremost dovetailing language to that effect. To make the writing attractive I import freely our cultural archetypes wherever they serve communication better. For example after explaining in depth the relativistic bending of a ray light when it passes in the vicinity of powerful gravitational field I invite the readers' attention to the shadow of Hanuman being pulled down by Simhika when the former was flying across the ocean in search of Sita. *Nachiketa Prayatna* to indicate the highest intellectual effort, *Arjuna Lashya* to illustrate one goal at a time, *Karna Ekagrate* to illustrate the highest degree of concentration are some of the other cultural archetypes which I make free use whenever there is a functional need.

However this uncompromising rigour that I have imposed on myself has earned me the 'distinction' of being a terse writer. I have examined this issue deep, and objectively compared my writings with some of the socalled 'popular' or 'simple' writing of other writers now in the field. The result is not very complimentary to our elitist readers : while the villagers and the non-English-exposed Kannadigas do follow my works/ articles with enthusiasm, the urban readers with a stint in English find my style hard and neddlessly (or miserly) crisp. I discuss these issues in

meetings and seminars and invariably end up with the cryptic comment 'I can find you an argument but not an understanding : if you do not know basic idiomatic Kannada you've to seek the solution elsewhere.' Style is man and I see no reason why I should dilute mine.

In conclusion let me sum up : the problems are not academic nor unsolvable : and the prospects are quite bright if the political will is displayed with imagination by the Government :

1. In Karnataka the medium of instruction and examination should be Kannada at all levels.

2. English and one more language should be compulsorily taught to the students from the primary stage upwards.

3. The Textbook Directorate should be denationalized and the responsibility to produce textbooks and other reading material should be entrusted to a nonpolitical academic body.

4. The standard of Kannada right from the primary stage needs thorough upgrading.

5. Basic talent and total commitment alone should be the deciding factors in choosing the authors for writing books.

□□

श्रीमती हरिप्रसाद

कर्नाटक में विज्ञान की लोकप्रियता

हमारे देश में विज्ञान की लोकप्रियता में दो बाधाएँ आड़े आती हैं—(1) परम्परा से चली आने वाली सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ तथा (2) संचार के लिए अनेक भाषाओं का प्रयोग ।

कन्नड़ भाषा में स्वतन्त्रता से भी 30 वर्ष पूर्व विज्ञान संचार के लिए ''विज्ञान'' नामक पत्रिका का सूत्रपात किया गया था । अब मैसूर से 'आहार विज्ञान' नामक स्तरीय पत्रिका प्रकाशित हो रही है । इसके द्वारा केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिक शोध संस्थान में होने वाली खोजों से जनता को अवगत कराया जाता है । 1935 में मैसूर विश्वविद्यालय ने प्रसार व्याख्यानों का शुभारम्भ किया जिसके अन्तर्गत सुदूर देहातों में लोकप्रिय वैज्ञानिक व्याख्यान दिये जाते, उन्हें पुस्तकाकार किया जाता और चार आने में बेचा जाता । यह परम्परा आज भी जीवित है । 1969 में मैसूर विश्वविद्यालय ने एक त्रैमासिक पत्रिका 'विज्ञान कर्नाटक' का प्रकाशन चालू किया । अब तो 'जनप्रिय विज्ञान' तथा 'कृषि विज्ञान' पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होने लगी हैं । 'विज्ञान लोक' नामक एक अन्य पत्रिका भी तटीय क्षेत्रों से निकली किन्तु ठीक से चल नहीं पाई ।

विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए स्वैच्छिक संस्था कर्नाटक राज्य विज्ञान परिषद् की स्थापना से एक नया मोड़ आया । इसने 1978 में 'बाल विज्ञान' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया । आज इस परिषद् की राज्य भर में 300 इकाइयाँ हैं, जहाँ लोग मिलकर भाषण, प्रयोग, प्रदर्शिनी आदि का आयोजन करते हैं । परिषद् का उद्देश्य वैज्ञानिक मनोवृत्ति के प्रसार के साथ-साथ 1 से 10 रुपये तक की पुस्तकें छापना भी है । यही

नहीं दीवाल में चिपकाये जाने वाले बड़े बड़े पोस्टर—'विज्ञानदीप' के नाम से बच्चों को विज्ञान की शिक्षा देने में सहायक बन रहे हैं ।

लेखिका का अभिमत है कि लोकप्रिय विज्ञान ऐसे लोगों के लिए ही नहीं जो विज्ञान में दीक्षित नहीं हुए अपितु यह विद्यार्थियों के लिए सबसे विश्वस्त साधन है । हाँ विभिन्न आयुवर्गों को ध्यान में रखकर लिखा जाने वाला साहित्य अधिक उपयुक्त एवं लाभप्रद सिद्ध हो सकता है ।

Sreemathi Hari prasad

Popularization of Science : Strides in Karnataka

As models of progress, the western countries were references for the developing countries in reaping the fruits of modern science and technology. A hundred years ago, there was a big hiatus between the western and the countries like ours. The necessities of life, like food, shelter and clothing for which developing countries had to struggle were available at the door-steps of the advanced ones.

It took little time for the intelligentsia of the developing countries to realise that the modern science and technology were dynamic in this process towards prosperity and wellbeing. As the former half of the twentieth century has been eventful for many third world countries in coming out of the shackles of colonialism, the high priority of the independent nations has naturally been steps to pave way for self-sufficiency. Undoubtedly, science, with its expanding horizons, was the answer to this.

Hence, the task of adopting modern science and technology *per se* at one level, to immediately bring about the transformation in the everyday life of people started in the new-born states. The other level was to start the rather slow but long range work of trying to reach the people through popularisation of science so that science becomes a part of their life and they are able to select and practice relevant areas of science and achieve technologies that are most appropriate and be in a position to command the material world around them to suit their needs. This may

sound an Utopian concept but proper ·practice of science by all those concerned can make it a reality.

In India, the post-independent era with visionaries like Jawaharlal Nehru, Dr. Bhabha, Dr. S. S. Bhatnagar and a galaxy of committed leaders started its hectic activity of indigenising science and technology to improve the quality of the life of people. The task of reaching people through science popularisation also started mostly through voluntary agencies and individuals. Today, it is almost a mainstream activity throughout the country which was testified by the confluence of the five routes of Bharathiya Jatha at Bhopal on 7 November 1987 and as a culmination of the People's Science Movement which (PSM), more than a decade ago, started in pockets of areas.

Popularisation of science in our country had two hurdles to cope with ; (1) that of the socio-economic problems bogged by traditionalism and (2) that of several languages for communication for which there was no universally applicable model. The present paper deals with the seeds and precursors for the PSM in Karnataka and its present stature.

As long ago as 1917, a popular science journal was started under the name 'Vijnana' by Bellave Venkaṭaramanappa. The periodical ran for two years and closed down, perhaps, due to lack of funds/subscription. The print medium is even today a strong vehicle of popular science communication as it enables the reader to read, reread and take his time to understand. Seventy years ago, 30 years before Independence, this potent medium was employed in Kannada.

Thirty-nine years later, the Central Food Technological Research Institute (CFTRI), Mysore, a national laboratory brought out a popular science periodical, a bulletin in Kannada entitled 'Ahara Vijnana', "carrying information to the masses regarding the investigation and research being conducted in the Institute", and "wider adoption by the people of the new methods evolved in the Institute for the processing, preparation and preservation of food in all its forms".

"It is quite clear for some time now that if the commonman has to reap the fruits of scientific investigation, the only solution is to write in the language which he understands", wrote Prof. M.S. Thacker, the then Director-General of Council of Scientific and Industrial Research in a message to the periodical.

The main advantages of an R and D Institute supporting a publication for the masses is the authenticity in the subject ; the timely publicity of latest successful R and D work and the possibility of a battery of science writers with a flair for writing from the scientific community itself.

The CFTRI also brought out a Newsletter in Kannada (language version of its counterpart in English) to communicate the R and D work in brief and popular form to the policy makers, industrialists and entrepreneurs.

In 1935, a unique experiment of extension lectures was started by the University of Mysore. Sponsored by the University, the popular lectures were scheduled to be delivered in rural places, villages far removed from the cities, by subject-experts. The lecture would, later, be brought out in the form of a one-eighth crown size booklet costing one-fourth of a rupees (four annas). One, Prof. Rollo, of Mysore University mentioned this in his presentation at a conference in London as the "Mysore experiment" and the *modus operandi* came in for much appreciation. The first of its kind in India this was a sincere attempt by the academicians to establish an organic relationship with the rural people and sharing their knowledge in a manner that is easily understood by the latter. The lecture book series is alive even today. The percentage of popular science lecture/publications which was 30 per cent at the outset, has increased today.

In 1969, the University of Mysore started a science quarterly 'Vijnana Karnataka'. This pattern is more or less adopted by all the Universities-general as well as agricultural-in Karnatak. Popular science lectures/-publications are regular outputs of these institutions. 'Janapriya Vijnana' as the name itself suggests is the Periodical from Bilore Univ. and 'Krishi Vijnana' from Univ. of Agril. Sciences, Bilore are two more periodicals.

At this juncture, mention may be made of a popular science journal which started its publication in a coastal district of the state. 'Vijnana Loka', this science periodical by a band of totally committed people is now a spasmodic publication due to the usual problems of funds and subscriptions.

A major breakthrough in popularisation of science in Karnataka was the birth of a voluntary organisation-Karnataka Rajya Vijnana Pari-

shat (KRVP), which won the first national award for popularisation of science instituted by the National Council of Science and Technology Communication in 1987. The KRVP was preceded by the publication (1978) of a monthly 'Balvijnana' under the aegis of the Karnataka State Council of Science and Technology. As an experiment, Balvijnana proved a successful tool to reach the formative group of the society, viz. the high school students and also an effective contact forum for the lecturers, engineers, doctors, etc. throughout the state and laid a firm foundation for KRVP.

Today, the KRVP has more than 300 units all over Karnataka. A group of any like-minded ten people with the professed objecrive of bringing science to people through activities like lectures, exhibitions, experiments, demonstrations, etc. can start a unit which will be affiliated to KRVP. The Parishat's objective to bring about scientific temper, scientific method and science itself among the people of Karnataka is pressed through a spectrum of activity. Publication of periodicals and books on various topics of interest in a highly reachable price range of Re. 1 to Rs. 10 is undertaken.

Lectures, seminars, demonstrations, workshops, specially produced films, slides have a few of the activities of KRVP.

Two of the Parishat's successful workshops could be mentioned here. Make Your 'Own Telescope' involving patient grinding of the lens and the joy of observing the sky with such lenses has been a very popular workshop in this state.

The second one is the popular science writers' workshop, a regular feature since 3 years and occasionally held earlier, is a honing ground for the writers. It not only sharpens the faculty of writing with precision, variety, intelligibility, lucidity and employing various modes of writing but also brings into focus the universal points of science like authenticity and validity. There is a free flow of information and exchange of knowledge. The above points are not mere statements. Anybody who attends the workshop realises the truth of this highly democratic and gainful manner of the workshop which is beneficial both to the neo-writers as well as the established ones.

The KRVP has been setting up science centres, major ones located at Belgaum and Mysore. These are envisaged to be learning grounds for young and enthusiastic seekers of knowledge. They can conduct the

experiments and experience the pleasure of learning personally, improve their knowledge and may even improvise the experiment. KRVP's attempt to reach the very young learners (6-10 years) is wallposter like periodical—'Vigyana Deepa' which can be displayed on school notice boards.

Extenison/liaison for the already developed appropriate technologies by R and D institutions is another function through which KRVP is attempting to create an appreciation of science by the commonman.

Since KRVP has grown into a grid tody, its activities cannot be exhausitvely listed. But two more prominent ones are worth noting. The biennial All Karnataka Vijnana Meet is one such which brings together the conveners, office-beares of the central and unitary set ups to discuss and introspect about the programmes of work. The other is the task of rationalising and standardissng terminologies in Kannada which is on the anvil and is nearing completion and has taken into account all aspects of such a task like adopting, translating or transliterating and also the dialectical variations of some of the words which are their to stay. This will be a boon and reference to writers of science whether technical, semi-techical or non-technical.

This paper precludes the text book writing and technical publications which have already reached upto degree level in Karnataka.

Today in Kannataka the No. of Pop. Sci. Periodicals is increasing. The latest are 'Samshodhaka' (1987) and 'Vijnana Vahini' (Oct. 1988).

But a word about some of the hallmarks in the popularisation of sciece in the print medium. Dr. K. Shivaramakarantha (a Jnanapeeth Award winner) has published encyclopaedia Balapahancha (1930's) which has chapters in popular science. He also brought out a one-man encyclopaedia of four volumes in the fifties and sixties on physical, biological, astronomical and technological subjects. The University of Mysore has been publishing a mammoth encyclopaedia series starting from (A) which has now come to the fag end of the said series.

Another truly popular science encyclopaedia in Kannade is Jnanagangothri (70s), a seven volume series in which three have been devoted to physical sciences, biological sciences and the world of technology. This is aimed at readers below 18 years and any layman who has studied upto High School.

Popular science writing should not be taken as writing only for the totally uninitiated. The target groups range from the uninitiated to an expert in science who is fully conversant in one specific field and is not so knowledgeable in an area far removed from his. Popular science writing is also meant for such readers. The greatest beneficiaries, perhaps, are the students for whom enough reliable literature is not available to match their pursuit of learning. Hence the art of varying according to specific group is important in the context of a country like India, where literacy is gaining importance through sustained efforts of the state.

Another crucial point for creation of scientific literature—popular or technical—is the quality of science prevalent. The science literature can be creative only when indigenous and relevant science and technology respectively are firmly rooted in the native soil. This will automatically give rise to original writing. Otherwise, most of the works will be mere translations.

The complementary aspect of popularisation of science between the government and voluntary agencies must be recognised and logistics worked out for such coordinated efforts instead of mutually exclusive activities. There are certain areas of works for which voluntary agencies are better equipped, but necessary policy or relevant support must come from the government.

Science can be absorbed better by the common man, if he is told that science is the part of the material world around us and requires to be recognised and followed.

□□

जे० कोनेटीराव

तेलगु विज्ञान पत्रकारिता

आन्ध्र प्रदेश में विज्ञान की लोकप्रियता विगत 100 वर्षों से चली आ रही है। तब देश में अशिक्षा का बाहुल्य था और अंग्रेज़ी सरकार को बाबुओं की आवश्यकता थी, वैज्ञानिकों की नहीं। यही कारण है कि आन्ध्र प्रदेश के पहले विज्ञान लेखक (1888 ई०) श्री कण्डूकुरि वीरेशालिंगम पंथुलु जो राजमुहेन्द्री के थे, एक समाज सुधारक थे। उन्होंने उस समय प्रान्त में फैले रसवाद या ऐल्केमी के विरुद्ध संघर्ष किया और बतलाया कि लोहे से सोना बनाना असम्भव है। उन्होंने 'राजेश खर चरितम' नामक उपन्यास में इसका वर्णन किया है। तेलगु भाषा देश की उत्कृष्ट भाषा में ही नहीं अपितु वैज्ञानिक संचार के लिए सर्वथा उपयुक्त है। सन् 1915 में श्री कुमाराजु लक्ष्मणराव ने विज्ञान का पहला विश्व कोश तैयार करने का प्रयास किया किन्तु 1923 में उनकी मृत्यु हो जाने से यह कार्य ठप रहा। नक्षत्र विज्ञान के क्षेत्र में गोबुरि वेंकटानन्द राघवराव ने विज्ञान पत्रकारिता का प्रवेश कराया।

1940 के बाद तेलगु में विज्ञान लेखन में विविधता आई। श्री बसन्तराव वेंकटराव की रचनाएँ सामने आने लगीं। तभी प्रथम महिला लेखिका डा० कोमाराजु अटचम्बा, जो स्त्री रोगों की विशेषज्ञा थीं, तेलगु में लिखना प्रारम्भ किया। 1947 में तेलगु भाषा समिति बनी जिसके माध्यम से 16 खण्डों में 'विज्ञान सर्वस्वमु' छापने की योजना बनाई गई। 1955 में इसके प्रथम खण्ड का विमोचन हुआ और 20 वर्ष बाद द्वितीय खण्ड का। अभी अगले खण्ड छापने शेष हैं।

इसके बाद अनेक लेखकों ने सराहनीय प्रयास किये हैं, जिनमें वेमराजुभानुमूर्ति, विस्सा अप्पाराव, वेमुरि विश्वनाथ शर्मा तथा ए० वी० एस० रामराव मुख्य हैं। इनमें से कइयों ने बच्चों के लिए भी पुस्तकें लिखीं।

सम्प्रति डा० जी० समरम जो कि चिकित्सक हैं, श्रीमती के० अटचम्बा की परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। श्री नन्दुरि राममनोहरराव ने ज्योतिविज्ञान तथा मानव विकास पर (विश्वरूपण तथा नरावतारम्) पुस्तकें लिखी हैं।

डा० महिधर नलिनीमोहन राव न केवल विज्ञान लेखक अपितु कवि भी हैं। डा० बी० जी० वी० नरसिंहराव; श्री सर्वेश्वर शर्मा, आर० एल० एम० शास्त्री तथा सम्मेता गोवर्धन अन्य प्रमुख लेखक हैं। नवोदित लेखकों में श्री पुरन्दर रंगनाथ, जो 'आंध्रज्योति' के सम्पादक हैं, तथा श्री जे० कोनेटीराव, जिनका प्रिय विषय जन्तुविज्ञान हैं, अनेक पुस्तकों के लेखक हैं।

दुख तो इस बात का है कि तेलगु भाषा के समाचारपत्र कथा-कहानियों को तो काफी स्थान देते हैं किन्तु विज्ञान सामग्री के लिए स्थान देने से कतराते हैं। इस समय केवल एक पत्रिका 'तेलगु' में विज्ञान विषयक कुछ लेख छपते हैं। आवश्यकता है कि स्कूली पुस्तकालय विज्ञान पत्रिकाओं का क्रय करें तभी विज्ञान का सही-सही प्रसार हो सकेगा।

J. Koneti Rao

The Past, Present and Future Possibilities of Science Journalism in Telugu

The year 1988 is very significant for Telugu Science Journalism. It is its centenary year. The roots of the science popularisation in Andhra Pradesh can be traced to 1888. However the beginings of the science popularisation has neither started with a bang nor is it cent percent exposition of future science.

But what is science and its relevance to common man unless it has some important bearing on his daily life ? It must be related to medicine or agriculture, fisheries or poultry, transport or residence. Anything that elevates the level of his social life is needed in this cotext.

The advances made in science by 1888 must necessarily be very low when compared to the later decades. It is only just then that Europe came to realise slowly but surely that germs are the cause for diseases like Tuberculosis.

The peculiarity of the Indian scene at that time is that our country as a whole is largely unlettered. The British Government is interested in only manufacturing clerks to the required extent. Not that the situation has changed very much now, But at that time even if some of the basic principles of science are understood by one, there is no vehicle for communication. Even if it can be communicated through writing, the readership is vastly limited.

Our ancestors have resorted to issue some sort of unwritten instructions as to how we should conduct ourselves in our day to day life. These instructions are passed on from generation to generation in the form of customs and habits. These are probably based on principles of science of that day and passed as 'Sastram.'

Sastram says for example that we should wash our feet before we enter the house. Thus the Sastram of the day understood that some agents are likely to be carried inside which may bring harm to the human inhabitants. The germ theory is already understood.

Sastram of this type invades our daily custom and is likely to become a chadastam (obsession). The obsession of this type leads to several funny situations. The brahmin families are at the receiving end and have become an object of ridicule due to this. Such practices are still prevalent in the villages of India.

It is significant that the first science writing in Telugu is attempted by that great social reformer of Andhra Pradesh Sri Kandukuri Veeresalingam Panthulu of Rajahmundry in the year 1888.

His subject was peculiar—to make fun of such *Chandasa brahmin* habits. How the brahmin widows take full dress head downwards bath on certain simple, flimsy grounds or excuses of having been seen by some untouchable or touching some thing polluted in their view called 'myla.'

He also took more serious subjects as matters of discussion and tried to alert the common man so that he does not fall a prey to people who are prone to deceive him. He wanted them not to give an iota of credence to the talk about spirits and ghosts, devils or even fairies and angels. The simple reason is that they just do not exist. The present day belief in chethabadi or Banamathi or chillangi still existing in some parts of the country was attacked by him in his own science expositions. The rationalistic way of thinking backed by realistic and experimental evidence was conveyed to common man even a century back.

He has directed his attention to another scientific riddle having chemistry as its back drop. The country in general and Telugus in particular are quite familiar with Vemana who was a feudal zamindar first and later turned out to be a great philosopher saint. It is widely believed that he practised Rasavada or Alchemy to turn base metals into gold during his earlier phase of life. Veeresalingam propogated that this is

mere wishful thinking and is an impracticable proposition. The modern science also states accordingly.

Veeresalingam wrote a novel 'Rajasekhara Charitram' hundred years back in which he attacked this resavada. That is how science writings made a beginning in a popular way in Telugu.

Telugu is one of the several languages of India. Every Language is sweet specially to those whose mother-tongue it is. But it may be mentioned here that the great Emperor of Hampi of sixteenth century praised that among the country's various languages Telugu is the best. That apart the great scientist J. B. S. Haldane also felt that Telugu among the Indian Languages, which is called the Italian of the East, is best suited for communication of science. Let us now trace how the language is used as a vehicle for science writing duiing this Century.

After that period in last century, Telugu public has to wait for atleast quarter century to again get a feeling of science in Telugu.

It is in 1915 that Sri Komarraju Lakshmanarao made a bold attempt to produce an encyclopaedia of Science. The attempt is some what unrealistic also as it was a solo attempt on his part. probably not many writers of competence in science were available. It is also poosible that sponsors of sufficient resources to sustain the great effort were lacking. His encyclopaedia was called 'Andhra Vijnana Saraswamu.'

He produced one volume an year on an average for three years. But sadly he has not even touched the fringe of the vast ocean he intended to cross. His encyclopaedia was arranged in alphabetical order. But then the attempt proceeded only to a level in the first alphabet 'A.' He died in the year 1923 when he was still gathering information for his fourth volume.

For the next 15 years it was the turn of Desodharka Kasinathuni Nageswararao, the great nationalist leader and founder of the oldest Telugu Daily/weekly 'Andhra Patrika'. His attempt to revive the project also ended in failure as he died in 1938.

Meanwhile a writer by name Gobburi Venkatananda Raghavrao is creating waves in Telugu popular science journalism. His favourite subject was astronomy. A scholar in Sanskrit, he made an attempt to

synthesise ancient and modern Astronomy or to put it in another way east and west versions of Astronomy.

His writing appeared in several journals especially 'Bharathi', a prestigious monthly started by Desodharaka himself to cater to the needs of culture and science. Gobburi wrotc several books on astronomy.

We had thus a slow and sluggish first half century of Telugu popular science writings. The second half century started in 1940's. The writings have become more varied, the number of authors has increased and the writings exhibitcd greater depth in content.

The leading light of this phase is none other than Sri Vasantha Rao venkatarao who is like a collosus. He is not only a prolific writer but also a speaker and talker. His articles, speeches and Radio talks are a legion and have their distinctive stamp. He is like a Savyasachi combining fluently and effectively the ancient Hindu Scientific thought with modern developments of science. His main fields of activity are physics and astronomy. What is more he is a poet of considerable talent and combines his scientific thoughts with fluent poetry. His span of activities extends for more than 50 years from 1934 onwards.

The distinction of being the first popular woman science writer in Telugu goes to Dr. Komarraju Atchamamba. She is a physician and made best use of her knowledge and produced a book on Gynacology in Telugu. The book became very popular. Several misconceptions regarding child bearing, delivery and bringing up are cleared. The book was published by Prajasakthi Prachuranalayam.

1947 saw the entry of Government agencies in the field. Telugu Bhasha Samithi was established in Madras. A decision to produce Vijnanasarvasvamu was taken. Sixteen volumes are proposed to be published. About half of them are to be in various science subjects. 1955 saw the release of physical Sciences Volume. Biological sciences had to wait for 20 years and was released in 1975. Other volumes came in between and later on.

Then came several science writers in Telugu who made sincere attempts in this direction. Mention may be made of Sarvasri Vemarju Bhanumurthy, Vissa Apparao, Vemuri Viswanatha Sarma and A. V. S. Ramarao, Some of them wrote a number of books and they have also

received distinction in the form of awards from the Central Government schemes for popularisation of science among children and neoliterates.

Dr. Srtipada Gopalakrishna Murthy is another star in this field. He specialised in physics and wrote a large number of articles. He contributed to a column in the popular weekly Andhra Patrika. His attempt is a poineering effort in the sense he not only wrote articles but attempted to create scientific vocabulary on which later writers heavily leaned.

Thus we enter into the last and the latest phase of 30-35 years. There are certain established writers now and several others are knocking at the doors eager to open their accounts.

Dr. G. Samaram being a physician by profession almost picked up the thread left by Dr. K. Atchammamba. He is highly competent in putting science in an easy flow language. His knowledge in the science of sex is vast. He is attempting also to bring the knowledge of genetics to the door step of common man. His two features in Andhra Jyothi weekly, one Dampatya Deepam and another Genetics in every day life are highly relished and widely read. They have come in the form of popular books. The trail he blazed continues in several magazines where competent doctors answer questions of cammon interest in medicine.

Sri Nanduri Ramamohanarao wrote books on Astronomy and evolution of man (Viswaroopam and Naravataram). They have gone through several editions also. Being an editor of a leading Telugu Daily and other sister publications, he is probably unable to concentrate on this field.

The physical sciences are at present ably handed by some competent writers. They are all having their weekly or monthly columns which are avidly read.

Dr. Mahidhara Nalini Mohanarao is very unique in this field. He is a poet of considerable versatality which comes handy in combining science with literature. He specialises in trying to remove the outmoded and false conceptions from the minds of his readers. He is a rationalist to the core with great zeal and dedication. He writes in several leading dailes and magazines. He is awarded the Indira Gandhi Prize for popularisation of science in 1987.

Dr. B. G. V. Narasimharao combines very successfully his fieid of knowledge of chemistry with medicine. He knows exactly what is re-

quired to be communicated and, what is more, how it should be communicated.

Sri C. V. Sarveswara Sarma has the distinction of conducting Kona Seema Parished and literally taking science to the footsteps of common man by lecture demonstration and science exposition through story medium. He is always on the move to villages. He also specialises in space science, an off-shoot of his branch of science, physics.

Dr. R. L. N. Sastry and Sammeta Govardhan specialise the field of Botany. They write occasionally.

Then there are two active journalists who also write science articles in Telugu. Dr. Gummanuri Ramesh Babu got his Doctorate in Zoology (Toxicology) and working as an Assistant Editor in Andhra Patrika. His writings are very interesting as he combines science with philosophic tinge. Sri Puranapada Ranganath works as Assistant editor in 'Andhra Jyothi.' His subject is chemistry. On invitation of the Government of U. S. A. he went to America to study specifically this popular science writing and other aspects.

J. Konetirao writes mostly in zoology and occassionally in other science subjects. He wrote several books on science for several publishers. His articles in several Telugu dailies, weeklies come to several hundreds. He gave several Radio talks on All India Radio. He also gave several popular sciencc lectures. Some of the books he wrote are on Snakes, AIDS, wild life, Genetic Engineering, Evolution of man, Astronomy, Genetics and so on. His translations are published by National Book Trust, Delhi, Andhra Pradesh Academi of Sciences, Hyderabad.

At present he is writing a daily column on wild life in 'Andhra Bhoomi' of Visakhapatnam besides other items.

His aim is to write on test-tube babies and Artificial insemination and an encyclopaedia of the animal world. He also intends to take active part in starting a Telugu Science Magazine.

Popular Science writers in Indian languages have no common platform to discuss these various problems. Vijnana Parishad has taken a great step in this direction and afforded us a unique opportunity to meet together and exchange our happy and not so happy experiences.

All of our languages suffer historically because just at a time when the field of science is unfolding in the last century the languages are stifled and are not allowed to imbibe the flow of sc,ence information. We have thus missed the historic opportunity. By 1947 it is too late to rectify the situation. What is more discouraging is the controversy raised in regard to the introduction of language medium in teaching.

In 1968 the state Government of Andhra Pradesh introduced Telugu as the medium of instruction in under-graduate classes progressively. Thus a lot of scientific terminology is built up.

The dailies, weeklies, monthlies of course are exhibiting a lukewarm attitude. They no doubt are giving opportunity but it is far below the expectations or requirements. The attention is mostly directed towards medical fieid largely in the form of question and answer sessions.

The momentum built up by the science knowledge is largely misused and distorted for fictional attempts. The knowledge of science is being thrown into utter confusion. Page length and double page length diagrams are devoted to emphasise a single-point in these incidents. But editors are feeling great difficulty in devoting two or three pages with illustration for the dissemination of science knowledge.

Who is at fault in this dishearting state of affairs ? The reader, the writer, publisher, the editor or the Government ?

The Government of Andhra Pradesh seem to have taken certain significant steps. The Local Fund Libraries are made to earmark a certain percentage of amount for purchase of science books. This momentum must be kept up and science writers should come forward and publishers encourage them.

An account of the history of science journals in Telugu makes a sad reading. As the proverb goes they are born under one star and dead under another star. Several attempts are made to start Telugu journals in science and are ending in disaster. Vijnana Vahini, Science Vani, Avanthi-all ended in the same fate.

Even American Andhras published a science magazine in seventies, 'Telugu' which also suffered the same fate.

At present Telugu Akademy of Hyderabad is running a magazine called 'Telugu' monthly which publishes Telugu science articles along

with social Sciences and Literature. Even this magazine is enjoying life just because it is subsidised. The questions that come uppermost in our mind are : Is the common reader himself indifferent to science and science articles ? Cannot the popular literary Journals devote more space to Science ? Cannot they improve the taste and choice of readers towards science and elevate the level of their preferences ? Cannot the Govt. insist on thousands of schools and colleges to subscribe to Science Journals and Science books ? Cannot they start exclusive Science Libraries in the District and Mandal Head Quarters ? Won't they help the candidates vastly to improve a lot and face competitive examinations in Telugu with confidence ?

There is a great imperative need to educate common man in various fields of science and make his life worth while. Space Science, perils of atmospheric pollution dangers of deforestation, advantages of Fisheries poultry, maintenance of wild life and so many fields are open, just waiting to be convyed to common reader. All of us must put forward our best efforts.

□□
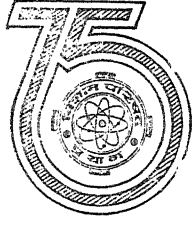
सम्मेता गोवर्धन

भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखकों की समस्याएँ

अभी तक भारतीय भाषाओं में और वह भी तेलगु भाषा में लोकप्रिय विज्ञान लेखन की ओर नहीं के बराबर ध्यान दिया गया है, किन्तु तो भी तेलगु के लेखक डा० महिधर नलिनी मोहन राव ने श्री सुरेन्द्र झा के साथ इन्दिरा गांधी पुरस्कार प्राप्त कर इसे सर्वोच्च शिखर तक पहुँचा दिया है।

तेलगु आन्ध्र प्रदेश की सरकारी कामकाज की भाषा है और साहित्यिक क्षेत्र में अपनी प्रगति के लिए विख्यात है। सम्भवतः यही कारण है कि अल्पकाल में तेलगु ने विज्ञान पत्रकारिता तथा लोकप्रिय विज्ञान लेखन में अच्छा नाम कमाया है। किन्तु कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जो समस्त भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों को घूम-घूम कर तंग करती हैं। उदाहरणार्थ---भारतीय भाषाओं में मूलभूत ग्रन्थों का अभाव। भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों को अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएँ यथा साइंस लैंसेट, न्यू साइंटिस्ट तथा नेचर उपलब्ध नहीं हो पातीं और उनके मूल्य भी अधिक होते हैं।

इसी तरह, भारतीय भाषाओं के लेखक विशिष्ट वैज्ञानिकों से मिल नहीं पाते जिसके कारण उन्हें प्रामाणिक जानकारी नहीं मिल पाती। इसलिए आवश्यक है कि इस तरह की भेंटें आयोजित की जायँ।

जहाँ तक पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न है, तेलगु एकेडमी ने विभिन्न विज्ञान विषयों की शब्दावली तैयार कर दी है।

व्यावसायिक प्रकाशन लोकप्रिय विज्ञान की पुस्तकें छापने में आनाकानी करते हैं अतएव नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट जैसी सरकारी संस्थाओं को ऐसी पुस्तकें छापने के लिए आगे बढ़ना होगा ।

यही नहीं पाठकों का भी अभाव है । यदि आवश्यकता को ध्यान में रखकर विज्ञान साहित्य लिखा जाय तो शायद अधिक सफलता प्राप्त हो । कृषि विषयक साहित्य लाभप्रद सिद्ध हो सकता है ।

विज्ञान लेखकों को तेलगु में लिखने के लिए 15 रुपये से 75 रुपये प्रति निबन्ध पारिश्रमिक मिलता है । वह भी कई मास बाद । अतएव इतने कम पारिश्रमिक पर अच्छे लेखकों को इस ओर आकृष्ट कर पाना कठिन है । सम्पादकों को चाहिए कि लेखकों का अधिकाधिक सहयोग लें । विज्ञान सम्बन्धी लेखों को अपने पत्रों में अधिक स्थान न दें ।

प्रायः विषय का चुनाव लेखक पर छोड़ दिया जाता है, लेकिन विषय को तो ऐसा होना चाहिए जो आज की समस्याओं से सम्बद्ध हो । विज्ञान लेखक का सबसे बड़ा दायित्व है कि वह जनता को विज्ञान तथा टेक्नोलॉजी के विकास के विषय में, उनसे मिलने वाले लाभों के विषय में, सही-सही जानकारी दें ।

Sammeta Govardhan

Problems of a Science Writer in Indian Languages

The citadel of modern civilization is built upon the foundation of science knowledge and scientific thinking. Hence science is an important tool for modern man to grapple with the riddles of present day society. The process of scientific understanding of Nature will be incomplete if there are no ways and means to reach the common man for whom it is also meant. No doubt the fruits of science are enjoyed by one and all, though sometimes unknowingly and to a lesser or greater extent depending on the economic and social background. But lack of communication facilities in the language known by the people in the region and slow development of the language considering the needs of science communication are the main obstacles to a complete understanding of science. To develop rational thinking and to understand things in proper perspective, an awareness of certain basic principles of science is essential. Science communication has an important role to play at this very moment, to keep people abreast of science development.

Science is better enjoyed and digested when the communication is in the form of popular science dealing with familiar problems. *But popular science writing in Indian languages in general and in Telugu in particular has received scant attention so far.* Of course, science writing in Telugu has a brief but praise-worthy history behind it. This has reached its pinnacle when the first Indira Gandhi Award for popularisation of science is shared by a Telugu science writer Dr. Mahidhara Nalini Mohan Rao along with Mr. Surendra Jha.

In this article, an attempt has been made to study the problems presently being faced by science writers in Indian languages with special reference to Telugu. Telugu is the official language of Andhra Pradesh. It is one of the major language of India which recorded fantastic development in literary field. Perhaps this might be the reason why good many science books in Telugu have come out in a recorded time. Telugu language has the necessary potential to effectively present science principles and its applications. Of late, science journalism and popular science writing has seen a steady growth but it is not keeping pace with rapid science development. To throw more light on this, the problems confronted by science writers in Indian languages are discussed in brief.

Information Sources

Original works in Indian languages are very few. Majority of them are direct translations from English. So it is compulsory for a science writer in Indian langugaes to qe proficient in English as the latest information regarding science development is available in English language. Much rated science magazins like Science, Lancet, New Scientist, Nature and for different feature services have adopted English as the medium to reach every nook and corner of the world. But the facilities available to a science writer to get and use them are indeed very poor. The prohibitive cost of them prevent their access to average science writer in regional languages. Documentation facilities are a lot to be desired.

Opportunities for science writer to meet scientists in the field are very few, which makes it difficult to get authentic information whenever it is necessary. A researcher is well acquainted with the latest developments in science and technology, whereas a science writer can express the scientific matter in concise and precise manner and in a palatable way. Obviously there is a need for greater interaction between them.

It is heartning to note that Indian Science Writers Association (ISWA), New Delhi is trying to set-up a media resource centre to help science writers in getting authentic information about scientific matters. Documentation centres for Indian languages pertaining to science would help the raw and the seasoned science writer alike in retrieving maximum information on a particular topic.

Technical Words

One of the major problems faced by science writers in an Indian language is that it is very difficult to find equivalent words in their respec-

tive regional language to convey scientific information. Introduction of Telugu as medium of instruction and its newly elevated status as official language has helped the progress to a good degree in this regard. Many equivalents for scientific and technical terms in Telugu language have either been found or coined in course of preparation of text books upto University level. Telugu Academy, the prime Institute in Andhra Pradesh for Telugu development has brought out a glossary of Technical and scientific terms in different science subjects. These are of great help to science writers in Telugu.

Since the language development is not uniform in respect of all Indian languages, there is a great need for the formation of science writers association in each Indian language. The requirements of Indian languages are varied and hence the need for decentralisation of research in the development of science writing. Equivalents of technical terms should be found out so that their usage is uniform for easy understanding of the reader. Then only the fruits of science can be taken to the door-step of common man.

Concise and precise way of expression has been made possible in English by taking the help of a well developed and appropriate technical terminology. In Indian languages for example, in Telugu, it is very difficult to convey the meaning by suggesting Telugu equivalent which help the reader in quick, easy and proper undertsanding of the subject. Hence it has become essential to devote more space in newspapers and more time on Radio and Television for science to familiarise the common man with newly evolved scientific jargon.

Publication

No doubt, in recent times the newspapers and magazines have become somewhat liberal in allocating print space for science articles. However, it must be emphasized here that it is inadequate considering the development of science.

Commercial publishers are hesitating to publish popular science books as the sales of such books are understandably of course, very discouraging. The Government bodies like National Book Trust, Children Book Trust, Telugu Academy and its counterparts in other Indian languages are striving hard to popularise science by publishing scientific books inspite of financial loss.

There are very few popular science magazines of respectable circulation. It is sad to note that the magazines solely devoted to science are either running at a loss or vanishing for ever. The powerful national dailies should come forward to support popular science in order to preserve the science writer from extinction.

Public Support

A misconcept in any respect, the common man nurtures a feeling that science is meant for educated. As a result science writing in Telugu as well as in other Indian languages lacks popular support. It may be due to the fact that science communication is not in proper, useful and digestible form. Hence the need based science communication is very much essential. For example, to educate an agriculturist about field management, production techniques, pre and post-harvest technology will certainly bring about a sea-change in his opinion about science.

There are only a few people who regularly scan for science news. It is a glaring fact that science interested public are a minority. Newspapers and periodical run by non-attentive people from science development view point and the section of magazine readers who evince interest only in fiction are few discouraging factors. In view of this, the science writer in an Indian language has a very tough job on hand of attracting these casual readers into the fold of science.

Remuneration

Newspaper and magazine editors are ready to pay thousands of rupees as prize money (or remuneration) for writing a novel and in hundreds in case of short story writing. On the contrary, the amount paid to a popular science writer is astonishingly very meagre. In fact a science writer in Telugu is paid between Rs. 15/- and Rs. 17/- subject to the length of the article. Added to this, one has to wait for months to receive the payments. The meagre amount paid for an article and the inordinate delay in payment discourage the science writer. It is rare to find a full time science writer as it will be very difficult to get on solely on it. It is no wonder that majority of the science writers are part-timers who do this after meeting their regular job needs. In these circumstances it is too much to expect good works from them. It is the reason why useful writing in science is very rare commodity to find. The editors need to be more co-operative and considerate towards Science writers in Inian languages.

Choice of the Subject

In most cases, the editors don't insist science writer to concentrate on a particular topic. It is left to science writer's discretion to write whatever he pleases to write. It may be due to the fact that there are no qualified staff on editorial boards of newspapers and magazines to assess the needs of the common man. The subject must be dealing with a topic of current interest and should offer useful information regarding the present day problems.

Conclusion

It is the primary duty of a science writer to inform the public about the developments in science and technology and the advantages accrued from them. It helps the common man to overcome the outdated beliefs and concepts pertaining to day-to-day life and make them believe in science. Dissemination of science knowledge at regular intervals through efficient means of communication only can bridge the gap presently existing between science and technology on one hand and the general public on the other. Then only "lab to land" slogan will be fully realised. Mass media has to play a major role to set right the things in this regard. Major print space given to scandalous and fictitious news not related to science reflects the present state of affairs in Indian magazines and newspapers. According to Prof. Dhirendra Sharma, President, Indian Science Writers Association, New Delhi, 65% of the print space is allotted to political black deeds, 25% for advertisements and entertainments, 5% for foreign news and the rest with rapes, crime and voilence and less than 1% of the space is given to science and technology on a regular basis. It is pathetic by any standard.

Prof. Sharma has called upon the Indian Science Writers Association members to strain every nerve to enhance the science coverage in Indian lanpuages. This must be co-ordinated by the Government by making it mandatory for Indian newspapers to devote a minimum regular space to science news.

India is a developing nation and Indian society requires enormous amount of science and technology information. Newspaper editors should realise the necessity to allot more print space for (popular) science articles and encourage the science writers with suitable remuneration.

Incentives in the shape of regional awards have to be instituted to encourage popular science writing in Indian languages. The organisa-

tions like Indian National Science Academy, Indian Science Congress and Government agencies such as N.C.S.T.C., D.S.T. and D.B.T. have to play a vital role in science popularisation by allocating sufficient funds and organising various activities like popular science lectures, workshops, seminars and science exhibitions, besides promoting all the more important activity, i.e. "*Science Writing*".

In a nut shell, it is the bounden duty of our scientific brethren to inform the people so that they are not misinformed, since the endeavour is meant for them and carried out at the cost of tax payers money as well.

डा० एम० नलिनीमोहन राव

तेलगु में लोकप्रिय विज्ञान लेखकों की भूमिका

लेख के प्रारम्भ में आज के वैज्ञानिक युग में भी आन्ध्रप्रदेश में अन्ध विश्वासों को प्रश्रय देने वाले उपन्यासों, कहानियों तथा लेखों की भरमार की चर्चा की गई है, जिसके कारण तेलगु में विज्ञान लेखन को सही दिशा नहीं मिल पाई। जो कुछ ईमानदार लेखक हैं उनके सामने अनेक समस्याएँ है—उदाहरणार्थ छापने तथा बेचने की। सार्वजनिक पुस्तकालयों में जो पुस्तकें दी जाती हैं उन पर 50% कमीशन माँगा जाता है अतएव प्रकाशक पुस्तकों के दामों को कई गुना बढ़ाकर रखते हैं। फलस्वरूप केवल उपन्यास, कहानियाँ तथा निम्न साहित्य बिकता है और लोकप्रिय विज्ञान के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि धोखे से लेखक अपनी पुस्तक छाप लेता है तो उसका खरीदार नहीं मिलता।

लेखक ने इस जाल से बचने का उपाय सुझाया है— अच्छी पुस्तकों की सूची बने और सरकार सीधे प्रकाशक से इन्हें खरीदकर पुस्तकालयों में भेज दें। किन्तु आन्ध्र प्रदेश के 900 पुस्तकालय अपनी इच्छानुसार खरीद करते हैं, यद्यपि उन्हें सरकारी निधि प्राप्त हुई रहती हैं। इसके लिए सरकार को चाहिए कि पुस्तकों के छपे मूल्य की जाँच पड़ताल करे और उनका फिर से मूल्य निर्धारित करे।

Dr. M. Nalini Mohan Rao

Role and Problems of Popular Science Writers in Telugu

What we normally expect in a society is, the more you advance in sciences, the less superstititious the society tends to become. But to the wonder of many a rational mind just the reverse is happening in several parts of the country and particularly so in Andhra Pradesh, where systematic efforts are being made by a section of writers and the press to poison the minds of millions of innocent readers by bombarding them with stories, novels and articles supporting and encouraging all sorts of superstitions day in and day out. This particularly affects the young minrs, who carry this superstitious bug till the very end and thereby an entire generation or even their children are spoiled. This is in spite of the fact that the science education in the country has increased severalfold in the past few years. There is a tremendous rush for science, medicine and engineering courses. DALALS are shamelessly ready to sell seats and people are eager to buy them. You will be grossly mistaken if you think that all this rush is an indicater of a sudden awakening of scientific temper ; no, it is just a business proposition ; a sure way of getting rich. There are any number of people, who would gladly get their heads shaved off at Tirupati if only they could get a seat either in medicine or engineering. The best sellers in Andhra, of course after the medical and engineering seats, are the books on ghosts, witch craft and excorcists. If you care to open any recent Telugu periodical you are sure to find a story

or an article describing the efficacy of *Mantras* in curing snake bites and uncommon illnesses or the tremendous powers of ghosts and ghost-dispellers or the extraordinary occult practices of causing pain or even death at distance by medival arts like *Banamati* or *Chetabadi*. The moral of all these articles is very clear. If a person is struck by a deadly snake or if one shakes his head violently with his eyeballs going up, or if one is paralysed or down with some uncommon diséase, there is no use of taking him to a doctor as it is beyond the comprehension of the so called medical sciences ; instead better consult a *Tantric*. More and more writers are churning out such fantastic stories and novels just to earn quick money and the presswalas are encouraging them by giving crude publicity and fat remuneration. Writers say that they are writing such stuff because the editors want such things and the editors say that the public wants it and the public says—well, who cares for what public says ? Public opinion is the sacrificial goat on the altar of this self-propelled lunacy.

This is the bleak picture of Telugu creative writing today. But there is a silver lining to this dark cloud. There are a handful of progressive writers and among them are a few Science writers, who with unflinching tenacity pour out their writings to dispel these dark forces. They often publish their works themselves, in spite of great financial burden, nurturing a hope that one day these 'black holes' will give way to reason.

Problem before the science writers

The science writers have a highly formidable problem before them, namely printing and marketing. Few commercial book sellers, whose sole aim is to make a quick buck, came forward to undertake publishing these science books. There are several academies and universities, who profess from the roof tops that encouraging science writings is very dear to their hearts, but to this day they have neither published nor given financial assistance to the authors for bringing out a single popular science book worth the name in Telugu.

A coterie of cheap-book-publishers and Managers of Public libraries :

It is well known that at present the book stalls are flooded with colourful cheap novels of sex and crime with an appeal only to baser instincts of the youngsters. Exorbitantly priced books of this kind are mostly purchased by the Managers of Public Libraries who demand about 50% commission for themselves and the publishers readily agree to this cut and dump their books in the Libraries. So as to compensate for this

50% commission paid to the Managers of Public Libraries, the publishers are naturally enhancing the price of books to about 8 to 10 times the cost price. Thus the Library management as well as the book publishers are merrily taking the public to ransom and pocketing between themselves the aid given by the Government to run the Libraries. In this way large number of novels of cheap taste are being manufactured and short stories stand second in the queue. In this game the other intellectual works like popular science, literary criticism, drama, poetry, history etc. of educative value have been driven to the wall. If these are not completely exterminated from the scene by now, it is only because of the tremendous conviction and will power of the authors of these works who are prepared to sacrifice their time, energy and money for the benefit of the common man. Since understandably very few publishers come forward to publish these serious works, very often the authors themselves somehow collect courage to spend their meagre resources to publish a thousand copies of their books ; then start their real trouble. They will soon find that there are few buyers of their valuable books. Book sellers may not like to lift them. Librarians will take them only if he is prepared to pay their 50% commission unofficially, but how many libraries can he visit spending his own money for travel ? Very soon he realises that he has committed a blunder in printing the books, which occupy a big part of his small rented house. If he can recover his expenditure incurred in publishing his book within a decade, he can thank his stars. Now he takes a vow never to repeat this mistake again in his life. This well worn scenario is repeated by other unlucky literary enthusiasts time and again.

It is paradoxical that there is a great need for such books which can enlighten the common man ; the Libraries are starved of such books and still it is not profitable to publish them. It is high time that this vicious circle is broken.

Solution

Fortunately there is a solution for this vexatious problem. Any book of the topics mentioned above excepting novels and stories, published by the author himself or by anybody, may be submitted to a committee constituted by the A. P. Government for deciding the quality and utility of the book. In fact there is already an institution called Registrar of Publistcations, S. C. L. Bldg., Afzulgunj, Hyderabad-12, to do this job. This Institute is right now engaged in giving out citation-

विज्ञान लेखक एवं उसकी मानसिकता

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

आज हिन्दी का भण्डार विज्ञान विषयक साहित्य से भरापुरा लगता है। आकर्षक पत्रिकाएँ दिखाती हैं, बच्चों तथा नवसाक्षरों के लिए विविध विषयों की पुस्तकें दिखती हैं, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए सुन्दर पाठ्यपुस्तकें, कुछ कोश-विश्वकोश और शोधछात्रों के लिए अनुसन्धान पत्रिकायें भी दिखती हैं। यही नहीं, किसानों तथा व्यवसायियों के लिए भी हिन्दी में अनेक पुस्तकें दिख जाती हैं। यह सब विगत 75 वर्षों में विविध प्रकार के विज्ञान लेखकों का सुफल है।

विज्ञान लेखन की दिशा में जिन कतिपय महानुभावों ने हाथ बढाया है—जिन्हें हम विज्ञान साहित्य के उन्नायक कह सकते हैं उनमें पं० सुधाकर द्विवेदी, श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ० गोरख प्रसाद, प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, स्वामी सत्यप्रकाश अग्रगण्य हैं। उन्होंने हिन्दी को इस योग्य बनाया कि वह विज्ञान विषयों के अध्ययन-अध्यापन तथा लेखन की भाषा बन सकी। उसी परम्परा का पालन हो रहा है, किन्तु इधर विज्ञान लेखन में कुछ क्रान्ति (उथल-पुथल कह लें) आई है। कुछ स्वतन्त्र लेखक (फ्रीलांसर) उभरकर सामने आये हैं। 'किन्तु'...इसी 'किन्तु' से उनके विज्ञान लेखन के साथ जुड़ी हुई वह मानसिकता है जिसके कुछ पक्षों का उल्लेख आवश्यक है।

(1) यदि किसी लेखक की 10-20 रचनाएँ एक से अधिक विज्ञान पत्रिकाओं में या साप्ताहिकों में छप जाती हैं तो वह अपने को 'प्रतिष्ठित' मान बैठता है। वह इसकी तनिक भी परवाह नहीं करता कि अपने पूर्ववर्ती लेखकों की रचनाओं को पढ़े। इसीलिए सामग्री तथा भाषा की प्रवीणता पर बड़ा आघात पहुँचता है। इतना ही नहीं, वह किसी

प्रमाणिक सन्दर्भ ग्रंथ को भी पढ़ने की आवश्यकता नहीं समझता। वह अपने को बहुचर्चित बनाने के ध्येय से समाचार-पत्रों में भी लिखता है। परिणाम यह होता हैं कि माँग पूरी करने के कारण उसे गम्भीर अध्ययन (स्वाध्याय) के लिए अवसर ही नहीं मिल पाता। और (बुरा हो इन पुरस्कारों का) पुरस्कार इतने बढ़ गये हैं (जिनकी सार्थकता तो हो सकती है) कि उसे अपने को विज्ञापित करने का सुअवसर भी मिल जाता है। वह पुराने वरिष्ठ लेखकों की तुलना में अपने को श्रेष्ठ और अग्रिम पंक्ति में आसीन मानने लगता है।

(2) आज का विज्ञान लेखक अपनी पसन्द को अपने पाठकों या सर्वसामान्य की पसन्द और आवश्यकता मान बैठता है। आज तक न तो किसी संस्था ने, न ही किसी विज्ञान लेखक ने लोकरुचि का सर्वेक्षण किया है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि एक ही शीर्षक पर एक साथ सारी विज्ञान पत्रिकाओं में तमाम लेखकों के लेख प्रकाशित होते हैं (पता नहीं सम्पादकों की अभिरुचि और मानसिकता कैसी है?) चर्वित चर्वण का अम्बार—वैज्ञानिक सृजन शक्ति का ऐसा अपव्यय—वैज्ञानिक लेखन में प्रदूषण का रूप धारण कर चुका है। यह सब दिशानिर्देश के अभाव से जन्मा है।

(3) यह ठीक है कि मेहनत या परिश्रम का यथोचित पारिश्रमिक मिले किन्तु यदि पारिश्रमिक पर ही विज्ञान लेखक की टकटकी बँध जाय तो अनर्थ की सम्भावना है। ऐसा हो रहा है। तमाम विज्ञान पत्रिकाएँ स्तरीय रचनाएँ इसीलिए नहीं प्रकाशित कर पा रही क्योंकि साप्ताहिकों में पारिश्रमिकों की दरें बहुत ऊँची हैं। विज्ञान लेखक की रचना विज्ञान पत्रिका में न छप कर अन्यत्र स्थान पावे, यह शोभनीय नहीं। लेखकों का अपने दायित्व का ध्यान रखना होगा।

(4) हिन्दी में विज्ञान लेखन के 75 वर्ष पूरे हो रहे हैं। आत्मकथा, नाटक, विज्ञान कथा, उपन्यास, कविता—ये सारी विधाएँ आजमाई जा चुकी हैं। किन्तु शायद ही विज्ञान लेखकों ने इन शैलियों के लिये डटकर अभ्यास किया हो या सिद्वहस्तता प्राप्त की हो। विज्ञान लेखन के लिए जिस सुगठित गम्भीर सार्थक गद्य की अपेक्षा है वह कहाँ है? अंग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद में जैसा गद्य प्रयुक्त होता है वह अंग्रेज़ी शैली के अनुकरण पर होता है। कहाँ है अनुवाद की वह शैली जो अनुवादित साहित्य को भी हिन्दी साहित्य बना दे? व्याकरिणक अशुद्धियों, तथा वर्तनियों पर कौन ध्यान देता है? (आप यह कह कर नहीं बच सकते कि सभी भूलें छापे की भूलें हैं) क्या अब भी वह समय नहीं आया जब लेखकगण इधर पूरा-पूरा ध्यान दें?

(5) पारिभाषिक शब्दों को लेकर बड़ा हो-हल्ला मचता है। पारिभाषिक शब्दों की क्लिष्टता अनेक लेखकों को राजमार्ग से हटकर पगडंडियों पर चलने को बाध्य करती है। किन्तु अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि स्वीकृत शब्दावली से बचकर निकला नहीं जा सकता। इधर "इस्पात भाषा भारती", "इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स पत्रिका" "वैज्ञानिक" तथा "आविष्कार" द्वारा पारिभाषिक शब्दों के जाँच का जो कार्य तत्सम्बन्धी कार्यकर्ताओं के लेखन को ध्यान में रखकर किया आ रहा है वह सही दिशा में उठाया गया

कदम है। वह समय आ गया हैं जब सभी विषयों के विद्वानों द्वारा उन शब्दावलियों की परख की जाय।

(6) हिन्दी के भण्डार को भरने के नाम पर न जाने कितनी विदेशी पुस्तकों का अनुवाद हुआ है—विशेषतया विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का। किन्तु यह अनुवाद कैसा था, क्या किसी ने परीक्षा की? खेद तो इस बात का है कि यह अनुवाद उन छात्रों द्वारा भी नहीं पढ़ा गया जिनके नाम पर यह सम्पन्न हुआ था। यदि सचमुच कोई अनुवादित पुस्तक स्तरीय है तो उसका समुचित विज्ञापन एवं प्रचार होना चाहिए था। इससे लेखकों को दिशाबोध होता।

(7) आज हिन्दी का झंडा उठाने वाले छुटभैये हैं—उन्हीं की ललकार हिन्दी के मस्तक को ऊँचा किये है, किन्तु कब तक ? जो विशिष्ठ वैज्ञानिक हैं, यदि वे हिन्दी में अपने विचार प्रकट नहीं करते तो आशंका है कि दीर्घकाल तक हमारी ललकार की शुष्कता अनुभव की जाती रहेगी। देश के वरिष्ठ वैज्ञानिकों को हिन्दी सीखनी चाहिए, उसमें अपनी खोजें प्रकाशित करनी चाहिए, देश की ही अनुसंधान पत्रिकाओं को हिन्दी में प्रकाशित किये जाने पर बल दिया जान चाहिए। उन्हें प्रफुल्लचन्द्र रे, जगदीश चन्द्र बोस, चन्द्रशेखर वेंकट रामन तथा नार्लीकर के आदर्श अपनाने चाहिए। जब तक उनकी लेखनी से विचार प्रसून नहीं निकलेंगे हिन्दी का उद्यान आकर्षक नहीं बन पावेगा। ये छुटभैये मुखापेक्षी हैं—उनके मार्गदर्शन के लिए वरिष्ठ एवं विशिष्ठ वैज्ञानिकों का सम्बल चाहिए। उन्हें छात्रों के समक्ष अपना दिल खोलकर रखना होगा। हमें जेम्स जीन्स, बर्ट्रैण्ड रसेल, ऐसीमोव-जैसी शैली एवं उन्हीं जैसी विषयवस्तु प्रस्तुत करनी होगी। यदि विश्वविद्यालय का अध्यापक उच्चस्तरीय वैज्ञानिक साहित्य का सृजन नहीं करेगा तो फिर कौन करेगा? यदि वह अपनी व्यस्तता दिखलाकर, यदि वह अपने वैदेशिक अनुभवों को सुनाकर या विदेशी जर्नलों में ही अपने विचार-प्रकट करके अपने को धन्य समझता है तो बात और है अन्यथा उसे प्रेरणा का स्रोत बनना चाहिए, स्ववं लिखना और अपने शिष्यों को लिखने की शिक्षा देनी चाहिए।

(8) व्यक्ति से बड़ी संख्था होती है। अधिकांश वैज्ञानिक किसी न किसी संख्या से जुड़े होते हैं। किन्तु समय की माँग है कि वे भारतीय भाषाओं की विज्ञान संस्थाओं से जुड़ें, उनका मार्गदर्शन करें। वे अपनी कार्यशैली से उन्हें परिचित करावें। कुछ अवैतनिक कार्य-राष्ट्र की निस्वार्थ सेवा करें। अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति का भारतीय भाषाओं में अनुवाद करावें, देश में वैज्ञनिक परिवेश वनाने में सहायक हों।

हमारे स्वतन्त्र लेखक भी क्रमशः अपने स्तर को ऊँचा उठाते रहें। केवल जानकारी दिलाना नहीं। स्वस्थ वैज्ञानिक लेखन की माँग है कि हल्के-फुल्के साहित्य को सदा के लिए विदा कर दिया जाय।

देश की वैज्ञानिक-प्रगति विज्ञान लेखन की सही दिशा, सही शैली और विज्ञान लेखकों के सही उत्तरदायित्व पर निर्भर करेगी।

□□

हिन्दी-भाषी विज्ञान-लेखकों की समस्याएँ

विजय जी

आमतौर पर यह शिकायत की जाती है कि हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में उच्चस्तरीय विज्ञान लेखन नहीं किया जा रहा है। यह भी कहा जाता है कि भारतीय भाषाओं की पत्रिकाओं में मौलिक लेख न होकर अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं के अनुवाद मात्र होते हैं। कुल मिलाकर भारतीय भाषाओं के विज्ञान-लेखन और लेखक को विज्ञान के क्षेत्र में दोयम दर्जा मिला हुआ है।

ये आरोप अपनी जगह सही हो सकते हैं। लेकिन इस दोयम स्थिति के लिये लेखक को ज़िम्मेदार कहना बहुत बड़ी भूल होगी। इसके लिये तो वे सम्पूर्ण परिस्थितियां ज़िम्मेदार हैं, जिनकी बदौलत आज भी देश में विज्ञान का पठन-पाठन और शोधकार्य विदेशी भाषा में हो रहा है।

विज्ञान के क्षेत्र मे अंग्रेजी का वर्चस्व

देश में ऐसी लोगों की संख्या बहुत नहीं है जो अंग्रेजी के बगैर विज्ञान के पठन-पाठन और शोध-कार्य की कल्पना ही नहीं करते। प्रशासन का एक बड़ा वर्ग लगभग इसी विचारधारा का रहा है। यही कारण है कि उच्च कक्षाओं में विज्ञान का पठन-पाठन आज भी अंग्रेज़ी में ही हो रहा है। यही स्थिति शोधकार्यों की भी है। यही कारण है कि उच्चस्तरीय विज्ञान-लेखन आज भी अंग्रेजी भाषा में ही हो रहा है। जब वैज्ञानिक क्षेत्र का सारा उच्चस्तरीय कार्य अंग्रेज़ी में हो रहा है तो उच्चस्तरीय विज्ञान-लेखन का कार्य भारतीय भाषाओं में कैसे सम्भव हो सकता है?

शोध-केन्द्रों का विज्ञान लेखकों से सम्बन्ध

देश के शोध केन्द्रों में लगभग सारा शोधकार्य अंग्रेज़ी में हो रहा है। विदेशों में तो यह सब अंग्रेज़ी एवं अन्य विदेशी भाषाओं में हो ही रहा है। उच्चस्तरीय विज्ञान लेखक वही को सकता है जो उच्चस्तरीय शोध में स्वयं संलग्न हो या शोध संस्थान से जुड़ा है। अंग्रेज़ी के अनेक प्रसिद्ध विज्ञान लेखकों के उद्भव का मुख्य कारण यही रहा है कि उनमें अनेक खुद भी वैज्ञानिक रहे हैं या उनका शोध संस्थानों से निकट का सम्बन्ध रहा है। भारतीय भाषाओं में प्रसिद्ध विज्ञान लेखकों के अभाव का मुख्य कारण यही हैं। डॉ० जयंत विष्णु नार्लीकर जैसे एक-दो भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों की प्रसिद्धि का मुख्य कारण यही है कि वे स्वयं वैज्ञानिक हैं।

लेकिन लोक-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य के निर्माण के लिये लेखक को वैज्ञानिक होना आवश्यक नहीं है। लोक-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य का निर्माता वैज्ञानिक जानकारी रखने वाला सामान्य साहित्यकार भी हो सकता है। आज देश में ऐसे साहित्य की ही सबसे ज्यादा ज़रूरत है। लेकिन लोक-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य के विज्ञान-लेखकों की अपनी समस्याएँ हैं। लोक-विज्ञान के ऐसे विज्ञान लेखक इतने बिखरे हुये हैं कि इनमें न तो कोई आपसी ताल-मेल है और न इनकी कोई आवाज़ है। शोध संस्थानों से इन लेखकों का दूर का भी कोई रिश्ता नहीं होता फलतः नवीनतम् जानकारी के लिये इन्हें अंग्रेज़ी की पत्र-पत्रिकाओं का सहारा लेना पड़ता है।

विज्ञान लेखकों में आपसी ताल-मेल का अभाव

चूंकि विज्ञान लेखन के लिए देश-विदेश की नवीनतम् जानकारी आवश्यक है अतः इस सुविधा की माँग और उपयोग के लिए लेखकों का आपसी ताल-मेल भी ज़रूरी है। आज शोध-संस्थान यदि अपनी खोजों की जानकारी विज्ञान लेखकों को देना भी चाहें तो उन्हें कोई उचित माध्यम भी नहीं मिलता। लेकिन शोध संस्थान और विज्ञान लेखक थोड़ा सा प्रयास करें तो यह समस्या हल हो सकती है। आमतौर पर सभी शोध संस्थान अपनी बुलेटिन निकालते ही हैं। उन्हें यह बुलेटिन अंग्रेज़ी के अलावा एक अन्य भारतीय भाषा में निकालने की अनिवार्य व्यवस्था कर देनी चाहिये। ऐसा करने से भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों को नवीनतम जानकारी उपलब्ध हो सकती है।

लेखक को अन्य भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों की जानकारी नहीं है। लेकिन कम से कम हिन्दी के विज्ञान लेखकों को तो एक मंच पर लाने का प्रयास शायद अभी तक नहीं किया जा सका है। अभी तक हिन्दी के सभी विज्ञान लेखकों के नाम-पतों को भी शायद एक जगह एकत्र नहीं किया जा सका है। लोकविज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाएं ऐसा कर सकती हैं। 'विज्ञान-परिषद्, प्रयाग' ऐसा ही स्तुत्य कार्यकर रही है। अपनी 75

वर्ष पूरे करने के उपलक्ष्य में परिषद् ने यह अखिल भारतीय संगोष्ठी अयोजित की है जिसमें भारतीय भाषाओं के लेखक अपनी समस्याओं पर विचार करेंगे।

विज्ञान पुस्तकों की प्रकाशन सम्बन्धी समस्याएँ

लगभग सभी भारतीय भाषाओं में काफी विज्ञान साहित्य लिखा जा रहा है। लेकिन सामंजस्य के अभाव के कारण ऐसा सारा साहित्य बिना उचित स्थान पाये पुस्तकालयों की आलमारियों में कैद हो जाता है। हिन्दी भाषा में ही काफी विज्ञान पुस्तकें निकल रही हैं। लेकिन स्वयं विज्ञान लेखकों को ही सम्पूर्ण प्रकाशनों की जानकारी नहीं है। ऐसे सम्पूर्ण प्रकाशनों की सूची प्रतिवर्ष प्रकाशित की जानी चाहिये और कम से कम ऐसे प्रकाशनों की जानकारी विज्ञान लेखकों को तो देनी ही चाहिये।

लेखकों और प्रकाशकों का सम्बन्ध सर्वविदित है। प्रकाशकों के शोषण के कारण प्रायः नये लेखक मेहनत करने से कतराते हैं। ऐसे लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिये और उनकी पुस्तकों को प्रकाशित करने के लिये सरकार को उचित व्यवस्था करनी चाहिये।

□□

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन में कठिनाइयाँ तथा उनका समाधान

डाॅ० महेन्द्र सिंह वर्मा

इस लेख के शीर्षक से स्वतः स्पष्ट है कि हम यह जानना चाहते हैं कि वैज्ञानिक लेखन हिन्दी में क्यों नहीं हो पा रहा है ? उसमें क्या-क्या कठिनाइयाँ आ रही हैं तथा उनका समाधान क्या है ? ऐसे विषय पर विचार करते समय एक विश्लेषणात्मक मस्तिष्क का कर्तव्य हो जाता है कि वह सर्वप्रथम यह जानने का प्रयास करे कि समस्या की जड़ कहाँ पर है। उसका नियंत्रण कौन-कौन से कारक करते हैं ? और किस प्रकार से करते हैं ? अर्थात् पहले समस्या का निदान होना चाहिए, तभी उसका समाधान हो पायेगा।

सर्वप्रथम हम अपने राष्ट्रीय चरित्र पर विचार करते हैं। क्या हमारा कोई राष्ट्रीय चरित्र है ? मेरे विचार से नहीं। यहाँ पर मैं सिर्फ अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी के विषय में ही या हिन्दी के सन्दर्भ में ही विचार करना चाहता हूँ। क्या हमारे वे नागरिक जो सत्ता की बागडोर संभाले हुए हैं, हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन को दिल से चाहते हैं, और ईमानदारी से उसके विकास के लिए प्रयास कर रहे हैं ? उत्तर होगा नहीं कर रहे। आज नैतिकता और चरित्र ने हमारा साथ छोड़ दिया है। हमने समष्टि का विचार करना बन्द कर दिया है। हम स्वार्थी हो गए हैं। हर कार्य में अपना लाभ देखते हैं। राष्ट्रीय योजनाओं के कार्यान्वयन के समय भी हम अपने स्वार्थ को सतर्कतापूर्वक ध्यान में रखते हैं। किसी भी कार्य को कार्य समझकर करना हम भूल चुके हैं। आखिर क्यों ? शायद इसलिए कि हज़ारों साल की गुलामी ने हमें मुँहताज बना दिया है। हमारी मानसिकता बीमार हो चुकी है। जब कोई विदेशी आदमी कहेगा कि 'हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन हो सकता है। और हिन्दी बहुत समर्थ भाषा है' ? तब जाकर हमको समझ में आयेगा कि हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन हो सकता है।

इसका सीधा और सहज समाधान है—हम अपने राष्ट्रीय चरित्र को ऊँचा उठायें। हम भारत की हर वस्तु को अपना समझें, हर व्यक्ति को अपना समझें। अपनी संवेदना को मरने न दें। हमको हिन्दी बोलने या लिखने में उतने ही गर्व का अनुभव होना चाहिए जितना अंग्रेज़ी बोलने में या जितना हमारे अंग्रेजनुमा भारतीयों को अंग्रेज़ी बोलने में। उससे हिन्दी का और हिन्दी में विज्ञान लेखन का निश्चय ही विकास होगा, जिससे हमारी आधी से अधिक समस्या स्वतः सुलझ जायेगी।

दूसरी महत्वपूर्ण भूमिका हमारी सरकार निभा सकती है। शर्त यह है कि वह सच्चाई और ईमानदारी से इस दिशा में प्रयास करे। सारी आर्थिक शक्ति सरकार के हाथ में है। आर्थिक शक्ति ही किसी भी योजना को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

हमारा आज तक का अनुभव बतलाता है कि सरकार हर काम वोट को ध्यान में रखकर करती है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि सरकार सिर्फ सौदेबाज़ी करती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सरकार की सच्ची रुचि हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन में नहीं है, बल्कि उससे सरकार को होने वाले फायदे में है। यही नीति आज हमको हर क्षेत्र में नीचा देखने के लिए मजबूर कर रही है। अतः हमें ऐसे नेता चाहिए जिनकी रुचि हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के प्रति हो, लेखन के नाम पर वोट बटोरने में नहीं।

यहाँ पर सरकार की रीढ़ और देश के असली शासक, जिन्हें हम प्रकाशक अथवा अधिकारी भी कहते हैं, उनकी भूमिक के विषम में बात करना भी असंगत न होगा। उनकी आज यह प्रवृत्ति बन गई है कि काम जितना हो सके, उतना टाला जाय। आप जानते हैं कि न्याय में बिलम्ब अन्याय या न्याय न मिलने के बराबर है। यहाँ पर भी हमें अपने राष्ट्रीय चरित्र के ही दर्शन होते हैं। कुर्सी पर बैठा आदमी सोचता है कि 'श्री म' को परेशान कर रहा हूँ जबकि उसका वास्तविक दुष्प्रभाव संस्था पर पड़ता है, उस योजना पर पड़ता है जिसमें वह मनुष्य संलग्न है। अतः उनके दिमाग में यह बैठाना होगा कि देश की किसी भी संस्था का कार्य देश का कार्य है। उसमें बाधा पहुँचाना अपने देश के कार्य में बाधा पहुँचाना है। उसे नीचे धकेलना है।

सरकारी तंत्र को हर प्रदेश में कम से कम एक ऐसी संस्था खोलनी चाहिए जो हिन्दी में शोध जर्नल प्रकाशित करे। साथ ही पुस्तकों के प्रकाशन और लोकप्रिय पत्रिकाएँ हिन्दी में प्रकाशित करने का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

हमारी अगली कठिनाई है हिन्दी में लिखित वैज्ञानिक पुस्तकों की मांग-कमी। हमने अपनी उच्च शिक्षा को ऐसा बना रखा है कि एम० एस-सी०, इंजीनियरिंग और मेडकिल में हिन्दी माध्यम न के बराबर है। अतः पुस्तकों की मांग भी न के बराबर है। इस व्यवधान को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह अनिवार्य कर दें कि कम से

कम एक प्रश्न-पत्र का उत्तर सिर्फ हिन्दी में देना होगा। विद्यार्थियों को यह सुविधा दी जाय कि तकनीकी शब्द वे हिन्दी में ज्यों के त्यों लिख सकें अर्थात् शब्द अंग्रेजी का हो और लिखा जाय हिन्दी की लिपि में। इससे हिन्दी में लिखी पुस्तकों की मांग बढ़ेगी और उसके फलस्वरूप लेखकों और प्रकाशकों को प्रोत्साहन मिलेगा।

हमारा अनुभव कहता है कि हिन्दी बोलने वाले, हिन्दी में लिखने वाले, हिन्दी में शोधपत्र प्रकाशित कराने वाले और यहाँ तक भारतीय जर्नलों में अंग्रेज़ी में शोधपत्र प्रकाशित कराने वाले शिक्षकों वैज्ञानिकों और शोधार्थियों को दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता है। यहाँ तक कि उन पर कटाक्ष किए जाते हैं, ताने कसे जाते हैं, जो उन्हें हतोत्साहित करते हैं। अगर हम हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन को उच्च स्तर तक ले जाना चहते हैं तो हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हिन्दी में कार्य करने वाले कार्यकताओं को हम सम्मानित कर या पुरस्कार देकर प्रोत्साहित करें। उनको यह एहसास करने का मौका दें कि वे अंग्रेज़ीदाँ लोगों से यदि अधिक नहीं हैं तो कम भी नहीं हैं। उनके कार्य पर उन्हें गर्व करने का मौका तो दें ही, साथ ही हम स्वयं भी उस पर गर्व महसूस करें। इसके अतिरिक्त उनको लेखन सामग्री उपलब्ध कराने में आर्थिक सहायता दें तथा प्रकाशन में भी सहयोग करें।

अगली भूमिका हमारे प्रकाशकों की आती है। हर प्रकाशक कुछ न कुछ लाभ उठाने के लिए ही इतना बड़ा कारोबार लिए बैठा है। अतः वह चाहेगा कि अधिक से अधिक पुस्तकें बिकें जिससे उसे अधिक से अधिक लाभ हो। इसके अतिरिक्त सरकार अपने स्वयं के प्रकाशन केन्द्र खोल सकती है जो अपने लेखकों की पुस्तकें आसानी से और कम मूल्य पर छाप सकें। किसी भी पुस्तक के मूल्य की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सस्ती पुस्तकें मनुष्य दूसरे विषयों की भी खरीद लेता है। उदाहरणार्थ, रूसी पुस्तकें पढ़ना सभी लोग पसन्द करते हैं क्योंकि वे कई गुना कम दाम में आती हैं।

हमारी आखिरी कठिनाई है नौकरी मिलने की। यह तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि जो भाषा अधिक से अधिक स्थानों पर लेखन कार्य में काम आती होगी उसके जानकार मनुष्य को कहीं भी काम मिल सकता है, लेकिन एक ही भाषा जानने वाले को उसी क्षेत्र के अलावा अन्यत्र काम मिलने की संभावना एकदम शून्य के बराबर है। यह कठिनाई, मेरे हिसाब से, हिन्दी लेखन में या अन्य भारतीय भाषाओं में लेखन में अवश्य आड़े आयेगी। यह कारक हमें मजबूर करता है कि हम अंग्रेजी को भीं छोड़ें नहीं। यह एक असमंजस की स्थिति पैदा करता है। ऐसी स्थिति से उबरने के लिए हमेशा समझौतावादी नीति ही अपनाना अधिक समझदारी का परिचायक रहता है। तब हमको ऐसा करना चाहिए कि किसी विषय के अधिकांश प्रश्न-पत्र अंग्रेज़ी में हों और उनका उत्तर भी अंग्रेजी में ही लिखने दिया जाय। कुछ प्रश्न-पत्रों में दोनों भाषाओं में लिखने की छूट रहे तथा कम से कम एक प्रश्न-पत्र के सारे उत्तर सिर्फ हिन्हीं में ही लिखाए जायें। इस प्रकार हिन्दीं में

उत्तर लिखना जब सन्तोषप्रद होने लगे तो ऐसे प्रश्न-पत्रों की संख्या बढ़ा दी जाय और अन्ततः साम्यावस्था तक ले आया जाय ।

हाँ, भाषा के व्याकरण और शुद्धि पर उतना अधिक ध्यान न दिया जाय । प्रारम्भ हिन्दुस्तानी से किया जाय जिसे बाद में चाहें तो सुधार सकते हैं । सभी जगह एकरूपता लाने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वमान्यतः मानक शब्दकोश बनाये जायं, अन्यथा एक ही अंग्रेज़ी शब्द के लिए विभिन्न लेखक भिन्न-भिन्न हिन्दी समानार्थक शब्दों का प्रयोग करेंगे जो अनावश्यक उलझन पैदा करेगा ।

अन्त में, मैं विनम्र निवेदन करना चाहता हूँ कि हमारे लेखक बन्धु घबरायें नहीं, लेखन आरम्भ करें । सफलता उनके कदम चूमेगी । कहा भी गया है—"जहाँ चाह वहाँ राह" ।

□□

विज्ञान लेखन-समस्या एवं समाधान

डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल

आज जब हम बीसवीं सदी के अंत में विज्ञान लेखन क्षेत्रीय भाषाओं में विशेषतः हिन्दी में प्रारंभ करते हैं तो अधिक सोचना नहीं पड़ता। तकनीकी शब्दों का उपलब्ध होना, गहन अंग्रेजी शब्दों का मूल समानार्थी शब्द, विभिन्न शब्द कोशों के माध्यम से सुलभ हो गया है। राज्य तथा केन्द्रीय स्तर पर बने अनेक आयोग अब शब्दों की कमी को पूरा करने में समर्थ हैं। अतः अब यह कहना कि हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दों की कमी है या विषय की गहनता का बोध नहीं होता, निरर्थक हो गया है।

इतने शाब्दिक विकास के उपरांत भी हिन्दी में अच्छे वैज्ञानिक लेख, शोध-पत्र, तथा शोध-ग्रंथ लगभग नगण्य हैं। यदि आप किसी तकनीकी विषय पर हिन्दी में कोई पुस्तक पढ़ना अथवा पढ़ाना चाहें तो कठिनाई से प्राप्त होगी। विशेषतः अभियंत्रिकी, औषधि विज्ञान, अंतरिक्ष शोध, नाभिकीय विस्फोट, वैमानिक इन्जीनियरिंग आदि विषयों पर तो हिन्दी पुस्तकों का अकाल-सा है। इसका कारण यह नहीं कि इन विषयों पर लिखने के लिये शब्द सामर्थ्य नहीं है बल्कि इस ओर रूचि की कमी है। हमारी मानसिकता ऐसी है कि हम अंग्रेज़ी में ही लिखना और बोलना चाहते हैं। यहाँ तक कि जब अनपढ लोगों को भी हम कोई नई बात सिखाते हैं तो अंग्रेज़ी में ही जबकि ऐसा व्यक्ति हिन्दी शब्दों को आसानी से सीख सकता है। साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति वायुयान के रख-रखाव, मरम्मत या उसके कलपुर्जों को यथा स्थान लगाना अपनी भाषा में ही ठीक से सीख सकता है।

हिन्दी भाषा में माध्यमिक स्तर तक का अध्ययन एवं अध्यापन पूर्णतः सफल रहा है। स्नातक स्तर अथवा औषधि विक्षान एवं इन्जीनियरिंग जैसे विषयों को पढ़ने के लिए

केवल अंग्रेज़ी माध्यम ही शेष बचता है। इसमें दोष विद्यार्थियों का नहीं है क्योंकि उसने पहले हिन्दी सीखा, बाद में उसे अंग्रेजी माध्यम से उसी विषय को पढ़ना पड़ा। यह आवश्यक हो गया, क्योंकि विद्यार्थी को भय है कि वह प्रतियोगी तथा प्रशासनिक परीक्षाओं में सफलता नहीं प्राप्त कर सकेगा, क्योंकि इन परीक्षाओं का माध्यम अंग्रेज़ी है। अतः समस्या हिन्दी लेखन की नहीं अपितु उसको महत्व न देने की है। यदि क्षेत्रीय भाषाओं को भी उतना ही महत्व दिया जाय जितना कि अंग्रेज़ी को मिलता है तो सभी परीक्षार्थी क्षेत्रीय भाषा ही पढ़ेंगे। जब क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकें बिकती नहीं तो कोई प्रकाशक उसको प्रकाशित नहीं करता अतः लेखन पर प्रभाव पड़ता है। इधर कुछ वर्षों से भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम की छूट दी गई है जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी भाषी विद्यार्थी अपना उचित स्थान पाने लगे हैं।

समस्या मानसिकता बदलने की है। हम किसी भी अपरिचित व्यक्ति से या जहाँ कुछ पढ़े लिखे लोग होते हैं वहां बार्तालाप का माध्यम हिन्दी न बनाकर अंग्रेज़ी ही बनाते हैं। संभवतः हम अंग्रेज़ी बोलकर अपना अहम् व्यक्त करते हैं। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है हम अंग्रेज़ी तो बहुत कम जानते और हिन्दी की उपेक्षा करते हैं। आजकल हिन्दी बोलना अधिक कठिन है। यदि किसी व्यक्ति से कहा जाय कि आप दस मिनट तक केवल हिन्दी में ही बोलें तो विरले लोग ही मिलेंगे लेकिन अंग्रेज़ी लगात्तार बोल सकते हैं। इससे भी यह सिद्ध नहीं होता कि हिन्दी उन्हें नहीं आती बल्कि हिन्दी बोलते समय अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग आदत में है। कुछ तो इसलिये कि अंग्रेजी बोलना हमारी विद्वता का द्योतक है और कुछ इसलिये कि हम दिन्दी को पूरा महत्व नहीं देते। संपूर्ण विश्व में हिन्दी भाषी के अतिरिक्त कोई भी अन्य व्यक्ति एक भाषा के साथ-साथ दूसरी भाषा के शब्दों को मिलाकर नहीं बोलता। विदेशियों को हिन्दी-अंग्रेज़ी मिली बोली बोलते सुनकर यह पूछना पड़ता है कि यह कौन भाषा है।

मैंने विश्वविद्यालय में आये अफ्रीकी, फ्रांसीसी तथा जर्मन विद्यार्थियों से भी इस विषय पर वार्तालाप किया है। मैंने उनसे पूछा कि आप यहाँ हिन्दी में क्यों नहीं बोलते क्योंकि अंग्रेज़ी तो आपकी मूल भाषा है नहीं। इसके उत्तर में उन विद्यार्थियों ने कहा कि भारत में मुझसे कोई हिन्दी में बात ही नहीं करता अतः मुझे बाध्य होकर अंग्रेज़ी सीखनी पड़ती है। एक जापानी विद्यार्थी जो यहाँ हिन्दी में एम० ए० उपधि के लिए आया था उसने आश्चर्य से कहा कि मैं भारत हिन्दी सीखने आया लेकिन मुझे लोगों से बात करने के लिये अंग्रेज़ी सीखनी पड़ी।

इतना ही नहीं, भारत के प्रधानमंत्री तया राष्ट्रपति भी देश और विदेश में अपनी जनसंपर्क यात्राओं में अंग्रेजी ही बोलते हैं। मेरे विचार से अंग्रेज़ी तो संविधान में बताई गई भारतीय भाषाओं में नहीं आती फिर भी इसका प्रयोग केवल हमारी मानसिकता ही प्रदर्शित करता है। इसके विपरीत विकसित देशों के राष्ट्राध्यक्ष अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं।

अतः आज समस्या क्षेत्रीय भाषाओं वैज्ञानिक लेखन की न होकर उसके प्रचार एवं प्रसार की है। इस गोष्ठी में कुछ लोगों ने यह भी बताया कि शब्द स्वतः गढ़े जायें तथा उनका प्रयोग किया ज़ाये जैसा कि विज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों में किया जाता है। मेरे विचार से यह उचित नहीं है। शब्द ऐसे हों जो पूरे भारत में मान्य हों, एक शब्द का अर्थ जो हम लगावें वही दूसरे प्रांत का व्यक्ति भी लगावें तभी हम एक सशक्त भाषा दे सकते हैं। इस कार्य को शब्दावली आयोग अपने तरह से कर रहा है। समय-समय पर वे लोग अनुभव के आधार पर अपने शब्दों में सुधार करते रहते हैं।

मैं यह भी बताना चाहूँगा कि आप विज्ञान लेखन में मौलिकता लाने का प्रयास करें। हिन्दी में ही सोचें तथा हिन्दी में ही लिखें। अधिकतर हमलोग अंग्रेजी में सोचते हैं तथा बाद में उसका रूपांतर करते हैं। इस प्रकार के लेखन में कठिनाई अधिक आती है। अतः हम लेखन में, बोलचाल में तथा संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का ही प्रयोग करें तभी विज्ञान की सच्ची सेवा हो सकेगी।

□□

ताकि विज्ञान आम आदमी भी समझ सके

रवीन्द्र वर्मा

भारत में सर्वप्रथम विज्ञान लेखन की शुरुआत बांगला भाषा में हुई। सन् 1821 में "पश्आवली" नामक विज्ञान पत्रिका की शुरुआत हुई। तब से लेकर आज तक बांगला में कई विज्ञान पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। तदुपरांत अन्य भाषाओं में विज्ञान लेखन की शुरु-आत हुई। परन्तु इस दिशा में उतनी प्रगति नहीं हो पाई जितनी प्रगति विज्ञान ने की। भारतीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान के प्रचार का कार्य हमें अब अधिक तेजी से करना है।

आधुनिक समाज विज्ञान की देन है। विज्ञान जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। आम आदमी इससे अछूता नहीं है। आगे आने वाले समाज का क्या स्वरूप होगा यह सब विज्ञान पर निर्भर करता है। विज्ञान दोधारी तलवार के समान है। विज्ञान का उपयोग परमाणु—रासायनिक या जैवअस्त्रों के लिए हो अथवा जीवन स्तर को सुधारने के लिए ? विज्ञान का प्रयोग कैसे और किसके लिए करना है इसका निर्णय हमें करना है। आम आदमी इस प्रक्रिया में तभी शामिल हो पाएगा जब वह विज्ञान को समझेगा। इसलिए विज्ञान लेखन आम आदमी की भाषा में होना आवश्यक है। आज जरूरत इस बात की है कि आम आदमी अपनी इच्छाएं/आकाक्षाएँ वैज्ञानिकों तक पहुँचाऐं। हम वैज्ञा-निकों को उनकी मनमानी नहीं करने दे सकते। सरकार की विज्ञान-नीति आम आदमी की आवश्यकताओं और इच्छाओं पर आधारित होनी चाहिए। सरकार की विज्ञान-नीति का विश्लेषण आम आदमी तक पहुँचाया जाना चाहिए।

विज्ञान अभी तक अंग्रेजी पढ़े-लिखे वैज्ञानिकों के चंगुल में फँसी है। वैज्ञानिकों ने विज्ञान को बेहद कठिन एवं गूढ़ दर्शाने की कोशिश की है। यह शायद उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए किया है, क्योंकि गूढ़ बातें करने से लोग जल्दी प्रभावित हो जाते हैं। आम आदमी की भाषा में विज्ञान लेखन होने से विज्ञान के बारे में बनी गलत धारणा समाप्त हो जाएगी। विज्ञान तर्क पर आधारित परिष्कृत ज्ञान है। तर्क की हमारे भारत में बहुत आवश्यकता है। हमारे देश में आज भी लोग जाति के आधार पर कई सामाजिक कार्य करते हैं। मंदिरों में निम्न जाति के लोग नहीं जा सकते। वंशानुगत परंपराओं एवं रूढ़िवादी विचारधाराओं ने लोगों को जकड़ रखा है। बीमारियों को किसी देवी-देवता का प्रकोप मानते हैं। पता नहीं वे कितने तरह के अन्ध-विश्वासों के चक्रव्यूह में फंसे हैं। इन सबका कोई आधार नहीं है। विज्ञान के प्रचार-प्रसार से आम आदमी की विचारधारा को वैज्ञानिक मोड़ देना संभव हो सकता है।

हमारे समाज की आवश्यकताएं और समस्याएं क्या हैं? ये अंग्रेजी में सोचने, समझने और लिखने वाले लोग क्या समझेंगे। अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है लेकिन हमें चाहिए कि अपनी मातृभाषा में सोचे-विचारे। भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन का अर्थ यह भी नहीं होना चाहिए कि अंग्रेजी में लिखे विज्ञान का अनुवाद भर कर दिया जाए। विज्ञान-लेखक भारत की मिट्टी, इसके इतिहास एवं संस्कृति से परिचित हों। विज्ञान का अनुवाद करने से तो हम आम आदमी पर विदेशी सोच-समझ थोप देंगे। हमें अपने देश में विज्ञान लाना है, विदेशी संस्कृति या उनका दृष्टिकोण नहीं।

□□

भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन : समस्या के कुछ उपेक्षित और बहुचर्चित पहलू

श्रीमती डाँ० बी० अनुराधा

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आवश्यकता पूर्ति की इच्छा, नया, जो हमेशा पुराने से बेहतर हो, उसे पाने की उत्कंठा ने मानव को चिंतन, विचार और आविष्कार की ओर अग्रसर किया। वैज्ञानिक प्रगीत तथा जीवन में उसका सृजनात्मक व्यवहार इन दोनों स्थितियों को जोडनेवाली कड़ी है संप्रेषण। विवेकपूर्ण और संतुलित संप्रेषण क्लिष्ट और नीरस वैज्ञानिक तथ्यों को जीवन के परिवेश में आंक कर उनकी सार्थक्रता या निरर्थकता को प्रकाश में लाता है और जनमानस को उनके प्रति प्रवृत्त या विमुख करता है। इसलिए वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ विज्ञान के संप्रेषण की महत्ता बढ़ने लगी। जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह "संप्रेषण" भी विज्ञान के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। मुद्रण फोटोग्राफी, रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा, वीडियो, टेलीप्रिंटर, कंप्यूटर जैसे संभ्रांत तकनीकों और अविष्कारों के कारण इतना क्रांतिकारी परिवर्तन आया कि विज्ञान के प्रसार का साधन "संप्रेषण" स्वयं विज्ञान के लिए एक विषयवस्तु बन गया।

इन संभ्रांत आविष्कारों और परिवर्तनों के बावजूद "लेखन" सरल और प्राचीन होते हुए भी विज्ञान प्रसार के अन्य साधनों में सर्वोपरि है। क्योंकि "विज्ञान प्रसार" और संप्रेषण का लक्ष्य व्यक्ति के विवेचन शक्ति को विकसित करना है जिससे कि वह उसे समझ कर उसकी व्याख्या करके स्वीकृति या अस्वीकृति का निर्णय स्वयं ले सके, परंपरा और विकास के बीच संतुलन बनाये रख सके। वैज्ञानिक विकास का अर्थ आधुनिकता के लिए परंपरा का दम घोंटना नहीं बल्कि दोनों के बीच सामंजस्य बिठा कर एक दूसरे का

अनुपूरक बनाना है। वैज्ञानिक मनोवृत्ति (सांइटिफिक टेंपर) का सही अर्थ शायद यही है। यह सामर्थ्य लेखन में है जब कि शेष विधाएँ आंधी तूफान की तरह मस्तिष्क को झकझोर कर ज्ञान या विज्ञान को थोपने का प्रयास करते हैं। तुरंत-प्रभावी विधाएँ व्यक्ति में वैज्ञानिक मनोवृत्ति जगाने के बजाय उसे अपने साथ बहा ले जाती हैं और एक नये प्रकार के अंधविश्वास को बढ़ावा देती हैं।

भारत का जनमानस दो वर्गों में बंटा हुआ है : बुद्धिजीवी, जो प्रायः विज्ञान को साधन के बजाय जीवन के लिए सिद्धि मानने लगा है, दूसरा भावुक और संवेदनशील वर्ग जिसे किसी भी उफान का सामना करने के लिए दो ही विकल्प रहते हैं–उफान में बह जाना या पत्थर की तरह अडिग, निष्क्रिय और निरपेक्ष रह जाना। यही वर्ग भारत के आम आदमी का प्रतिनिधि है। ऐसी स्थिति में आश्वासन के साथ नहीं कहा जा सकता कि तूफानी प्रभाव का परिणाम हमेशा रचनात्मक ही हो। अतः भारत जैसे विकासशील देश के लिए "लेखन" आज भी विज्ञान प्रसार का एक सशक्त साधन बना हुआ है।

पाठक की दृष्टि से इसकी विशेषताएँ है जैसे समय की सीमा या पाबंदी नहीं, जब चाहे, जहाँ चाहे, जैसा, चाहे पढ़ने की आजादी अपनी मनोदशा या विधा के अनुसार पढ़ने या न पढ़ने का अधिकार, विषयवस्तु चुनने का अवसर, संदेह या संशय की स्थिति में रुक कर सोचने समझने, चिंतन और तुलना करने या पुनः पुनः पढ़ने की सुविधा, एकाग्रता की अधिक संभावना, सरल और सस्ता भी। लेखक की दृष्टि से भी इस विधि की विशेषताएँ हैं। व्यक्तिगत प्रयास होने के कारण लेखक अधिक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर होता है।

लेकिन भारत जैसे देश में जहाँ साक्षरता का स्तर केवल 35 प्रतिशत है लेखन के जरिए विज्ञान प्रसार की बात कुछ असंगत सी लगती है। लेकिन इतिहास साक्षी है कि भारत की जनता हमेशा छोटे पर सशक्त और सचेत वर्ग से ही प्रभावित होती आ रही है। अतः एक छोटे वर्ग तक पहुँचने में सफल हो पाएं तो भी वे बाकी लोगों के सामने अनुकरण के लिए उदाहरण बन सकते हैं।

जनमानस की वैज्ञानिक मनोवृत्ति जगाने और जीवन और विज्ञान में सार्थक समन्वयन स्थापित करने के लिए लेखन को सशक्त साधन मान लें तो ऐसे लेखन के माध्यम या वाहक के रूप में भारतीय भाषाओं की महत्ता अपने आप स्थापित हो जाती है। अब प्रश्न सामने आता है कि देश में विज्ञान लेखन की आज क्या स्थित हैं ? उसकी समस्याएँ क्या हैं ? अपने उद्देश्य की पूर्ति में वह कहाँ तक सफल हो पा रहा है ? और भविष्य में उससे क्या अपेक्षाएँ हैं ? इस संदर्भ में विज्ञान लेखन के दो पहलुओं पर ध्यान देना जरूरी है एक शुद्ध विज्ञान लेखन, दूसरा सामान्य या जनप्रिय विज्ञान लेखन। दोनों का समान महत्व है, **फिर भी जनप्रिय विज्ञान लेखन समय की माँग है।**

शुद्ध विज्ञान लेखन के वर्ग में आनेवाले शोधपत्र, आलेख, पाठ्यपुस्तक, संदर्भ ग्रंथ आदि प्रायः वर्ग विशेष के लिए लिखे जाते हैं। इनमें पाठ्यपुस्तक, संदर्भ ग्रंथ आदि की

आवश्यकता को बहुत पहले ही अनुभव किया गया और विश्वविद्यालयों और ऐच्छिक संगठनों सहित कई संस्थाओं में काम आरंभ हुआ। लेकिन अब भी इनका अभाव खलता है। इस प्रक्रिया को तेज करना बहुत आवश्यक है, क्योंकि इस अभाव का प्रभाव जनप्रिय विज्ञान लेखन पर भी पड़ता है। संदर्भ ग्रंथों के नाम पर अनुवादों को प्रोत्साहन देना शायद उचित नहीं है। अच्छा यही होगा कि विषय के विशेषज्ञ मूल ग्रंथ लिखने का प्रयास करें। विषय-विशेषज्ञ और जनप्रिय विज्ञान लेखक का संयुक्त प्रयास इस दिशा में एक रचनात्मक कदम हो सकता है।

तकनीकी शब्दावली की क्लिष्टता विज्ञान-लेखन की समस्या मानी जाती है, लेकिन मेरे विचार में शुद्ध विज्ञान लेखक के लिए यह कोई समस्या ही नहीं है। उदाहरण के लिए शोधपत्र को लें। लेखक के साथ-साथ पाठक भी विषय का विशेषज्ञ होने के कारण उसे समझाने या समझने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। कथित विषय के संदर्भ में पूर्व प्राप्त ज्ञान या धारणा के आधार पर जटिल शैली शब्दावली के बावजूद प्रभावी संप्रेषण हो जाता है। हाँ, कुछ शब्द "साधारणीकरण" के शिकार हैं जिसके कारण उनका अर्थ इतना व्यापक होता हैं कि विशिष्ट संदर्भ में अर्थ भेद की अभिव्यक्ति नहीं कर पाते हैं। अतः विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की प्रकृति और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तकनीकी शब्दों के विशिष्टीकरण की ओर प्रयास करना है।

सभी भाषाओं में समान शब्दावली के विकास और व्यवहार के सुझाव पर अनुकूल प्रतिक्रिया के बावजूद इस ओर ठोस प्रयास होना अभी शेष है। इस बीच हर भाषा की अपनी-अपनी शब्दावलियाँ बनने लगीं। वैसे तो भारतीय भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली पर क्लिष्टता का आरोप है परन्तु शब्द तभी क्लिष्ट लगेगा जब पाठक उसके स्थान पर पहले से ही कुछ और शब्द (जो अक्सर अंग्रेजी शब्द होता है) से परिचित हो चुका हो। परंतु, किसी नयी वैज्ञानिक धारणा को व्यक्त करते समय अपर्युक्त प्रचलित शब्द के अभाव में नये शब्द का निर्माण करके प्रयोग करें तो पाठक धारणा के साथ शब्द को भी अपना लेता है। अपरिचित अंग्रेजी शब्द भी पाठक के लिए उतने ही जटिल होते हैं जितने हिन्दी या किसी भारतीय भाषा में नवगठित शब्द। जैसे-प्रतिरूपण-कलोनिंग, प्रत्यारोपण और ट्रांन्सप्लांटेशन, कोशा-संवर्धं टिश्यू कल्चर, निर्जमित-एसेप्टिक, विकिरणन और इरेडिएशन एकोदर संगम-सिबमोटिंग इत्यादि। शब्द भंडार के धनी होने के कारण भारतीय भाषाएँ एक दूसरे की पूरक भी हो सकती हैं। कई अंग्रेजी शब्द भी जनसाधारण के लिए अपने ही शब्द बन चुके हैं। इसलिए वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण और मानकीकरण के समय उदार और लचीला रवैया अपना कर इन सब स्रोतों का लाभ उठाना चाहिए। तब क्लिष्टता से कुछ हद तक बच सकते हैं।

जन प्रिय विज्ञान लेखन

भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन पर चर्चा करते समय शोध-पत्र आदि की तुलना में जनप्रिय विज्ञान लेखन से संबंधित मुद्दे अधिक माने रखते हैं। जनसाधारण में बैज्ञा-

निक मनोवृत्ति विकसित करने की आवश्यकता महसूस होते ही जनप्रिय विज्ञान की धारणा को एक गति और बल मिला है । इस अभियान के एक साधन के रूप में लेखन की महत्ता उभरने लगी । लेकिन इतनी लम्बी अवधि में इसने कितनी तरक्की की, लक्ष्य सिद्धि में कहाँ तक सफल हुआ, आज इसकी वस्तुस्थिति क्या है—यह जानना कठिन है क्योंकि इसके प्रभाव और पहुँच का मूल्यांकन और मात्रा निर्धारण के लिए कोई ठोस मापदण्ड नहीं हैं । लेखकों की बढ़ती हुई संख्या, लेखन में विषयवस्तु की विविधता, मुद्रण माध्यम-विशेषकर पत्र-पत्रिकाओं में बराबर उसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति से इस विधि की लोकप्रियता का आभास होता है । परंतु अन्य विधाओं की तुलना में जो अपेक्षाकृत नयी हैं, ''लेखन' की प्रगति धीमी ही मानी जा सकती है । तभी विज्ञान लेखन, कुछ अपवादों को छोड़ कर अब भी शौक तक सीमित रह गया हैं जब कि उपन्यास, कविता, कहानी आदि अन्य क्षेत्रों में ''लेखन'' भाव प्रधान होते हुए भी व्यवसायिक बन चुका है । इसका यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि जनप्रिय विज्ञान लेखन में प्रतिभा का अभाव है तो उस प्रतिभा को कार्य में प्रवृत्त करनेवाली स्थितियों का जो लेखन और लेखक के परिवेश से जुड़ी हुई हैं । लेखन से जुड़ी समस्याएं विषयवस्तु. शैली और संप्रेषण से संबंधित हैं । पाठकगण एकरूप न हो कर कई भिन्नताओं का मिश्रण होने और उनकी रुचि, आवश्यकताएँ, सामाजिक और बौद्धिक स्तर भी भिन्न-भिन्न होने के कारण विषयवस्तु को उन सब तक पहुँचाना लेखक की पहली समस्या होती है ।

फिर समस्या आती है विषयवस्तु चुनने की ओर प्राथमिकताओं की । यद्यपि लेखक के सामने पाठकों तक पहुँचने के लिए विज्ञान का अपार भंडार पड़ा हुआ है फिर भी समस्या इसलिए आती है कि लेखक को अपने पाठक की क्षमताओं में और सीमाओं का ध्यान रखना पड़ता है । आज विज्ञान उन्नति की उस छोर पर है तो पाठक उस ज्ञान की छोर पर-दोनों के बीच सेतु बनाने वाला लेखक एक ओर से खाई पटाने का प्रयास करे तो दूसरी छोर अपनी दिशा में आगे खिचती जाती है । अतः समस्या है दोनों ओर से खाइ पाटने की । विषयवस्तु के प्राथमिक ज्ञान के अभाव में उन्नत ज्ञान की जानकारी पाठक के लिए कोई भी अर्थ नहीं रखती । परन्तु लेखक प्राथमिक ज्ञान देने में ही मगन रहे तो वर्तमान के लिए प्रासंगिक नवीन ज्ञान से कट कर रह जाएगा । इसलिए विषयवस्तु चुनते समय इन दोनों पहलुओं में संतुलन और सामंजस्य बिठाना लेखक का कर्तव्य बन जाता है ।

वैसे तो अब जनप्रिय विज्ञान लेखक अपने स्तर पर अपने ही तरीके से इस समस्या को हल के लिए तरीके निकाल रहे हैं । जैसे-भिन्नता में भी समानता के सूत्र ढूँढ कर उन्हीं को अपनी शैली, विषय और प्रस्तुति के लिए आधार बनाने लगा । तभी आज के जनप्रिय विज्ञान लेखक जन साधारण के लिए होते हुए भी किसी वर्ग विशेष पर केन्द्रित होने लगी जैसे-ग्रामीण वर्ग, महिला वर्ग, युवा वर्ग, विद्यार्थी, कृषक इत्यादि । अर्थात् साधारण विज्ञान लेखन आज अपने ढँग से विशेषीकरण की ओर बढ़ रहा है । यह एक अच्छी प्रवृत्ति है ।

पर ध्यान रहे कि विशिष्टीकरण के चक्कर में लेखक अपने मूल सिद्धांतों को न भूलें। अन्यथा लेखन नीरसता और एकरसता का शिकार हो जाता है।

दूसरी समस्या है विषयवस्तु की नीरसता और शैली की क्लिष्टता की। प्राय: तकनीकी शब्दावली को क्लिष्टता का दोषी ठहराया जाता है। लेकिन प्रचलित धारणा के विपरीत, मेरे विचार में तकनीकी शब्द पाठक के लिए कोई विशेष समस्या नहीं होते। लेखक की ओर से थोड़ा सा प्रयास इस समस्या को दूर कर सकता है क्योंकि लेखक इन शब्दों का प्रयोग अकेले में नहीं बल्कि संबंधित प्रक्रिया, सिद्धांत या धारणा के सविस्तार वर्णन या व्याख्या प्रस्तुत करते समय करता है। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि तकनीकी शब्दावली के प्रचलन में जनप्रिय विज्ञान लेखक का बड़ा योगदान हो सकता है।

कुछ अन्य प्रचलित तरीके हैं जैसे नये तकनीकी शब्द के साथ कोष्ठक में अंग्रेजी शब्द का प्रयोग। इन संदर्भ में सुझाव है कि पाठक के लिए नितांत नयी धारक्षा या प्रक्रिया से संबंधित क्लिष्ट शब्द का प्रयोग कभी अकेले में करना पड़े, तो कोष्ठक में उसे समझने वाला सरल और संक्षिप्त विवरण भी दें ; हाँ, विषय का प्रस्तुतिकरण अक्सर दुरुहता, अस्पष्टता और प्रवाह के अभाव से ग्रस्त होता है। स्पष्ट और निर्बाध अभिव्यक्ति के लिए पहली शर्त है विषयवस्तु पर लेखक को स्पष्ट समझ और व्यापक ज्ञान होना। यह समझ और ज्ञान देनेवाले स्रोतों का अभाव लेखक पर पड़ना अस्वाभाविक नहीं है। परंतु भारतीय भाषाओं में मौलिक और संदर्भ ग्रंथों की अब भी कमी है। लेखक को अंग्रेजी स्रोतों पर निर्भर करना पड़ता है। इसलिए भारतीय भाषाओं में लिखे गए विज्ञान-लेख कभी-कभी उस भाषा की मूल प्रकृति और पाठक के परिवेश से अलग लगते हैं। तकनीकी शब्दावलियों के अलावा परिभाषात्मक शब्दावलियाँ/कोश (डेफिनिशनल) वैज्ञानिक विषयों पर आधारित विश्वकोश, क्षेत्र विशेष के साधारण ग्रंथ जैसे संदर्भ ग्रंथों के संकलन और प्रकाशन की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। एकरसता को दूर रखने का एक उपाय है पाठक और विषयवस्तु के बीच संबंध स्थापित करना। इसके लिए लेखक को अपने पाठक के मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पअलुओं को समझ कर तदनुरूप विषयवस्तु को शैली में ढालना होगा। लेखन में बौद्धिक पक्ष के साथ भावपक्ष और कला पक्ष का पुट दे कर साधारण पाठक को बाँध कर रखा जा सकता है।

जनप्रिय लेखन की एक प्रधान किन्तु शायद कम चर्चित समस्या मंच मा माध्यम की है जिसके जरिए लेखन पाठक तक पहुँच सके क्योंकि लेखन विशेषकर विज्ञान लेखन का उद्देश्य "स्वांत: सुखाय नहीं बल्कि बहुजन हिताय" होता है। लेखक को उपलब्ध लोकप्रिय मुद्रण माध्यम हैं—पत्र-पत्रिकाएँ। रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं की संख्यां और वितरण में निरंतर वृद्धि हो रही है। (हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ अंग्रेज़ी से भी आगे निकाल गयी हैं) परंतु यह सर्वविदित है कि उनमें

विज्ञान लेखन की कितनी कम संभावनाएँ हैं। समाचार-प्रधान पत्र–पत्रिकाओं में सामग्री का सामयिक महत्व, न्यूज वैल्यू या उससे जुड़े विवादों की गंभीरता इत्यादि प्रकाशन योग्यता के मापदंड होने के कारण उनमें देश-विदेशों में संपन्न संभ्रांत आविष्कारों की सूचनाओं को प्राथमिकता मिलती है। विचारात्मक स्तम्भों के अंतर्गत कभी विज्ञान संबंधी विषयों को स्थान मिले भी तो, उसमें आधारभूत ज्ञान कम, उनसे जुड़े हुए अन्य पहलुओं का व्याख्या-मूल्यांकन ज्यादा होता है। उनके यहाँ प्रशिक्षित विज्ञान संवाददाताओं की भी कमी है। इसलिए विषय के विशेषज्ञों पर निर्भर करते हैं। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि विज्ञान का विशेषज्ञ लेखन कला में भी निपुण हो। प्रायः ऐसे लेखन पर विषयवस्तु की जटिलता और एकरसता हावी हो जाती है। लघु एवं नगरोत्तर समाचार पत्रों का कार्य-क्षेत्र सीमित है, परंतु वे स्थानविशेष की जनता के बहुत करीब होते हैं और वैज्ञानिक विषयों के प्रति उनका रवैया भी सकारात्मक है। लेकिन सीमित साधनों के कारण न वे लेखक तक पहुँच पाते हैं और न लेखक उन तक।

जनप्रिय विज्ञान लेखन को कुछ हद तक साधारण पत्रिकाओं का प्रोत्साहन मिल रहा है पर इनका क्षेत्र व्यापक और बहु आयामी होने के कारण विज्ञान संबंधी सामग्री प्रस्तुत करने में उनकी अपनी सीमाएँ होती हैं। महिला-पत्रिकाएँ और बाल-पत्रिकाएँ जीवन पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालनेवाले क्षेत्रों को ही प्रधानता देती हैं जैसे—स्वास्थ्य, पोषण, आहार आदि।

विज्ञान पत्रिकाएँ विज्ञान लेखन के प्रधान मंच है, परन्तु उनकी लोकप्रियता अपेक्षा-कृत कम है। इनमें से एक वर्ग की पत्रिकाएँ विज्ञान के हर क्षेत्र को स्थान देती हैं। परंतु संख्या में कम होने के कारण लेखकों को उतना प्रोत्साहित नहीं कर पाती हैं। विज्ञान प्रगति, आविष्कार, ग्राम शिल्प, उद्यम (हिन्दी), बाल विज्ञान (कन्नड़), विजडम (हिन्दी तेलगू और कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में) जैसे कुछ अपवादों को छोड़ कर, विज्ञान पत्रिकाएँ ज्यादा समय टिक नहीं पा रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में लेखक को साधारण पत्र-पत्रिकाओं पर ही निर्भर होना पड़ता है जहाँ विज्ञान के लिए आरक्षित स्थान न के बराबर है। मुद्रण माध्यम लेखन को साकार बनाने के दो ही विकल्प बच जाते हैं वस्तु और शैली की दृष्टि से लेखन इतना उपयोगी और प्रभावशाली बने कि पाठकगण में उस की माँग बढ़े और उस माँग की व्यापारिक संभावनाओं से प्रकाशक प्रभावित हुए बिना न रह पाएँ। तब शायद व्यापारिक कंपनियाँ भी प्रायोजक के रूप में अपना सहयोग देने को तैयार हो जाएंगी। दूसरा विकल्प है ऐच्छिक संगठन और सरकारी एजेंसियां जनहित में विज्ञान पत्रिकाओं के प्रकाशन, प्रसार का भार अपने ऊपर लें।

दूसरा वर्ग विज्ञान के किसी एक क्षेत्र विशेष को जनप्रिय बनाने में मगन है। प्रायः ये किसी अनुसन्धान संस्था या संगठन के लिए विस्तार-प्रचार का काम करती हैं। (पोषण खेती, आपका स्थास्थ्य, कृषि चयनिका आदि)। फिर भी ये अनुसन्धान संबंधी नवीन

गतिविधियों के साथ-साथ विषय का प्राथमिक ज्ञान भी देती हैं। सही अर्थों में वे एक सुव्यवस्थित, संतुलित और क्रमिक प्रणाली में पाठक को शिक्षित करती हैं। लेखक और पाठक के संदर्भ में इन पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है और भविष्य की संभावनाएँ आशाजनक।

हिन्दी में जनप्रिय विज्ञान-साहित्य के प्रकाशन में केन्द्रीय खाद्य प्राद्यांगिक अनुसन्धान संस्थान, मैसूर में संपन्न कार्य का उल्लेख यहाँ उचित होगा। संस्थान ने अपनी स्थापना के छः वर्ष बाद ही यानी 1956 में कन्नड़ भाषा में जनप्रिय विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया और उसकी सफलता से प्रेरित हो कर 1957 में हिन्दी में खाद्य विज्ञान त्रैमासिक शुरू किया। हिन्दी में अपने विषय की पहली जनप्रिय पत्रिका होने के अलावा राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं द्वारा विषय विशेष पर हिन्दी में प्रकाशित पहली पत्रिका है। संस्थान का सूचना प्रसार और विस्तार का साधन होते हुए भी सामान्य जनता के लिए भोजन, पोषण, स्वास्थ्य और खाद्य प्रौद्योगिकी संबंधी साधारण ज्ञान की महत्ता और आवश्यकता को पहचानते हुए सच्चे अर्थ में एक जनप्रिय पत्रिका का रूप धारण कर लिया विषय वस्तु का चुनाव, प्रस्तुतीकरण की शैली, प्राथमिक और उन्नत जानकारियों का संतुलित समावेश, पत्रिका की विशेषताएँ रहीं। संस्थान में अमूल्य पुस्तकालय के अलावा खाद्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी के हर पहलू के विशेषज्ञों की सलाह-मशवरा एवं सहयोग भी प्राप्त होने के कारण प्रामाणिक और विश्वसनीय सामग्री प्रस्तुत करने में पत्रिका के सामने कोई कठिनाई नहीं थी। इस क्षेत्र से संबंधित तकनीकी शब्दावली की समस्या का हल करने में भी काफी हद तक सफल हुई। शब्दावली के संकलन का प्रयास जारी है।

सन् 1981 में संस्थान ने सी० एफ० टी० आर० आई० समाचार नामक अनुसन्धान समाचार प्रधान द्वैमासिक का प्रकाशन शुरू किया। सामग्री की सामयिक महत्ता, उपयोगिता तथा प्रस्तुतीकरण की सुग्राह्यता के कारण पत्रिका ने कम समय में ही काफी लोकप्रियता हासिल की। साथ-साथ कई समाचार पत्र,-पत्रिकाओं के लिए समाचार का स्रोत भी बन गया था।

संप्रेषण की विशेषकर लेखन की निपुणता के बढ़ते-बढ़ते संस्थान के हिन्दी कार्य का क्षेत्र भी बढ़ने लगा और हिन्दी में सूचना-सेवा के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली का सूत्रपात हुआ। विभिन्न वर्गों की आवश्यकताओं को देखते हुए अनुसंधान कार्य संबंधी सामग्री को हिन्दी में तकनीकी, अर्ध-तकनीकी और साधारण स्तर पर उपलब्ध कराया जाता है। कई जनप्रिय एवं अर्ध-तकनीकी पुस्तक-पुस्तिकाओं का हिन्दी में रुपांतरण भी किया गया है।

□□

हिन्दी में विज्ञान लेखन

रवीन्द्रनाथ खरे

आधुनिक युग विज्ञान की पराकाष्ठा का युग है। नित्य नई-नई खोजें तथा पर्यवेक्षण होते रहते हैं। आँकड़े बतलाते हैं कि हर दसवें साल प्रकाशित शोध-पत्रों की संख्या दो गुनी हो जाती है। हर चौदहवें साल संसार के पुस्तकालयों में पुस्तकों की संख्या दो गुनी हो जाती है।

एक ओर तो सूचनाओं का यह "विस्फोट" है पर दूसरी ओर वैज्ञानिकों तथा शोध-कर्ताओं की आम शिकायत है कि समाज इतना रूढ़िग्रस्त है कि उसे कोई भी नया विचार स्वीकारने में युग बीत जाते हैं। परिणाम यह होता है कि अधिकांशतः यह खोजें शोध-पत्रिकाओं और पाठ्यपुस्तकों के पन्नों में कैद पड़ी रह जाती हैं। आम आदमी की न तो उनमें कोई रुचि होती है और न ही वह शोध परिणामों तथा पर्यवेक्षणों का कोई उपयोग कर पाता है।

इस स्थिति का मुख्य कारण है सम्प्रेषण-खाईं। सम्प्रेषण का साधारण अर्थ, अपनी बात को ठीक ढँग से प्रस्तुत करने की कला से है। परन्तु मुश्किल यह है कि वैज्ञानिक, अधिकतर, सम्प्रेषण कला में पारंगत नहीं होते। शोधकर्ता भी आम पाठक को दृष्टि में रखकर नहीं लिखता। उसका उद्देश्य तो अपने संदेश को अपने समकक्षी वैज्ञानिकों तक पहुँचाना मात्र ही होता है; जिनकी सहमति पर शोधकर्ता की उन्नति, प्रोन्नति तथा विदेश-गमन आदि निर्भर रहते हैं। अब आम आदमी यदि उन पाठ्य-पुस्तकों में सर भी खपाता है तो उसके पल्ले कुछ पड़ता नहीं।

इस तरह यह खाईं नित्य बढ़ती ही जाती है। आवश्यकता है इस खाईं को पाटने की। आज हम बीसवीं तथा इक्कीसवीं सदियों के संगम की ओर बढ़ रहे हैं। आने वाली सदी, हम जानते हैं, पूर्णरूपेण विज्ञान तथा तकनीकी को समर्पित रहेगी। ऐसी स्थिति में इस खाईं का "तुरन्त पाटना" अपने देश की उन्नति हेतु एक आवश्यकता बन गई है।

अब प्रश्न उठता है कि इस आवश्यकता की पूर्ति कैसे हो ? यह तभी हो सकता है जब हम सुगम विज्ञान लेखकों तथा विज्ञान पत्रकारों की एक पूरी फौज की फौज, इस खाईं को पाटने में लगा दें। इस दायित्व को तेजी से निभाने के लिए यह आवश्यक है कि इस जमात का हर लेखक या पत्रकार सम्प्रेषण कला में पारंगत हो।

सम्प्रेषण दो, या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सोच के आदान-प्रदान को कहते हैं। यह आदान-प्रदान ठीक ढँग से तभी सफल होता है यदि लेखक और पाठक दोनों ही उस सोच के वांछित अर्थ लगा लें। सम्प्रेषण तभी सफल कहा जाता है जब एक प्रवीण सम्प्रेषक तथ्यात्मक संदेश, उपयुक्त माध्यम से, रोचक तथा सरल भाषा में, ठीक ढँग से विवेचित करके, पाठक के सामने इस प्रभावशाली ढँग से प्रस्तुत करता है कि वह कठिन से कठिन विषयवस्तु का सार तो ग्रहण कर ही ले पर साथ-साथ प्रतिक्रिया (कुछ और जानने समझने की क्रिया) के लिये भी प्रेरित हो सके। इस तरह सम्प्रेषण के 6 घटक हुए—सम्प्रेषक (विज्ञान लेखक), संदेश (विषयवस्तु), माध्यम (विज्ञान पुस्तिका, लेख आदि), विवेचन (सुगम, सुग्राह्य तथा रुचिकारक ढंग से प्रस्तुतिकरण), पाठक/श्रोता तथा पाठकीय प्रतिक्रिया।

सम्प्रेषण कला के विद्वान डॉ० विल्वर श्रम के अनुसार किसी भी लेखन की पठनीयता दो बातों पर निर्भर करती है : (1) पुरस्कार की आशा तथा (2) पढ़ने में लगने वाला श्रम। पुरस्कार का रूप कुछ भी हो सकता है : मात्र मनोरंजन और मन बहलाव, तनाव-मुक्ति या ज्ञान-वृद्धि। अब यदि पुरस्कार की आशा कम तथा पढ़ने में कठिनाई हो तो पठनीयता शून्य की ओर पहुँचने लगती है और यदि पुरस्कार की आशा अधिक हो तथा पढ़ने में कठिनाई कम हो तो पठनीयता तेजी से बढ़ जाती है।

सम्प्रेषण स्वयं में एक कला भी है और विज्ञान भी। यदि वैज्ञानिक सामग्री का कलात्मक प्रस्तुतिकरण नहीं होता तो लेखन अरुचिकर और अपठनीय होने लगता है। पर दूसरी ओर कलात्मकता चाहे जितनी भी डाल दी जाए, लेखन यदि तथ्यात्मक निश्चयात्मकता से अभावग्रस्त है तो लेखन कभी सरल, सुपाच्य और रुचिकर नहीं हो सकता।

भाषा की दुरूहता सफल सम्प्रेषण का सबसे बड़ा शत्रु है। आज न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त आम आदमी भी आसानी से समझ लेता है, क्योंकि उन्होंने एक सेब के गिरने की प्रक्रिया के माध्यम से अपने सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। इसी तरह बोल्ट्जमैन सरीखे वैज्ञानिक बिलियर्ड की गेंदों के टकराव द्वारा गैसों के अणुओं का व्यवहार हमको समझा सके।

परन्तु शोधकर्ताओं द्वारा ऐसी-ऐसी खोजें हो रही हैं, ऐसे-ऐसे तथ्यों का पता चल रहा है, जिन्हें हम जन-भाषा में व्यक्त ही नहीं कर सकते । ''क्वांटम सिद्धान्त'' और ''पार्टिकिल फिजिक्स'' को समझाने के लिए भला कौन-से उदाहरण दिये जायें ? अतः इनको यदि जन-भाषा में व्यक्त करना है तो उसका परिमार्जन करना होगा । यह परिमार्जन हो भी रहा है । आज परमाणु ऊर्जा, उपग्रह, न्यूट्रान बम, पर्यावरण, एक्स-रे, लेसर किरणें, बैक्टीरिया, हरमोन और विटामिनों का ज्ञान आम आदमी के स्तर तक पहुँच गया है, पर आज से मात्र 20 साल पहले आम आदमी इनसे बिल्कुल अनभिज्ञ था ।

इसमें कोई शक नहीं कि विज्ञान पत्रकारिता, विज्ञान लेखन तथा तकनीकी साहित्य का प्रसार प्रचार आज दिन दूना रात चौगुना हो रहा है । आज से 20 वर्ष पहले कितने अखबार और पत्रिकाएँ विज्ञान का ''कालम'' चलाते थे ? विज्ञान पर कितनी पत्रिकाएँ निकलती थीं ? आम पाठक के स्तर पर विज्ञान की कितनी पुस्तकें छपती थीं ? लगभग शून्य 1 पर आज स्थिति कितनी बदल गई है । आज शायद ही किसी भाषा का एक भी पत्र अथवा पत्रिका ऐसी न होगी जिसमें विज्ञान और तकनीकी साहित्य लेखन के लिए स्थान न निश्चित होता हो । विज्ञान पुस्तिकाओं, कथाओं और पत्रिकाओं की संख्या पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है ।

पर सम्प्रेषण-खाईं को शीघ्र पाटने हेतु अधिक प्रयास और परिश्रम की आवश्यकता है । विज्ञान लेखक के लिए यह अति आवश्यक है कि वह अपनी विषयवस्तु, जिस पर वह लिख रहा है, उसका तथ्यमूलक निश्चयात्मक ज्ञान पहले स्वयं अर्जित कर ले तभी लिखे । निश्चयात्मक ज्ञान के अभाव से ग्रसित लेखन न उपयोगी हो सकता है ओर न ही रूचिकर ।

वैज्ञानिक साहित्य की रोचकता हेतु शैली की विविधता आवश्यक है । एक ही शैली में लिखी बात से एकरसता पैदा होती है तथा पाठक को मानसिक थकान होने लगती है । लेखक को वाक्यों की लम्बान का भी ख्याल रखना चाहिये । डॉ० एडोल्फ फ्लैश का कहना है, ''जब भी वाक्य की लम्बाई 20 शब्दों से आगे बढ़ने लगती है तो वह कठिन होने लगता है ।'' अतः कुशल विज्ञान लेखक वही होता है जो अपनी विषय वस्तु को सुगम शब्दों, छोटे वाक्यों तथा नन्हें पैराग्राफों में निश्चयात्मक ढँग से कह सके । कुछ लेखक भाषा के प्रवाह का बिना कोई ख्याल किये पारिभाषिक शब्दावली की सहायता से अँग्रेजी लेखों का हिन्दी में शब्दशः रूपान्तर करके अपने कर्तव्य का अन्त समझ लेते हैं । इस तरह का अनूनादित साहित्य कितना रोचक होगा हम स्वयं ही समझ सकते हैं ।

□□

हिन्दी विज्ञान लेखन–विश्वसनीयता का संकट

डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत के कर्णधारों की नीति इस देश में वैज्ञानिक शोध को बढ़ावा देने की रही है। इसीलिये यह स्वाभाविक ही था कि इस क्षेत्र में मिलने वाली उपलब्धियों के साथ यहाँ के परम्परावादी समाज में विज्ञान की घुसपैठ बढ़ती। शिक्षा के प्रसार के साथ योरोप एवं अमेरिका में चलने वाली अकल्पनीय प्रगति ने भी जनमानस को उद्वेलित किया। परिणामस्वरूप, और अधिक पाठकों को आकृष्ट कर अर्थ-लाभ करने का एक नया फार्मूला हिन्दी की सामान्य पत्र-पत्रिकाओं के हाथ अनायास ही लग गया। उन्होंने जीवन को सीधे छूने वाले वैज्ञानिक विषयों, जैसे ऊर्जा, प्रदूषण, समुद्र-तल उत्खनन आदि पर भी लेख छापने प्रारम्भ कर दिये। अंतरिक्ष एवं अंटार्कटिका आदि पर भी लेखों का स्वागत किया गया, क्योंकि इनके आश्चर्यकारी लगने वाले वृत्तांत जन-साधारण के लिये जादू, तंत्र-मंत्र एवं चमत्कार के सदृश ही रुचिकर थे।

पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में इन लेखों का प्रकाशन काफी संख्या में हुआ। प्रत्येक अंक में एक दो ऐसे लेखों को देना सम्पादकीय आवश्यकता समझी जाने लगी। यह एक अच्छी बात थी क्योंकि सामान्य जनसमूह में वैज्ञानिक चेतना के विकास में तथा इस प्रकार जीवन के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण पनपाने में यह प्रक्रिया हो सकती थी और एक सीमा तक हुई भी। परन्तु इसी के साथ विश्वनीयता का क्षंकट भी पैदा हुआ। विज्ञान के नाम पर छापने वाला सारा माल वैज्ञानिक प्रकृति का नहीं था। उसमें बहुत सी अशुद्धियाँ थीं और भ्रांतियाँ भी। शुद्ध वैज्ञानिक तथ्यों को भी चाट-मसाले में लपेट कर पेश करने की

प्रवृत्ति ने वैज्ञानिक चेतना जागृत करने के स्थान पर पाठकों की सामान्य चेतना को कुँठित करने का ही काम अधिक किया। इसका एक कारण यह भी था कि लोकप्रिय विज्ञान का लेखक स्वयं विज्ञान से अनजान था। वह तो केवल जनरुचि को भुनाने के लिये लिख रहा था। प्रतिष्ठित विज्ञान-जर्नलों में छपे क्लिष्ट एवं अत्यंत तकनीकी कोटि के शोध-पत्रों अथवा शोध समीक्षाओं को समझना उसके वश की बात नहीं थी। अतः वह गैर-वैज्ञानिक विदेशी पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचारपत्रों में छपे विज्ञान-संबंधी लेखों को ही अपने लेखन का आधार बनाता रहा। स्पष्ट था कि ऐसी स्थिति में ये "प्रोफेशनल" लेखक जो कुछ दे पाते थे (या अभी भी दे रहे हैं), वह अधिक से अधिक केवल द्वितीय या तृतीय कोटि की सामग्री थी। गहराई का तो उसमें प्रश्न ही नहीं था। परन्तु प्रारंभ में वैज्ञानिकों तथा उच्च शिक्षा से संबंधित विज्ञान प्राध्यापकों के हिंदी के प्रति हीन दृष्टिकोण के कारण हिंदी पाठक को नियति यही रही।

कालांतर में स्थिति कुछ बदली। छोटा ही सही परन्तु देश के विज्ञानियों के मध्य एक ऐसा वर्ग उभरा जो हिन्दी से प्रेम करता था और हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान-लेखन के महत्व को समझता था। इस वर्ग द्वारा विज्ञान लेखन के क्षेत्र में प्रवेश करने से ऊपर बताई गई स्थिति में सुधार आना चाहिये था, परन्तु ऐसा कम ही हो सका और आज भी स्थिति लगभग दयनीय बनी हुई है।

इसके कई कारण हैं। पहला तो यह कि इन नये, विद्वान लेखकों को पुराने 'प्रोफेशनल' लेखकों से प्रकाशन जगत में प्रतियोगिता करनी पड़ती है। इसमें सफलता मुश्किल से मिलती है क्योंकि वे पहले से जमे हुये हैं और अपने लेखन की गंभीरताविहीन परन्तु रुचिकर शैली से संपादकों को मोहित सा किये रहते हैं। आप कह सकते हैं कि सम्पादकों तथा इन व्यावसायिक लेखकों के मध्य एक अलिखित अनुबंध-सा रहता है।

दूसरा कारण यह है कि हिन्दी की गैर वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभाग में अभी भी विज्ञान के जानकारों की नियुक्ति नहीं की जाती। अतः सम्पादक मंडल के लोगों के लिये विज्ञान को सही रूप में प्रस्तुत करने वाले लेखों (जो निश्चय ही कम चटपटे होते हैं) के महत्व को पहचानना संभव नहीं हो पाता। उनमें नये विषयों को पहचान कर स्वयं उन पर सामग्री तैयार करवाने की क्षमता भी नहीं होती। यह स्थिति एक ओर तो व्यावसायिक लेखकों से प्राप्त लेखों को जस-का-तस छाप देना उनकी अपनी मजबूरी बना देता है तो दूसरी ओर नये, विद्वान लेखकों का इस क्षेत्र में प्रवेश दुष्कर कर देता है। दुष्कर इसलिये क्योंकि ये सम्पादक विज्ञान तो जानते नही, अतः या तो वे नये लेखकों में यह देख कर छापते हैं कि वे शुद्ध विज्ञान के क्षेत्र में कितनी बड़ी हस्ती हैं या फिर लेख सधन्यवाद वापस ही कर देते हैं।

इन परिस्थितियों में कभी कोई विज्ञान का गुणाकर मुळे जैसा जानकार लेखक तो सफल हो जाता है, परन्तु अधिकतर को निराशा के बहुत बड़े दौर से गुजरना पड़ता है।

मैं स्वयं भुक्तभोगी हूँ और इस दौर में तरह तरह के अनुभवों का शिकार हो चुका हूँ। लगभग 12 वर्ष पूर्व जब मैंने लिखना प्रारम्भ किया तो कोई भी रचना डाक विभाग की आठ आठ दस दस बार मेहमान बनने के बाद ही पाठकों के सम्मुख आ सकी। सम्पादकों के विज्ञान से अनजान रहने के कारण ही एक बार सीसा विषाक्तता पर मेरा एक अत्यधिक खोजबीन के उपरांत लिखा गया तथा नवीनतम जानकारी से युक्त लेख एक अत्यन्त प्रतिष्ठित पत्रिका में स्वीकृत होने के बाद भी दो वर्षों तक अप्रकाशित पड़ा रहा और अंत में उसे कहीं और छपाना पड़ा। निश्चय ही सम्पादक महोदय उस लेख के महत्व का पूर्ण आकलन करने में असमर्थ थे। एक अन्य पत्रिका ने "रेयॉन संयंत्रों से फैलता प्रदूषण" इस लिये वापस कर दिया क्योंकि "सल्फर डाइ ऑक्साइड प्रदूषण पर तो बहुत लिखा जा चुका है"। वे उसके कार्बनडाइसल्फाइड तथा हाइड्रोजन सल्फाइड प्रदूषण पक्ष के बारे में नितांत अनभिज्ञ थे इसलिये लेख के महत्व को समझ ही नहीं पाये।

सम्पादकों के विज्ञान से अनजान रहने के कारण किस प्रकार भ्रांतिपूर्ण बातें छप सकती हैं—इसका भी एक उदाहरण दे सकता हूँ। चेर्नोबिल पर मैंने एक लेख लिखा और एक ऐसी प्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजा जो सामान्यत: मेरे लेखों को स्थान देती थी। परन्तु लगता है कि उसके पहले उन्हें एक जाने-माने व्यावसायिक लेखक से भी इसी विषय पर लेख प्राप्त हो गया था और उन्होंने उसे छापना अधिक श्रेयष्कर समझा। उन लेखक महोदय को यही नहीं मालूम था कि "कोर मेल्टडाउन" किसे कहते हैं और इसके परिणाम कैसी भस्मासुरी प्रकृति के हो सकते हैं। उन्होंने अपने लेख में फरमाया था कि ऐसी दुर्घटना पहली बार नहीं हुई थी; ऐसा कई बार हो चुका था और डरने की कोई आवश्यकता नहीं थी। मैंने सम्पादक को लिखा कि लेख भ्रांतिपूर्ण है और ऐसी दुर्घटना पहली बार हुई है यद्यपि थ्री माइल द्वीप पर भूमिका लिखी जा चुकी थी। पत्र छपा परन्तु अगले अंक में उन लेखक का उत्तर भी छपा जिसमें उन्होंने सगर्व घोषणा की थी कि उनकी जानकारी ऐसे बड़े बड़े अमेरिकी पत्रों में छपे तथ्यों पर आधारित थी जो अपनी वस्तुपरक पत्रकारिता के लिये इस सीमा तक विख्यात हैं कि उन्होंने प्रेसीडेंट निक्सन तक का आसन हिला दिया था। अब आप क्या कहेंगे? हाँ, इतना और बता दूँ कि जब मैंने श्री लेगासेव को उद्धृत करते हुये फिर पत्र लिखा तो वह अप्रकाशित रहा तथा पत्रिका ने मेरे लेखों को छापना बन्द कर दिया।

यदि हिन्दी में विश्वसनीयता के इस संकट को काटना है तो सम्पादक मंडलों में एक न एक विज्ञानी का होना आवश्यक है। वह यदि लेख के महत्व को न भी समझ पाये तो किसी जानकार से सम्मति माँग सकता है। जब तक ऐसा नहीं होता, हिन्दी के वास्तविक विज्ञान लेखक को बार-बार पिटना ही पड़ेगा, क्योंकि अधिक बड़े जनसमूह के समक्ष अपनी बात रखने के लिये गैर वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपने का प्रयत्न करना उसकी मजबूरी है।

□□

हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं का विज्ञान के प्रचार-प्रसार और औद्योगिकीकरण में योगदान

डॉ० रामगोपाल

संख्या के आधार पर और तकनीकी क्षेत्र में अमेरिका और रूस के बाद भारत में विश्व की तीसरी मानव शक्ति उपलब्ध है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के इन 41 वर्षों में पंडित जवाहरलाल नेहरू की दूरदृष्टि और प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप भारत ने विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है, पर उनके स्वप्नों का भारत बनाने में हमें अभी बहुत कुछ करना शेष है। वैज्ञानिकों एवं तकनीशियनों की इस विशाल संख्या और अनेक अनुसन्धान एवं विकास कार्यक्रमों में महती सफलतायें प्राप्त करने के अनुपात पर हम दृष्टि डालें और अपने आप से ईमानदारी से यह प्रश्न पूछें कि हमारे वैज्ञानिक कार्यों की क्या गुणवत्ता है? यह दुःख का विषय है कि कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियों को छोड़कर, अपने कार्यों का गर्वपूर्वक उल्लेख नहीं कर सकते। "लैब टू लैण्ड" कार्यक्रम भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रचारित एवं प्रसारित किया किन्तु परिणामों पर अनेक प्रश्नचिन्ह तथा द्विविधायें जनमानस में व्याप्त हैं। इन सबकी समीक्षा यदि की जाये तो मूल में हम पाते हैं हमारे शोध और तकनीकी को जनसहयोग चाहिये। प्रयोगशाला से निकालकर विज्ञान को घर-घर, खेत-खेत और औद्योगिक संस्थानों तक पहुँचाने के लिये मार्ग चाहिये सम्पर्क भाषा चाहिये और अदम्य इच्छाशक्ति चाहिये। उदाहरण के लिये, दूरदर्शन के कृषि-दर्शन कार्यक्रम अत्यन्त लोकप्रिय तथा कारगर सिद्ध हो रहे हैं। इस प्रकार के वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं विकास कार्यक्रम हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से आशातीत हरितक्रान्ति लाने में पूर्ण सफल हुए हैं। ज्ञान ही विज्ञान है जो सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक

एवं कल्याणदायक होता है। जवान हो या किसान, जब वह अपनी भाषा व बुद्धि से किसी तकनीक को समझ लेता है तो उसके सफल उपयोग के साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण सुझाव और सुधार द्वारा तकनीक को और कारगर बनाता है। युद्धभूमि, खेतों एवं गाँवों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ भारतीयों ने अपनी वल, बुद्धि और कौशल के झंडे गाड़े हैं।

प्रयोगशाला से जीवनोपयोगी विज्ञान की दूरी अनेक विकसित देशों और प्राचीन भारत द्वारा किस प्रकार तय की गई और हम नवभारत के निर्माण में कैसे सहयोगी हो सकते हैं, इन समस्याओं के समाधान में हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। संसार में लगभग 5000 भाषायें हैं। जहाँ अकेले भारत में 200 पूर्ण परिभाषित भाषायें हैं वहीं 700 बोलियाँ भी हैं। इस विशालता में एक समान सम्पर्क भाषा का प्रयोग जो सभी द्वारा समझी जा सके एक विवाद का प्रश्न बना हुआ है। परन्तु सौभाग्यवश लगभग 50 प्रतिशत जनता की मातृभाषा हिन्दी है, अन्य 25 प्रतिशत हिन्दी भलीभाँति समझ सकती है। अन्य 20-25 प्रतिशत आन्ध्र, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु के वे दक्षिण भारतीय हैं जो कोई न कोई द्रविड़ भाषा बोलते हैं, जो व्याकरण, शैली आदि में संस्कृत के तो अतिनिकट है परन्तु लिपि व रचना में हिन्दी से पर्याप्त भिन्न है। सौभाग्य-वश हिन्दी अति सरल भाषा होने के कारण दक्षिण भारतीयों द्वारा सहज ही सीख ली जाती है और सरकारी प्रोत्साहन, राजभाषा प्रचार समिति एवं अनेक संस्थान व समितियाँ राजभाषा के प्रचार-प्रसार में व्यापक कार्य कर रही हैं। कुछ राजनीतिक एवं क्षेत्रीय कारणों से राजभाषा के राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाये जाने की दिशा में अड़चने हैं परिणामस्वरूप विज्ञान तथा तकनीकी के प्रचार-प्रसार को पूर्ण वल नहीं मिल पाया है। 20वीं सदी के प्रारम्भ से ही हमारे समाज सुधारकों एवं चिन्तकों ने विज्ञान के पठन-पाठन में क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने के पक्ष में प्रयास करने की चेतना जगायी थी। राजाजी ने सन् 1930 में एक लेख में अपने आपसे प्रश्न पूछते हुए लिखा था कि क्या हम विज्ञान में पढ़ा सकते हैं और उन्होंने पूर्ण विश्वास एवं निश्चयात्मक रूप से कहा था "हाँ" यह सम्भव है। अन्नामलाई विश्वविद्यालय में 1934 में तमिल में लिखी रसायन-शास्त्र की पुस्तक पर रु० 1000/- का पुरस्कार भी दिया गया था। प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में भी हिन्दी में शोधकार्य करने के लिये कई दशकों से इम्प्रेस विक्टोरिया-रीडरशिप छात्रवृत्ति दी जा रही है, जिसका सौभाग्य मुझे भी 1962-63 से प्राप्त हुआ था। महान भौतिकविज्ञानी सत्येन बोस ने 1930 में अनेक वैज्ञानिक लेख बंगाली में लिखे थे। विज्ञान परिषद्, प्रयाग, सन् 1914 से निरन्तर हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार में लगी हुई है। टंडनजी ने भी इस कार्य में अपना जीवन ही अर्पित कर दिया था। अनौपचारिक रूप से प्रो० डी० एस० कोठारी दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिकशास्त्र का और डॉ० सत्यप्रकाश (अब स्वामी सत्यप्रकाश), इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में रसायनशास्त्र का अध्यापन छात्रों को हिन्दी में कराते रहे हैं। "विज्ञान" पत्रिका के प्रारम्भिक लेखक डॉ० सत्यप्रकाश, स्व० डॉ० आत्माराम, श्री महावीर प्रसाद

श्रीवास्तव, स्व० डॉ० फूलदेव सहाय वर्मा, स्व० डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० हीरालाल निगम, डॉ० शिवगोपाल मिश्र आदि दर्जनों लेखकों ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सराहनीय कार्य किया है। आज सभी हिन्दी-प्रेमी वैज्ञानिकों, लेखकों अध्यापकों एवं अन्य नागरिकों को एकजुट होकर कार्य करना है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान एवं हरियाणा में स्नातक स्तर तक शिक्षा और परीक्षा का माध्यम हिन्दी है, यह सन्तोष का विषय है। मेरी जानकारी में मध्यप्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर वैज्ञानिक विषयों का अध्यापन एवं परीक्षण हिन्दी माध्यम से नहीं है। मेडिकल तथा इंजीनियरिंग कॉलेजों का जहाँ तक प्रश्न है कदाचित् देश में कहीं भी प्रशिक्षण हिन्दी माध्यम में उपलब्ध नहीं है। इसका प्रमुख कारण वैज्ञानिक पाठ्यपुस्तकों का हिन्दी भाषा में अभाव और कई जो अनुवादित हैं, उनका सभी क्षेत्रों में सुलभ न होना है। भारत सरकार तथा कई प्रांतीय सरकारें हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन के लिये अनेक प्रोत्साहन और सुविधायें प्रदान कर रही हैं। अब तक केवल 15 प्रतिशत साहित्य अँग्रेजी से हिन्दी में अनुवादित हो पाया है। इस दिशा में कार्य आगे भी हो रहा है, बहुत शेष है। कारण हम स्वयं इस मानसिकता से घिरे हैं कि अँग्रेजी में कार्य करना व्यावसायिक दृष्टिकोण तथा पदोन्नति के लिये अधिक उपयोगी है। इस व्यवस्था को बदलना है। पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त आदर्श विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिन्दी में पठन-पाठन, अध्यापन और परीक्षण की पूर्ण सुविधायें जुटाना है।

विज्ञान तथा तकनीकी का अध्यापन हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में पूर्णतया सम्भव है। संसार में बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से हिन्दी का स्थान चौथे क्रम पर आता है। 16वीं सदी में जब यूरोपीय देशों में आधुनिक विज्ञान का शुभारम्भ हुआ तो अँग्रेज़ी भाषा के सामने भी ऐसी ही समस्या थी। अँग्रेज़ी ने प्रमुखतया लैटिन और अनेक भाषाओं के शब्दों को आत्मसात कर इतना विस्तृत स्वरूप पाया है। हिन्दी में अँग्रेजी और अन्य देशी तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों को अंगीकार करते हुए दिन प्रतिदिन विकसित होती जा रही है। शब्दकोशों का प्रकाशन अत्यन्त सराहनीय कदम है। हमें फ्रांस, चीन, जापान, जर्मनी, रूस जैसे अनेक देशों को इस दिशा में आदर्श मानना चाहिये, जिनकी तकनीकी भाषा अँग्रेज़ी नहीं है फिर भी ये देश उपलब्धियों की दृष्टि से विज्ञान एव तकनीकी में चोटी के देशों में गिने जाते हैं। अब तो हमारे तकनीशियनों ने हिन्दी में वर्ड प्रोफ़ेसर एवं सिद्धार्थ नामक कम्प्यूटर आदि विकसित कर लिये हैं। हमारे ये भागीरथ प्रयत्न, हमारी दृढ़ इच्छाशक्ति और हमारा संकल्प ही हिन्दी के माध्यम से जन-जन को विज्ञान का लाभ सुलभ करा सकेंगे। कारखानों के सभी मजदूरों, निम्न कर्मचारियों, सैनिकों, किसानों और बहुसंख्यकों की भाषा हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषायें हैं जो सुई से लेकर जहाज़, टैंक व अन्तरिक्षयान का निर्माण कर रहे हैं।

विज्ञान और तकनीकी का विकास तभी सम्भव है जब वैज्ञानिकों को शोध सम्बन्धी सूचनायें एवं परिणाम शीघ्र और सहज रूप से मिल सकें। शोध-पत्रिकायें विज्ञान के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 55,000 वैज्ञानिक जर्नल प्रकाशित होते हैं। भारत में प्रति वर्ष 4300 जर्नलों का प्रकाशन होता है जो संपूर्ण विश्व के प्रकाशन का केवल 8 प्रतिशत है। उपलब्ध वैज्ञानिक और तकनीकी मानवशक्ति के अनुसार यह काफ़ी कम प्रतीत होता है। हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में शोध-पत्रिकाओं के प्रकाशन की गणना तो मात्र अंगुलियों से ही की जा सकती है।

फिर इस ज्ञान का प्रसार किस प्रकार हो? यद्यपि राष्ट्रीय अनुसन्धान एवं विकास परिषद् व वैज्ञानिक और औद्योगिकीय अनुसन्धान परिषद्, भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद्, विज्ञान परिषद् आदि पूर्ण निष्ठा से यह कार्य कर रही हैं पर इन्हें और बल मिलना चाहिये और शोध-पत्रों के प्रकाशन की सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिये। इनके प्रकाशनों को उत्कृष्ठ प्रकाशनों की श्रेणी में भी रखा जाना चाहिये। अँग्रेज़ी में 34 प्रतिशत (इनमें से आधे संयुक्त राज्य अमेरिका से) की तुलना में फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश और इटेलियन भाषाओं में लगभग 13 प्रतिशत और रूसी में 3 प्रतिशत शोधपत्रिकाओं का भाषा के आधार पर प्रकाशन है। यदि विश्व के वैज्ञानिकों की भाषा ज्ञान पर नजर डाली जाये तो अँग्रेजी जानने वाले 30 प्रतिशत, जर्मन जानने वाले 20 प्रतिशत, फ्रेंच 15 प्रतिशत और रूसी जानने वाले 15 प्रतिशत वैज्ञानिक हैं। जहाँ तक भारतीय वैज्ञानिकों के शोध कार्यों के प्रकाशन की स्थिति है, लगभग 58 प्रतिशत प्रकाशन विदेशों, विशेषकर अमेरीका और इंगलैण्ड से प्रकाशित होने वाली अँग्रेजी भाषीय पत्रिकाओं में होता है। अगर संसार में साइंस साइटेशन इन्डैक्स द्वारा आकलित प्रकाशित 2700 शोध-पत्रिकाओं पर नजर डालें तो भारतवर्ष में मात्र 26 शोध-पत्रिकाएँ ही प्रकाशित होती हैं। हमारे भारतीय वैज्ञानिक प्रतिवर्ष 15000 शोधपत्र ही प्रकाशित करते हैं जो कि संसार के प्रकाशन का मात्र 3 प्रतिशत है। यद्यपि ऐतिहासिक कारणों से हमारे देश में लगभग 150 वर्षीय ब्रिटिश शासन ने अधिकतर शिक्षित भारतीयों को अँग्रेजी भाषा से परिचित कराया है जिसके कारण अँग्रेजी भाषा के प्रति लगाव और मानसिकता इस विदेशी भाषा के प्रति बन गई है किन्तु अनेक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में जर्मन, फ्रेंच, रूसी, जापानी आदि भाषाएँ ऐच्छिक रूप से पढ़ाई जाती हैं। इसी प्रकार अँग्रेजी को ऐच्छिक विषय बनाया जा सकता है। जिस प्रकार किसी अन्य देश में जाने के पूर्व लगभग 6 माह में वहाँ की भाषा समझ ली जाती है उसी प्रकार अँग्रेजी को भी सहज में सीखा जा सकता है। जब तक हिन्दी, एक समान भाषा के रूप में वैज्ञानिकों, तकनीशियनों, राजनीतिज्ञों, किसानों, मजदूरों और अन्य लोगों की भाषा नहीं बन पायेगी, औद्योगिक विकास में वैज्ञानिक ज्ञान को पूर्णरूप से अपनाने में और उसे जीवनोपयोगी उपकरणों के रूप में परिवर्तित करने में हमें पूर्ण सफलता शीघ्र नहीं प्राप्त कर पायेंगी। विश्वविद्यालयों एवम् राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में न जाने कितना उपयोगी तकनीकी ज्ञान संचित पड़ा है, किन्तु जनमानस तक न पहुँच पाने के कारण इसका उपयोग नहीं हो पा रहा है।

हम सभी अपनी गौरवशाली परम्परा और उपलब्धियों से अनभिज्ञ नहीं हैं विशेष-कर, गणित, खगोलशास्त्र और धातु विज्ञान के क्षेत्रों में सिन्धु घाटी की सभ्यता और वैदिक काल से ही हमारे ज्ञान-विज्ञान व शोधकार्यों से देश-विदेश पूर्ण परिचित हैं। उदाहरण के रूप में यजुर्वेद के चमाकम नाम के पैराग्राफ में एक उदाहरण आता है जहाँ भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है कि जीवन में उसे विभिन्न वस्तुएँ प्रदान करें : "हिरण्य चमे आयश्चेमे सीसंचमे त्रपुश्चमे श्याम श्चमे सोहंचमे"

उपरोक्त उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि ईसा से 1500 पूर्व भी हमारे पूर्वज चाँदी, सोना- शीशा, टिन, लोहा, ताँबा आदि धातुओं से परिचित थे।

हम पुरातन भारत के विज्ञान और संस्कृति को पुनः जाग्रत कर सकते हैं साथ-ही साथ इसका उपरोक्त विकास भी कर सकते हैं। हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषाओं के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार और औद्योगिक प्रगति को पूर्ण बल मिलेगा और 21वीं सदी में भारत चोटी के विकसित देशों में गिना जायेगा।

□□
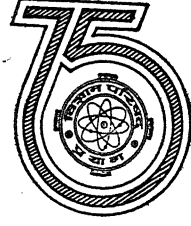
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन

डॉ० लोकेन्द्र सिंह

आज जीवन के हर क्षेत्र में विज्ञान का बिगुल बज रहा है। विज्ञान ने हमारे दैनिक जीवन को इतना प्रभावित कर दिया है कि उसके बिना हमें अपनी जिन्दगी की कल्पना असंभव लगती है। विज्ञान ने हमें एक तरफ मनोरंजन तथा एशो-आराम के साधन उपलब्ध कराए हैं तो दूसरी तरफ हमारी मूल आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विज्ञान के द्वारा जहाँ अनेक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं वहीं उस विज्ञान के सही प्रचार-प्रसार तथा उपयोग के लिए सही माध्यम का अभी भी हमारे देश में अभाव हैं। यद्यपि हमारे देश को आजाद हुए 41 वर्ष हो गए हैं, परन्तु हम अब भी अंग्रेजों की दासता की प्रतीक अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग बिना सोच-समझ के कर रहे हैं।

किसी भी मानव के लिए अत्यधिक सरल भाषा उसकी मातृभाषा ही होती है अतः यह आवश्यक है कि भारत में विज्ञान का माध्यम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा ही हो। भारत सरकार के निरन्तर प्रयासों के कारण हिन्दी को वैज्ञानिक क्षेत्रों में कुछ स्थान अवश्य मिला है। कुछ तकनीकी शब्दकोश एवं पत्रिकाएँ हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं तथा करीब 15 प्रतिशत साहित्य का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद भी किया गया है परन्तु यह उपलब्धि आवश्यकता को देखत हुए नगण्य ही है। ऐसे अनेक देश हैं जैसे की रूस, चीन, जापान इत्यादि जो कि अपनी भाषा का ही प्रयोग विज्ञान में गर्व के साथ करते हैं परन्तु भारतीय लोग अपनी भाषा के प्रयोग में ही हीनता की भावना से ग्रस्त हो जाते हैं। यदि हम अपनी मातृभाषा की कद्र स्वयं नहीं कर सकते तो इससे अधिक शर्मनाक बात कुछ नहीं हो सकती।

विभिन्न भारतीय भाषाएँ

भारत में 15 प्रादेशिक भाषाएँ हैं तथा अन्य अनेक बोली जाने वाली भाषाएँ हैं। यदि विज्ञान का अनुवाद व लेखन सब भाषाओं में हो तो यह कार्य काफी कठिन हो जाएगा तथा साथ ही साथ वैज्ञानिकों का एक दूसरी भाषा वाले वैज्ञानिकों से सम्पर्क कट जाएगा। यदि हिन्दी को ही एक भाषा मानकर सब लेखन इस भाषा में किया जाए तो यह निश्चय ही विज्ञान के प्रचार-प्रसार में लाभदायद सिद्ध हो सकती है। अतः प्रत्येक भारतीय का यह कर्तव्य है कि वह अपने देश के हित में राजनीतिक या अन्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस काम में अवरोधक न बने।

उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम की, तुलनात्मक और ज्यादा कमी है। इसका कारण हिन्दी माध्यम में उपलब्ध साहित्य की कमी के साथ-साथ सरकार की नीतियाँ भी है। कम से कम हिन्दी भाषी प्रदेशों में उन विषयों में जिनमें कि पुस्तक उपलब्ध हैं यह कार्य शुरू किया जा सकता है, परन्तु लगता है कि जीवन की झूठी शान व स्तर के कारण हमारे अध्यापक इस कार्य को शुरू करने में रुचि नहीं लेते।

वैज्ञानिकों व तकनीशियनों को अपने शोध-पत्र हिन्दी में लिखने के लिए अभी तक कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया हैं। यदि कोई वैज्ञानिक ऐसा सोचता भी हैं तो उसके मस्तिष्क में तुरन्त विचार आता है कि क्या उसके कार्य को निम्न स्तर का तो नहीं समझा जाएगा? क्या लोग यह तो नहीं समझेंगे कि वह अंग्रेजी भाषा में दक्ष नहीं है एसलिए उसने यह कार्य हिन्दी में किया है? क्या यह शोध-पत्र उसकी नौकरी में चयन के लिए अवरोधक होगा? इन सब प्रश्नों को यदि हल कर दिया जाय तो निश्चय ही एक हिन्दी भाषी छात्र को हिन्दी माध्यम के चयन में हिचकिचाहट नहीं होगी।

हमारे देश में विज्ञान के कार्यों में हिन्दी का प्रयोग कठिन अवश्य लगता है, परन्तु यह असंभव नहीं हैं। इसके लिए जो विलम्ब है वह सिर्फ यह है कि मानसिक स्तर पर हम सबने इसे प्रारम्भ करने का विचार ही नहीं बनाया है। किसी ने ठीक ही कहा है "जहाँ चाह वहाँ राह"। आजादी के बाद से अब तक हम यही कहते आए हैं कि धीरे-धीरे इसका प्रयोग होने लगेगा परन्तु अब ऐसा प्रतीत होता है कि यदि इसी प्रकार हम मन्दगति से चलते रहे तो यह कार्य कभी भी पूरा नहीं हो पाएगा। वर्तमान में यह आवश्यक हो जाता है कि इस काम को शुरू करने के लिए सरकार द्वारा ठोस कदम उच्च स्तर से ही शुरू करके नीचे की तरफ बढ़ाया जाए। जहाँ तक वैज्ञानिकों का प्रश्न है तो यह उन्हें मालुम होना चहिए कि जो भी वे शोध-कार्य कर रहे हैं यदि उसकी जानकारी एक सरल माध्यम (हिन्दी) से जन समूह तक नहीं पहुँच पाती तो उनका सारा कार्य निरर्थक है।

□□

द्वितीय खण्ड

वैज्ञानिक पुस्तक साहित्य

रेडियो के लिए विज्ञान लेखन

रमेश दत्त शर्मा

हमारे संचार माध्यमों में रेडियो की पहुँच सबसे अधिक है। ट्रांजिस्टर के आविष्कार के बाद रेडियो सैट बनाने की विद्या में लोगों ने इतनी निपुणता प्राप्त कर ली कि यह एक तरह से कुटीर उद्योग बन गया है। दिल्ली में लाल किले के सामने लाजपतराय मार्किट में एक हज़ार से ऊपर दुकानों में स्थानीय रूप से बनाये गये लाखों रेडियो-ट्रांजिस्टर बिक रहे हैं।

भारत में रेडियो प्रसारण की नींव 27 मार्च 1925 को एक सरकारी विज्ञप्ति ने डाली थी। इस विज्ञप्ति में सूचना दी गयी थी कि सरकार भारत में बनाये जा रहे रेडियो प्रसारण केन्द्रों से निजी उद्यमियों को रेडियो-प्रसारण के लिये लाइसेन्स देगी। इस तरह सन् 1926 में बम्बई और कलकत्ता में "इण्डियन ब्रौडकास्टिग कम्पनी" नामक एक निजी फर्म ने रेडियो स्टेशन बनाये। पहला रेडियो-प्रसारण 23 जुलाई 1926 को बम्बई से किया गया। कलकत्ता केन्द्र से पहला प्रसारण 26 अगस्त 1926 को किया गया। अब तो हमारे देश में 86 रेडियो स्टेशन और 160 ट्रान्समिटर 35 भाषाओं और 137 बोलियों में प्रतिदिन 1045 घण्टे के कार्य क्रम प्रसारित करते हैं। अभी 89 प्रतिशत के लगभग आबादी रेडियो की जद में आई है और देश का 79 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र रेडियो प्रसारणों के घेरे में आया है। सातवीं योजना के अन्त तक दूरदर्शन से 88 प्रतिशत और आकाशवाणी से 90 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुँचने का लक्ष्य है।

विज्ञान-प्रसारण

बहुत दिन तक रेडियो से विज्ञान सम्बन्धी प्रसारण यदा-कदा ही होते रहे। हिन्दी वार्ता विभाग ही विज्ञान-वार्ताएँ भी प्रसारित करता था। पिछले कोई दस वर्षों में ही प्रमुख रेडियो केन्द्रों पर अलग से विज्ञान-एकांश बनाये गये, जिनमें विज्ञान अधिकारी के साथ ही विज्ञान की रिपोर्टिंग के लिए सहायक सम्पादक रखे जाने लगे।

इस समय दिल्ली के रेडियो स्टेशन का विज्ञान एकांश हर महीने 70 के लगभग विज्ञान कार्यक्रम प्रसारित करता है। हर बुधवार, सोमवार और शुक्रवार को विज्ञान चर्चा का कार्यक्रम सुबह 6.45 पर दिल्ली "ए" से प्रसारित किया जाता है। पाँच मिनट के इस कार्यक्रम में रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़े वैज्ञानिक उपकरणों के बारे में और अन्य वैज्ञानिक बातों के बारे में रोचक वार्ताएँ प्रसारित की जाती हैं। युवाओं के लिये दिल्ली "डी" से हर रोज सुबह 8 बजकर 10 मिनट पर पाँच मिनट का "विज्ञान विविधा" कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। इसमें विविध क्षेत्रों में किये जा रहे नये-नये वैज्ञानिक अनुसन्धानों को सरल शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। "विज्ञान विभा" के नाम से युवाओं के लिए दिल्ली "डी" से शाम 7-10 पर एक पाक्षिक कार्यक्रम भी प्रसारित किया जाता है, जो विज्ञान पत्रिका है और इसमें प्राय: विविध क्षेत्रों के वैज्ञानिकों से ली गयी भेंट वार्ताएँ प्रसारित की जाती हैं।

बच्चों के लिये हर मंगलवार को शाम पाँच मिनट पर दिल्ली "ए" से "ज्ञान विज्ञान" कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। महिलाओं के लिये हर हफ्ते दो कार्यक्रम हैं। दिन में 2-30 बजे महिलाओं के कार्यक्रम में दिल्ली "ए" से ग्रामीण महिलाओं के लिए "घर विज्ञान" और इसी समय बृहस्पतिवार को शहरी महिलाओं के लिये "घर विज्ञान"। बच्चों के कार्यक्रम में बच्चों के आसपास की बातों पर वैज्ञानिक जानकारी दी जाती है। फूलों, तितलियों, चाँद-सितारों आदि के बारे में चटपटी वार्ताएँ बच्चों का मनोरंजन भी करती हैं और ज्ञानवर्धन भी। महिलाओं के लिये प्रसारित की जा रही विज्ञान वार्ताओं में रसोई के उपकरणों, स्त्री रोगों, सौन्दर्य-प्रसाधनों और घरेलू उपकरणों आदि के बारे में बातचीत और गपशप के अन्दाज में बताया जाता है।

विज्ञान-तरंगिणी

इस समय (जनवरी 1987) दिल्ली के विज्ञान एकांश का कार्य डॉ० नीलिमा हरजाल में सँभाल रखा है। वे वनस्पति विज्ञान में डॉक्टरेट कर चुकी हैं। कुछ समय तक वनस्पति विज्ञान की प्राध्यापिका भी रहीं। लेकिन शुरू से ही वाद-विवाद और विज्ञान-लेखन में रुचि उन्हें अन्ततः आकाशवाणी के गलियारों में खींच लाई है। स्वयं अपना स्वर प्रदान करके अनेक विज्ञान कार्यक्रमों में नीलिमा जी ने प्राण फूंके हैं। पिछले वर्ष 1986 में उन्होंने "विज्ञान तरंगिणी" नाम से लगभग 24 मिनट का एक बिलकुल नया कार्यक्रम शुरू किया है। इस कार्यक्रम में फिल्मी तरानों को वैज्ञानिक वार्ताओं के बीच गूँथकर उस

श्रोता-वर्ग को विज्ञान की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया गया है, जो रेडियो पर फिल्मी गानों के सिवा कुछ सुनना ही नहीं चाहता। 9 अप्रैल 1986 से हर बुधवार को दिल्ली "ए" से रात 8 बजकर 6 मिनट पर यह कार्यक्रम प्रसारित होना शुरू हुआ। हर महीने श्रोताओं से प्राप्त सैकड़ों चिट्ठयों से पता चलता है कि यह कार्यक्रम दिनोंदिन अधिकाधिक लोकप्रियता प्राप्त करता जा रहा है। अभी तक इस कार्यक्रम में "गुलाब" और "चाय" से लेकर मलेरिया और मानसून तक, हिरोशिमा से लेकर नाभिकीय चिकित्सा तक विविध विषयों पर मनोरम वार्ताएँ प्रसारित की गई हैं। वैदिक गणित पर स्वामी डॉ० सत्यप्रकाशानन्द की वार्ता बहुत प्रसन्द की गई। पूसा इन्स्टीट्यूट, राष्ट्रीय भू-भौतिकी अनुसन्धानशाला और आई० आई० टी० जैसे वैज्ञानिक संस्थानों पर और डॉ० आत्माराम, डॉ० होमी भाभा तथा डॉ० चन्द्रशेखर जैसे वैज्ञानिकों के योगदान पर इस कार्यक्रम में प्रकाश डाला गया। एशिया की सबसे बड़ी पाइप लाइन हो या साँप पालने वाले सँपेरे हों, सब इस कार्यक्रम के घेरे में आ चुके हैं। जरा सोचिए कि "नागिन" फिल्म के गानों के साथ साँपों की वैज्ञानिक जानकारी कितनी मजेदार रही होगी। कम्प्यूटर, पर तीन वार्ताएँ चुनी गई—महानगर टेलीफोन निगम में कम्प्यूटर, अपराध विज्ञान में कम्प्यूटर और अस्पतालों में कम्प्यूटर। बाढ़ नियन्त्रण, पीने का पानी, बरसात की बीमारियाँ जैसे आम आदमी से जुड़े विषय भी "विज्ञान तरंगिणी" के लिए चुने गये। बायोटैक्नोलोजी, "आनुवंशिक इंजीनियरी", "भ्रूण-प्रत्यारोपण" "लेसर-चिकित्सा", "ठोस अवस्था भौतिकी" जैसे गूढ़ विषयों को भी विज्ञान तरंगिणी में परोसा गया। इस कार्यक्रम की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि अनेक श्रोताओं ने पत्र लिखकर यह माँग की कि "विज्ञान तरंगिणी" में केवल विचार-वार्ताएँ सुनवाई जायें और बीच-बीच में फिल्मी गीतों का छोंक लगाना बन्द कर दिया जाय। एक भी चिट्ठी ऐसी नहीं आई, जिसमें यह सुझाव दिया गया हो कि दिल को गुदगुदाते फिल्मी गीतों के बीच में विज्ञान का बेसुरा राग बन्दकर दिया जाय। इससे साबित होता है कि कोशिश की जाय तो विज्ञान को फिल्मी गीतों और ग़ज़लों जैसा ही रोचक और मनपसन्द बनाकर प्रस्तुत किया जा सकता है।

अच्छे विज्ञान कार्यक्रम की शर्तें

रेडियों पर किसी भी अच्छे विज्ञान कार्यक्रम के प्रस्तुतीकरण की पहली शर्त यह है कि आपके और श्रोता के बीच कोई दीवार नहीं रहनी चाहिए। आपकी बात श्रोता के दिल में तभी उतरेगी जब वह उसके काम की हो, उसकी जानकारी बढ़ाती हो और उसकी जिज्ञासा शान्त करती हो। श्रोता आपके सामने नहीं है। वह अदृश्य है। उस तक सिर्फ आपकी आवाज पहुँच रही है। घर, चौपाल या दुकान में जहाँ भी वह आपको सुन रहा है, वहाँ वह दूसरी तमाम आवाजों से घिरा है। उन सब आवाजों को चीरती हुई आपकी आवाज नई बात बता रही है, उसके मन में उथल-पुथल मचा रही है, उसे अनन्त आकाश

की ऊँचाइयों और अगम सागर की गहराइयों में ले जा रही है, उसके मन में उठते प्रश्नों से जूझ रही है, तो वह आपके विज्ञान कार्यक्रमों को अनसुना नहीं कर सकता।

जाहिर है कि ऐसे कार्यक्रम बोलचाल की भाषा में लिखे और पढ़े गये होंगे। लिखने की भाषा में एक क्रमबद्धता होती है। बोलते समय ज़रूरी नहीं कि व्याकरण के नियमों के अनुसार शुद्ध वाक्य रचना ही मुँह से निकले। इसलिए विज्ञान वार्ता की पाण्डुलिपि बनाते समय "बोलने की" भाषा लिखिये, "लिखने की" नहीं। अगर आप स्वयं वार्ता को स्वर भी दे रहे हैं तो मेहरबानी करके उसे पढ़िये मत, उसे बोलिए। बातचीत और गपशप के अन्दाज़ में। बतकही का एक अलग ही रस होता है, जो आपकी विज्ञान वार्ता में नहीं हुआ तो उसे सुनेगा कौन ?

फिर श्रोता-वर्ग का भी ध्यान रखना है। बच्चों का वर्ग हैं तो भारी-भरकम शब्द, लम्बे-लम्बे वाक्य, संयुक्ताक्षर वाले शब्द इन सबसे बचना होगा। महिलाओं के कार्यक्रम में ज़रूरी नहीं कि "अजी सुनती हो" का अन्दाज रखें, फिर भी बोझिल आँकड़ेबाजी से बचना होगा। परिवार नियोजन की वार्ता में आधे समय आप जनसंख्या और जन्म दर के आँकड़े गिनाने में लगे रहें तो असली समस्या का घूँघट कब उठायेंगे ?

इस तरह युवाओं के लिए सम्बोधित कार्यक्रमों में उनकी आकांक्षाओं और सपनों के अनुरूप विज्ञान की नयी-नयी दिशाओं का बोध कराने वाली जानकारी इस तरह देनी होगी कि जो अपनी कक्षाओं में विज्ञान नहीं पढ़ते, वे भी विज्ञान में रुचि लें।

भारतीय श्रोता वर्ग को विज्ञान की बातें बताते समय एक बात का खास ख्याल रखना होगा कि आपकी वार्ता किसी भी अन्धविश्वास का समर्थन न करे। अन्धविश्वासों ने आज भी हमारे समाज को बुरी तरह जकड़ रखा है और इन बेड़ियों से मुक्त करके भारतीय जनता में वैज्ञानिक चेतना जगाना विज्ञान प्रसारणों का प्रमुख लक्ष्य है।

इसके लिए आपको सही वैज्ञानिक जानकारी जुटानी होगी। विज्ञान की पुस्तकें, विज्ञान की पत्रिकाएँ और अखबारों में से विज्ञान की कतरने लेने के अलावा वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में जाकर वैज्ञानिकों से मिलना बहुत ज़रूरी है। जिस तेज़ी से आज वैज्ञानिक ज्ञान का विकास हो रहा है, उसकी रफ्तार के साथ अपने ज्ञान को अद्यतन रखना तो असम्भव है। इसलिए बजाय इसके कि आप अन्तरिक्ष में भी छलांग लगायें और सागर विज्ञान में भी डुबकी लगाना चाहें, अच्छा हो कि किसी एक विषय को चुनें। अगर आप गणित और भौतिकी के छात्र रहे हैं, तो इनसे जुड़ी वैज्ञानिक शाखाओं तक ही स्वयं को सीमित रखें। इसी तरह यदि जीव विज्ञान के छात्र रहे है, तो कृषि, चिकित्सा और स्वास्थ्य, पेड़-पौधे और जीव-जन्तुओं की दुनिया से बाहर कम ही झाकिए। इसका मतलब यह नहीं कि जो विज्ञान की शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये, उनके लिए रेडियो की विज्ञान पत्रिकारिता के रास्ते बन्द हैं। असल में जानने की भूख हो तो पुस्तकालयों और जानकारों

के सत्संग से आप किसी भी विषय की गहराइयों में उतर सकते हैं। दूसरों को बताने से अपने वैज्ञानिक तथ्यों को अच्छी तरह ठोंक बजाकर देख लें। जहाँ शंका हो, उस बात को या तो किसी वैज्ञानिक से मिलकर साफ कर लें, नहीं तो छोड़ दें। हमारे गुरु जी कहा कहते थे—"वैन इन डाउट, लीव इट आउट।"

वैज्ञानिक वार्ताओं में जानकारी भरने के साथ ही उन्हें रोचक बनाना भी ज़रूरी है। अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों के पीछे बड़ी रोचक कहानियाँ रही हैं। उनका फायदा उठाइये। बहुत से वैज्ञानिक तथ्य अपने आप में बड़े रोचक होते हैं, उनका इस्तेमाल करिये। लेकिन लच्छेदार शैली और मुहावरेदार भाषा के चक्कर में तथ्यों की बलि कभी न दें।

पिछले दिनों सन् 1986 के 'कलिंग पुरस्कार' विजेता विज्ञान लेखकों से भेंट हुई। रूस के डॉ० निकोलाइ बोसोव "ज्ञानी" नामक रूसी संगठन के अध्यक्ष हैं। रूसी भाषा में "ज्ञानी" का अर्थ है ज्ञान। यह संगठन दस हज़ार वैज्ञानिकों की मदद से विज्ञान के प्रसार में लगा है। डॉ० बोसोव 'नोबल पुरस्कार' से सम्मानित परमाणु वैज्ञानिक हैं। दूसरे विज्ञान लेखक कनाडा के डेविड सुजुकी कहते हैं, जो वहाँ के दूरदर्शन पर विज्ञान कार्यक्रम करते हैं। लेकिन सुजुकी कहते हैं कि विज्ञान कार्यक्रम अन्य मनोरंजक कार्यक्रमों के बीच खो जाते हैं। उनका यह भी कहना था कि विज्ञान के पास आदमी की हर समस्या का जवाब नहीं है। विज्ञान न तो कोई जादू की छड़ी है और न अलादीन का जदुई चिराग़। विज्ञान सत्य की खोज करता है और हर बात को प्रयोग की कसौटी पर परखकर ही अंगीकार करता है। हमारी विज्ञान वार्ताएँ भी उन राहों को उजाले में लाने के लिए हैं, जिन पर से भटककर सदियों से मानव अँधियारी अंधी गलियों में फँसता-कलपता रहा है।

□□

हिन्दी में वैज्ञानिक पत्रिकायें

श्यामसुन्दर शर्मा तथा तुरशनपाल पाठक

विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में भारत का अतीत गौरवपूर्ण रहा है। भारतीय वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों का बौद्धिक स्तर आज भी किसी से कम नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के 41 वर्षों में, हमने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आशातीत प्रगति की है। आज भारत में वैज्ञानिक और तकनीकी कर्मियों की संख्या विश्व में, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के बाद, सबसे अधिक है। हम भी शांतिपूर्ण उपयोगों के लिए नाभिकीय विस्फोट कर चुके हैं, अंतरिक्ष में राकेट और यान भेज चुके हैं। सागर से तेल निकाल रहे हैं, अंटार्कटिक महाद्वीप को अनेक अभियान भेज चुके हैं और गहरे सागर में डुबकी लगाकर बहुधात्विक पिंड निकाल चुके हैं।

इसके बावजूद भी जन साधारण ही नहीं वरन् अधिकांश शिक्षित व्यक्ति भी यह सोचते हैं कि अन्य देशों, विशेष रूप से विकसित देशों की तुलना में, हम विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में पिछड़ते जा रहे हैं। इस प्रकार से सोचने के अनेक कारणों में से कदाचित् एक प्रमुख कारण यह है कि जन साधारण को अब भी अपनी मातृभाषा में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव प्रतीत होता है। उसे यह साहित्य आमतौर से अंग्रेजी में और अधिकांश बार विदेशी लेखकों द्वारा ही तैयार किया हुआ मिलता है। विडंबना यह है कि देश में आधुनिक वैज्ञानिक साहित्य का सृजन पिछले डेढ़ सौ से भी अधिक वर्षों से हो रहा है। समझा जाता है कि भारतीय भाषा की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका का श्रेय, बंगला की "पश्चावली" को है जिसका प्रकाशन 1821 में आरंभ हुआ था। हिन्दी में वैज्ञानिक पत्रिकाओं का श्रीगणेश, 1913 में "आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका" के प्रकाशन से माना

जाता है। उसके दो वर्ष बाद इलाहाबाद से "विज्ञान" का आरंभ हुआ। हर्ष का विषय है कि ये दोनों पत्रिकायें,, (आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका और विज्ञान) आज भी प्रकाशित हो रही हैं। वैसे यहाँ यह बताना प्रासंगिक होगा कि भारत की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका होने का श्रेय अंग्रेजी की "एशियाटिक रिसर्चेज" को जाता है जिसका प्रकाशन रायल एशियाटिक सोसायटी ने 1788 में आरंभ किया था। जब भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन आरंभ हुआ उस समय तक यूरोपीय भाषाओं में विज्ञान लेखन की एक सुदृढ़ परम्परा विकसित हो चुकी थी।

हमारे देश में, विशेष रूप से हिन्दी में, वैज्ञानिक पत्रिकाओं का प्रकाशन अपेक्षाकृत देर से आरंभ होने का एक कारण था वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों में अनुभवों को लिपिबद्ध करने की परम्परा का अभाव। हमारे शिल्पी व्यावहारिक ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित तो करते रहे, लेकिन उन्हें लिपिबद्ध नहीं करते थे। इसकी यह वजह थी कि शिल्पी अशिक्षित होते थे, शिल्पज्ञान-सम्पन्नता को समाज में वरेण्य स्थान नहीं दिया जाता था और लेखन-समर्थ वर्ग ने उनके निकट जाने की आवश्यकता अनुभव नहीं की।

हमारे वैज्ञानिक, चिकित्सक, इंजीनियर,, विदेशी भाषा में शिक्षित होते हैं और प्रायः लेखन-क्षमताविहीन भी होते हैं। तकनीशियन और मैकेनिक आदि प्रायः अर्द्ध शिक्षित होते हैं और किसान या माली अल्प शिक्षित या अशिक्षित। शिक्षा की वर्तमान प्रणाली ने श्रम की प्रतिष्ठा को नष्ट करके सफेदपोशी को प्राथमिकता दी हैं।

तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर 1983 में वैंज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् द्वारा प्रकाशित "हिन्दी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रकाशन निदेशिका: 1966-1980" के अनुसार हिन्दी वैज्ञानिक प्रत्रिकाओं का विषयवार विवरण इस प्रकार हैं :

1. सामान्य विज्ञान—20

   (जिनमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विभिन्न शाखाओं से सम्बद्ध सामग्री प्रकाशित होती है)

2. चिकित्सा और स्वास्थ्य—150

   (इनमें औषधि तथा स्वास्थ्य आदि विषयक पत्रिकायें भी शामिल हैं)

3. कृषि और पशुपालन—100

   (उद्यान विज्ञान और वानिकी की पत्रिकाओं सहित)

4. इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी—20

5. अंतरिक्ष विज्ञान—3

6. भौतिकी—4
   (परमाणु ऊर्जा सहित)
7. रसायनशास्त्र—2
8. भूगर्भ विज्ञान और भूगोल—6
   (खनिज विज्ञान पत्रिकाओं सहित)
9. प्राणि विज्ञान—5
10. वनस्पति विज्ञान—2
11. विविध—10

उक्त पत्रिकाओं में से कुछ में हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी सामग्री प्रकाशित होती है। कुछ पत्रिकाओं में हिन्दी, अंग्रेजी और किसी अन्य भारतीय भाषा में भी सामग्री होती है। इनमें से शोध पत्रिकाओं की श्रेणी में शामिल होने का श्रेय वास्तविक रूप से केवल एक ही पत्रिका "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" को हैं।*

वैज्ञानिक पत्रिकाओं को भी उन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिनका अन्य (हन्दी) पत्रिकायें सामना करती हैं। अन्य पत्रिकाओं की भांति उनमें से अधिकांश का जन्म स्वतंत्रता के बाद हुआ था और उन्हें भी कागज और मुद्रण के निरंतर बढ़ते हुये मूल्यों को वहन करना पड़ता है, विज्ञापनों के लिए दर-दर की खाक छाननी पड़ती है और ग्राहकों की गिरती क्रय-क्षमता का सामना करना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त वैज्ञानिक पत्रिकाओं की कुछ अपनी विशिष्ट समस्यायें हैं। इनमें कदाचित् सर्वोपरि स्थान है प्रकाशन हेतु समुचित स्तर की सामग्री की उपलब्धि। आज भी देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी के ही माध्यम दी जाती है। चिकित्साविज्ञान और इंजीनियरी जैसे विषयों में तो हिन्दी की पुस्तकें ही उपलब्ध नहीं है। अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपने अनुसंधान निष्कर्षों को अंग्रेजी में ही लिखते और प्रकाशित कराते हैं। वास्तव में हिन्दी से, चाहे वह उनकी मातृभाषा ही हो, उनका सम्पर्क क्षीण पड़ता जाता है। ये लोग हिन्दी में लिखना पसन्द ही नहीं करते।

यदि कोई वैज्ञानिक हिन्दी में लिखना भी चाहता है तो उसके सामने एक कठिनाई आती है और कदाचित् यह कठिनाई बहुत वास्तविक और गंभीर है। यह है समुचित शब्दावली का अभाव। शब्दावली का अभाव एक पुरानी समस्या हैं। कहा जाता है कि

*अब रसायन समीक्षा, कृषिचयनिका तथा दि इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स (हिन्दी खण्ड) भी शोध सामग्री प्रकाशित करती है।

इस कठिनाई को सत्रहवीं शताब्दी में ही महसूस कर लिया गया था और शिवाजी के शासन काल में ही इसे करने के समयोचित उपाय सुझाये गये थे। इस अभाव की पूर्ति के लिए आजादी से पहले ही कतिपय व्यक्तियों और संस्थाओं ने प्रयास आरंभ कर दिये थे। आजादी के बाद प्रो० रघुबीर तथा वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग ने उल्लेखनीय कार्य किये हैं।

हिन्दी वैज्ञानिक पत्रिकाओं को एक अन्य कठिनाई का सामना करना पड़ता है और यह बात शायद हर भारतीय भाषा की वैज्ञानिक पत्रिका की कठिनाई है। वह है ऐसे विषय विशेषज्ञों की कमी जो अपनी मातृभाषा में अपने विषय की जानकारी जन साधारण को दे सकें-लोकप्रिय विज्ञान लेखन कर सकें।

लोकप्रिय विज्ञान लेखन का कार्य, अनेक बार ऐसे लोग करते हैं जिन्हें केवल भाषा का ही ज्ञान होता है। विषयवस्तु की जानकारी न होने से वे किसी विदेशी भाषा (अधिकांशतः अंग्रेजी) में प्रकाशित किसी लेख का, अनुवाद या रूपांतरण भर कर देते हैं। यद्यपि वे वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की शब्दावली का उपयोग करते हैं पर विषय का ज्ञान न होने से मात्र शब्दकोश और शब्दावली का सहारा लेकर किया गया अनुवाद रूपांतरण जैसा होता है, उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

कुछ लोग हिन्दी वैज्ञानिक पत्रिकाओं में इसलिये भी प्रकातन हेतु सामग्री नहीं भेजते कि इनका वितरण एक सीमित वर्ग में ही होता है। लेखकों को यह आशंका होती है कि उनकी रचनाओं को बहुत कम व्यक्ति ही पढ़ पायेंगे। और कुछ हद तक यह बात सही भी है क्योंकि वैज्ञानिक विषयों को रोचक आकर्षक शैली में लिखना उतना आसान नहीं है जितना गल्प को। इस संबंध में, यदि इसे आत्म प्रशंसा न समझा जाये तो वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की लोक वैज्ञानिक मासिक "विज्ञान प्रगति" अपवाद है। उसकी एक लाख प्रतियाँ प्रति माह से अधिक की प्रसार संख्या यह दर्शाती है कि यह पत्रिका जनसाधारण में बेहद लोकप्रिय है।

इन पत्रिकाओं को आकर्षक बनाने तथा उनमें प्रकाशित विषयवस्तु को भलीभांति समझने के लिये चित्रों और रेखाचित्रों को उपलब्ध करना इतना आसान नहीं है जितना कि अन्य पत्रिकाओं को चित्रित करने के लिये चित्रों को। अनेक बार लेखों में ऐसे चित्रों का समावेश आवश्यक होता है जिन्हें केवल महँगे प्रेस ही छाप पाते हैं।

हिन्दी या किसी भी अन्य भारतीय भाषा की वैज्ञानिक पत्रिकाओं की वर्तमान स्थिति के बावजूद उनका भविष्य बहुत उज्जवल है। देश में शिक्षितों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। साथ ही हमारी जनता, ग्रामीण जनता भी, देश की समस्याओं और अपने आसपास की परिस्थितियों के प्रति अधिकाधिक जागरूक होती जा रही है। इसलिए उसे पठन-पाठन के लिए निरंतर बढ़ती हुई मात्रा में ऐसी सामग्री चाहिए जिससे

वह अपने पर्यावरण को सुधार सके, अपने रहन-सहन की परिस्थितियों को अधिक स्वास्थ्य-वर्द्धक बना सके, अपने भविष्य को संवार सके तथा औद्योगिक क्षेत्र में भी विकसित देशों के नागरिकों के समान प्रगति कर सके। लोक वैज्ञानिक पत्रिकायें इस बारे में जनसाधारण की बहुत मदद कर सकती हैं।

हर आदमी स्वभावतः अपनी मातृभाषा में पठन-पाठन करना चाहता है पर उसे हमेशा उस भाषा में यथोचित सामग्री, आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाती तब वह उस भाषा की ओर अग्रसर होता हैं जिसमें उसे वांछित सामग्री आसानी से मिल जाती है। अगर हिन्दी में ही पाठक को "न्यू साइंटिस्ट", "डिस्कवर", "साइंटिफकि अमेरिकन" जैसी उच्च स्तरीय पत्रिकायें मिल जायें तो वह उक्त पत्रिकाओं को पढ़ने के लिये उतना लालायित न रहेगा जितना अब है। हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि निकट भविष्य में हिन्दी में भी ऐसी वैज्ञानिक पत्रिकायें प्रकाशित होने लगेंगी।

□□

हिन्दी विज्ञान पत्रिकाएँ अलोकप्रिय क्यों ?

सुभाष लखेड़ा

लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं का मूल उद्देश्य समाज में वैज्ञानिक प्रवृति या मनोवृति को अंकुरित करना एवं तत्पश्चात उसको विकसित करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह नितांत आवश्यक है कि इन पत्रिकाओं के संपादकीय विभाग अपने दायित्व को गंभीरता से निभाने में सक्षम हों ताकि वे निष्ठा के साथ योजनाबद्ध तरीकों से विज्ञान एवं तकनीकी विकास के विभिन्न आयामों से सम्बन्धित उपलब्ध नवीनतम उपयोगी सामग्री को सरल, सरस एवं सहजता से समझ में आने वाली भाषा में अपने सामान्य पाठकों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी को उचित ढँग से निभा सकें।

बहरहाल, जहाँ तक हिन्दी की लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं का प्रश्न है, स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद ही हमारे शीर्षस्थ नेताओं ने सिद्धान्त रूप में यह स्वीकार कर लिया था कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी लेखन के लिए हिन्दी एक सशक्त माध्यम है और देश में वैज्ञानिक वातावरण तैयार करने में हिन्दी विज्ञान पत्रिकाएँ महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। फलस्वरूप, उन सभी सरकारी विभागों से जो प्रत्यक्ष रूप से विज्ञान सम्बन्धी कार्यों से जुड़े हुए हैं, हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाएँ प्रकाशित करने को कहा गया।

आजादी के 41 वर्ष बाद आज यह प्रश्न उठाना अत्यावश्य है कि आखिर हिन्दी में कितनी ऐसी पत्रिकाएँ छप रही हैं जिन्हें वास्तव में लोकप्रिय विज्ञान की स्तरीय पत्रिका का दर्जा दिया जा सकता है ? इतना ही नहीं, आत्म निरीक्षण की दृष्टि से यह पूछना भी गलत नहीं होगा कि हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान की जो पत्रिकाएँ छप रही हैं, वे समाज में वैज्ञानिक वातावरण बनाने में कहाँ तक सफल हो पाई हैं ?

दरअसल, सच तो यह है कि इन दोनों प्रश्नों का उत्तर एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। किसी भी समाज की वैज्ञानिक चेतना का स्तर मापने के लिए उस समाज के लिए प्रकाशित की जाने वाली लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं की संख्या एवं प्रसार संख्या को ज्ञात करके किया जा सकता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं की संख्या कम तो है ही, उनकी प्रसार संख्या भी विश्व के विकसित देशों में प्रकाशित होने वाली लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं की तुलना में अत्यधिक कम है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी में ऐसी विज्ञान पत्रिकाओं की संख्या अत्यल्प हैं जिन्हें उच्च स्तरीय कहा जा सके और जो थोड़ी बहुत पत्रिकाएँ विज्ञान के नाम पर छप रही हैं उनकी प्रसार संख्या बहुत ही सीमित है। जहाँ तक इन पत्रिकाओं की लोकप्रियता का सवाल है, उसका अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि दो-तीन दशकों या उससे भी पहले से प्रकाशित होने वाली इन पत्रिकाओं के नामों तक से हमारे हिन्दी भाषी सामाज का एक बहुत बड़ा शिक्षित वर्ग आज तक भी अनभिज्ञ है।

यद्यपि गुलाबी आँकड़ों से सरकारी फाइलों का पेट भरने वालों के अनुसार आज देश में हिन्दी में 300 से भी अधिक लोकोपयोगी विज्ञान पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं किन्तु वास्तविक रूप में हिन्दी में नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली स्तरीय विज्ञान पत्रिकाओं की संख्या 10 के आसपास है। दुर्भाग्यवश इनमें से जिन एक दो पत्रिकाओं की प्रसार संख्या अधिक है वे उच्चस्तरीय नहीं कही जा सकती हैं और जो पत्रिकाएँ उच्च-स्तरीय कही जा सकती हैं, उनकी प्रसार संख्या मात्र हजारों में है। इतना ही नहीं, इन लोकापयोगी विज्ञान पत्रिकाओं की प्रसार संख्या की तुलना अन्य विषयों को लेकर छपने वाली पत्रिकाओं की प्रसार संख्या से करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि हमारा समाज आज भी विज्ञान से कोसों दूर है। वह विज्ञान पत्रिकाओं के बजाय फिल्म, राजनीति और यहाँ तक की जादू-टोना, भूत-प्रेत संबंधी सामग्री को छापने वाली पत्रिकाओं में कहीं अधिक रुचि रखता है। निश्चित ही 21वीं सदी के प्रवेश द्वार पर खड़े समाज के लिए यह स्थिति आत्मघाती साबित हो सकती है।

उपरोक्त दुखद स्थिति के लिए कुछ हद तक हमारे यहाँ प्रकाशित होने वाली तथाकथित लोकोपयोगी अथवा लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं को भी दोष दिया जा सकता है। कोई भी विज्ञान पत्रिका तभी लोकप्रिय होकर अपने दायित्वों का भली प्रकार से निर्वाह कर सकती है जब वह अपने पाठकों को जीवव में विज्ञान को प्रयोगात्मक रूप से उपयोग में लाने की प्रेरणा देने में समर्थ हो। ऐसी स्थिति में इन विज्ञान पत्रिकाओं के लक्ष्य को केवल विज्ञान तथा तकनीकी विकास के विभिन्न आयामों से जनसाधारण को परिचित कराने तक ही सीमित नहीं रखा जाना चाहिए अपितु जनसाधारण को अपने आर्थिक एवं सर्वांगीण विकास के लिए विज्ञान एवं तकनीकी उपलब्धियों का सही उपयोग करने की दिशा देने से भी जोड़ा जाना चाहिए।

उपरोक्त संदर्भ में यदि हिन्दी विज्ञान पत्रिकाओं का अवलोकन करें तो पता चलता है कि इनमें छपी अधिकतर सामग्री हमारे समाज के लिए अनुपयोगी होती है। मंगल पर खेती, चाँद पर बस्तियाँ, अंतरिक्ष युद्ध की तैयारी एवं "एड्स-कारण एवं निवारण" जैसे शीर्षकों के अंतर्गत छपी विज्ञान सामग्री में उस एक औसत भारतीय नागरिक को भला क्या रुचि हो सकती है जो आज भी आकाश की ओर सिर्फ इसलिए देखता है कि कहीं बादल का कोई एक टुकड़ा नजर तो आ जाए और जो मलेरिया, यक्ष्मा एवं कुष्ठ रोग के कारण एवं निवारण जानने के लिए कब से बेचैन है ? कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हमारी यह विज्ञान पत्रिकाएँ तभी लोकप्रिय हो सकती हैं जब ये सामान्य लोगों के सामने खड़ी समस्याओं का समाधान करने में सहायक साबित होने लगेंगी।

जहाँ तक इन पत्रिकाओं के प्रकाशन का प्रश्न है, हमारे यहाँ अधिकांश लोकोपयोगी विज्ञान पत्रिकाएँ सरकारी विभागों, उपक्रमों या निगमों द्वारा छापी जाती हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि वैज्ञानिक मनोवृत्ति अथवा चेतना के अभाव की वजह से अपने यहाँ वैज्ञानिक पत्रिकाओं का प्रकाशन अभी भी एक घाटे का सौदा है फलस्वरूप, गैर सरकारी क्षेत्र इस कार्य में सदैव से हाथ डालने से कतराता रहा है।

सरकारी क्षेत्रों द्वारा प्रकाशित की जाने वाली इन विज्ञान पत्रिकाओं के साथ सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि इनके संपादकों को पत्रिका के लिए सामग्री जुटाने के अलावा और कोई अधिकार नहीं दिया गया है। पत्रिका के लिए कागज तक प्राप्त करने के लिए उन्हें दूसरे समकक्ष अधिकारियों की कृपा दृष्टि पर निर्भर रहना पड़ता है। पत्रिका के छपवाने एवं उसे बेचने के लिए भी उन्हें दूसरे अधिकारियों का सहारा लेना पड़ता है। जिन लेखकों को वे अपनी पत्रिका में लिखने के लिए आमंत्रित करते हैं, उन्हें मानदेय या पारिश्रमिक भिजवाने के लिए भी उन्हें किसी दूसरे अनुभाग के अधिकारी से प्रार्थना करनी पड़ती है। इन सब कारणों से संपादक ना तो अपनी पत्रिकाओं का समयवद्ध ढँग से प्रकाशन कर पाते हैं और न ही इन पत्रिकाओं में लिखने के लिए अच्छे लेखकों को प्रेरित कर पाते हैं। इनमें से अधिकांश पत्रिकाओं का प्रकासन इतने विलम्ब से होता है कि जनवरी का अंक जून में जाकर छपता है। बुझे मन से कार्य करने वाले अधिकांश सम्पादक ना तो अपनी पत्रिका के लिए सही ढँग से सामग्री का चयन कर पाते हैं और न ही उसके प्रस्तुतीकरण के ढँग में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन कर पाते हैं। अतः जब तक इन पत्रिकाओं के सम्पादकों को उनके विभागों द्वारा पर्याप्त अधिकार नहीं दिए जाते हैं, तब तक इन पत्रिकाओं के वर्तमान स्तर में किसी तरह के सुधार की आशा करना व्यर्थ है।

जहाँ तक इन पत्रिकाओं में रचनाएँ भेजने वाले लेखकों का प्रश्न है, उनकी वर्तमान स्थिति बहुत ही असंतोषजनक है। यह कतई जरूरी नहीं है कि हिन्दी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेख लिखने वाला प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से इतना सुदृढ़ हो कि वह केवल स्वान्तःसुखाय लेखन कार्य करता हो। हिन्दी विज्ञान लेखकों को जहाँ एक ओर

काफी कम पारिश्रमिक मिलता है वहीं दूसरी ओर वह भी समय पर नहीं मिल पाता है। इतना ही नहीं, हिन्दी विज्ञान लेखन से जुड़े आज के सर्वाधिक चर्चित लेखक मुश्किल से सामान्य जीवन निर्वाह के लिए पैसे जुटा पाते हैं। इनमें से जो विज्ञान लेखक किसी सरकारी विभाग से जुड़े हुए हैं उनके इस कार्य को उनके अपने ही विभागों द्वारा कोई महत्व नहीं दिया जाता है। यही वजह है कि प्रारम्भ में वे जिस उत्साह से इस कार्य को हाथ में लेते हैं वह "न नाम, न दाम" की स्थिति की वजह से धीरे-धीरे ठंडा पड़ जाता है और उन्हें इस कार्य को छोड़ने के लिए विवश कर देता है।

कुल मिलाकर लोकोपयोगी हिन्दी विज्ञान पत्रिकाओं को यदि हम इस स्थिति से उबारना चाहते हैं तो हमें इस सम्बन्ध में ठोस एवं आवश्यक निर्णय तुरन्त ही लेने होंगे। सम्पादकों को पर्याप्त अधिकार, लेखकों को पर्याप्त पारिश्रमिक एवं सम्मान देने के साथ ही हमें इन पत्रिकाओं का विभिन्न माध्यमों से व्यापक प्रचार-प्रसार करना होगा। दर-असल, अपनी वर्तमान अलोकप्रिवता को लोकप्रियता में बदलने के लिए इन विज्ञान पत्रिकाओं के मार्ग में कोई ऐसी बड़ी बाधाएँ नहीं हैं जिन्हें आसानी से न हटाया जा सके। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि इस कार्य से जुड़ें सभी सम्बन्धित पक्ष अपनी-अपनी जिम्मेदारिवों को समझते हुए उन सभी अवरोधों को हटाते चले जाएँ जो 21वीं सदी के दरवाज़े पर खड़े एक बहुत बड़े जनसमुदाय में वैज्ञानिक चेतना विकसित करने के मार्ग में अभी तक बाधक बने हुए हैं।

□□

'वैज्ञानिक' के प्रकाशन में हमारे अनुभव

डॉ० गोविंद प्रसाद कोठियाल

'वैज्ञानिक' हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई, की एक त्रैमासिक पत्रिका है जिसका प्रथम अंक (परिचय अंक) लगभग 20 वर्ष पूर्व 1969 में प्रकाशित हुआ। परिषद् के 1968 में गठन के तुरन्त बाद यह महसूस किया गया कि विज्ञान साहित्य को अधिकांश विज्ञान प्रेमियों तक पहुँचाने का सबसे सुदृढ़ एवं सुगम्य माध्यम देश में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा ही हो सकती है। साथ ही यह उद्देश्य भी सामने आया कि वैज्ञानिक चिन्तन हिन्दी में आरम्भ हो तथा विज्ञान में रुचि रखने वाले लेखकों एवं पाठकों को एक मंच मिले। यह उल्लेखनीय है कि अपने जन्म के समय से अब तक इस पत्रिका का प्रकाशन कई समस्याओं से जूझता हुआ निरंतर चला आ रहा है। पाठकों की प्रतिक्रियाओं एवं पत्रिका की लोकप्रियता के आधार पर आज यह कहा जा सकता है कि हम इस कार्य में काफी हद तक सफल रहे हैं।

प्रकाशन संबंधित पहलुओं की झलक

इस पत्रिका के प्रकाशन के दो मुख्य पहलू रहे हैं—पहला आर्थिक तथा दूसरा उच्च स्तरीय एवं सामयिक लेखों की उपलब्धता। हालांकि पत्रिका के व्यवस्थापन एवं प्रकाशन से संबंधित व्यक्तियों के प्रयास सराहनीय रहे हैं फिर भी इन दोनों पक्षों (आर्थिक एवं लेख) ने पत्रिका प्रकाशन की गति में अवरोध पैदा किये हैं। इस पत्रिका के व्यवस्थापन एवं संपादन मंडल संबंधित अधिकांश लोग इस विभाग के वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं जो पत्रिका के उच्च स्तर को अक्षुण बनाये रखने में विशेष सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

आर्थिक पहलू

जहाँ तक आर्थिक पक्ष का प्रश्न है यह आरम्भ से ही विकट रहा है। इसके अन्तर्गत पत्रिका की, छपाई की लागत, लेखकों के लिये मान देय, डाक खर्च इत्यादि आता है। कुछ समय पूर्व तक इसका स्रोत परिषद् की सदस्यता, 'वैज्ञानिक' की सदस्यता तथा कुछ विज्ञान प्रेमी संस्थाओं द्वारा दिये गए विज्ञापनों से प्राप्त राशि ही रही। यह राशि बहुधा कम ही पड़ती रही। हालांकि समय के साथ-साथ छपाई की लागत में बढ़ोत्तरी होती गई परन्तु सदस्यता शुल्क अपेक्षाकृत कम ही रखा गया जिससे इस पत्रिका को अधिक से अधिक लोग पढ़ सकें। अतः इस बार-बार उठने वाली समस्या के समाधान हेतु एक सुदृढ़ आर्थिक आधार बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस हेतु कुछ कारगर कदम उठाये गये। इनमें विशेषांक प्रकाशन एवं संगोष्ठियों के आयोजन के दौरान स्मारिका प्रकाशन के कार्य प्रमुख हैं। साथ ही विभागीय एवं केन्द्रीय स्रोतों से अनुदान प्राप्त करने के लिये कई प्रयास भी किये गए। अथक प्रयासों एवं पत्रिका की स्तरीयता की प्रतिष्ठा के आधार पर 'वैज्ञानिक' प्रकाशन हेतु अब विभागीय अनुदान (8000 रु० वर्ष 1986, 12000 रु० वर्ष 1987 तथा 15,000 रु० वर्ष 1988) पिछले कुछ वर्षों से मिलने लगा है जो अपने आप में एक उपलब्धि है।

लेखों की उपलब्धता

प्रकाशन हेतु दो श्रेणियों के लेख साधारणतः प्राप्त होते रहे हैं, (i) हिन्दी में लिखे मौलिक लेख तथा (ii) इस विभाग में एवं अन्यत्र कार्यरत अहिन्दी भाषी विशेषज्ञों द्वारा टूटी-फूटी हिंदी अथवा अंग्रेजी में लिखे लेख। प्रथम श्रेणी के लेखों को स्तरीयता एवं सामयिकता के आधार पर स्वीकृत कर लिया जाता है परन्तु दूसरी श्रेणी के लेखों को हिन्दी पाठकों के लिये रूपान्तर करके सुरुचिपूर्ण एवं सरल बनाने में काफी परिश्रम करना होता है। शब्दों का चयन इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता रहा है कि विषय वस्तु पठनीय हो, भाषा सुगम्य रहे तथा विज्ञान के मौलिक शब्दों का क्लिष्ट हिन्दी में अनुवाद करने के पचड़े से बचा जा सके। यह भी एक सुखद अनुभव रहता है क्योंकि इस प्रकार के प्रयासों से उच्च कोटि के ऐसे लेख जो विज्ञान की नवोनतम खोजों से सम्बन्धित हों उन्हें हम हिन्दी पाठकों तक पहुँचाने में सफल हो पाते हैं।

लेखों को प्राप्त करने के लिए हम समय-समय पर देशभर के विभिन्न संस्थानों तथा कॉलिजों/विश्वविद्यालयों में कार्यरत वैज्ञानिक एवं शिक्षाशास्त्रियों से संपर्क करते रहे हैं, जिससे उच्चस्तरीय लेखों की प्राप्ति का सिलसिला सदैव बना रहता है। प्रतिवर्ष अखिल भारतीय स्तर पर वैज्ञानिक लेखों से सम्बन्धित एक प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है। इससे भी कुछ अच्छी किस्म की प्रकाशनीय सामग्री ऐसे लेखकों से मिल जाती जिनके बारे में हमें जानकारी नहीं रहती है। पुरस्कृत लेखों का 'वैज्ञानिक' में प्रकाशन काफी महत्व का है क्योंकि प्रतियोगिता हिन्दी एवं अहिन्दी भाषियों के लिये अलग-अलग

रहती है । फलस्वरूप कुछ अहिन्दी भाषियों से अच्छे किस्म के लेख मिल जाते हैं जिन पर थोड़ा और काम करके हम उन्हें 'वैज्ञानिक' में प्रकाशन योग्य बना देते हैं ।

विशेषांकों की पद्धति एवं महत्व

विषय विशेष पर नवीनतम एवं पूर्ण जानकारी देने के उद्देश्य से हमने 'वैज्ञानिक' के विशेषांकों को प्रकाशित करने की शुरूआत कई वर्षों पूर्व (1972) की । समय-समय पर निकाले गए इन विशेषांकों के प्रकाशन का अनुभव काफी रोचक रहा । विषय का चुनाव, सम्बन्धित विशेषज्ञों से लेख देने के लिए अनुरोध, इत्यादि महत्वपूर्ण पहलू हैं । चूँकि हमारी यह अपेक्षा रहती है कि लेख हिन्दी में लिखे हों अतः विशेषज्ञ साधारणतः ऐसे लेख लिखने में उत्साहित नहीं रहते क्योंकि इसके लिये उन्हें विशेष प्रयत्न करने पड़ते हैं । ऐसे समय में उन्हें प्रेरित करके समय पर लेखों को प्राप्त करना और पुनः उनको ठीक प्रकार से समायोजित करना अपने आपमें एक अनुभव रहता है । साथ ही जब हमें कुछ हिन्दी में लिखे मौलिक, सुन्दर एवं सरल भाषा में लेख प्राप्त होते हैं तो काफी प्रसन्नता होती है । अब तक निकाले गए विशेषांकों की सूची तालिका—1 में दी गई है । इन विशेषांकों की विशेषता यह है कि इनके विषय जनसाधारण के रुचि के होने के साथ-साथ प्रगत विज्ञान एवं तकनीकी की नवीनतम जानकारियों से भरपूर रहते हैं । विशेषांकों के अधिकांश लेखक परमाणु ऊर्जा विभाग से सम्बन्द्ध रहे हैं । यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि ये लेखक अपने-अपने शोध विषय पर हिन्दी में लेख लिखते हैं जिन्हें निसन्देह उच्च स्तर का कहा जा सकता है क्योंकि उन्हीं आँकड़ों को अंतर्राष्ट्रीय शोध ग्रन्थों (जनरल) में प्रकाशित किया जाता है । इस प्रकार नवीनतक शोधों की जानकारी से हिन्दी पाठक लाभान्वित हो पाते हैं ।

'वैज्ञानिक' प्रकाशन की मौलिक आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में, जहाँ तक हिन्दी लेखकों एवं पाठकों को एक मंच प्रदान करने का प्रश्न था वह तो सफल कहा जा सकता है परन्तु 'वैज्ञानिक' चिन्तन हिन्दी में किसी सीमा तक सम्भव हो पा रहा है यह अभी भी एक प्रश्न बना हुआ है । इसका एक कारण यह है कि प्रगत विज्ञान एवं तकनीकी का अध्ययन पहले हम अंग्रेजी में करते हैं फिर उसके रूपान्तरण अथवा अनुवाद को हिन्दी के माध्यम से हिन्दी पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं । इस कारण कभी-कभी तो विषय का मूल भाव ठीक से प्रसारित नहीं हो पाता है । साथ ही संस्कृति एवं मानसिकता पर अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । आज भी अंग्रेजी भाषा में बातचीत/प्रसारण इत्यादि का विशेष महत्व समझा जाता है । इस प्रकार एक ओर हम वर्षों की गुलामी के प्रभाव से ऊपर नहीं उठ पा रहे हैं तो वहीं दूसरी ओर हम देखते हैं कि संसार भर में विज्ञान सम्बन्धित अधिकांश शोध ग्रन्थ (जनरल), पत्रिकायें, रिपोर्ट इत्यादि अंग्रेजी में ही प्रकाशित होते हैं । अतः इन जानकारियों को ग्रहण करने के लिये अंग्रेजी की महत्ता भी स्वतः स्पष्ट है । आज आवश्यकता इस बात की है कि अंग्रेजी

भाषा का ज्ञान प्रगत विज्ञान की जानकारी ग्रहण करने का एक माध्यम समझकर, एक भाषा के तौर पर अर्जित करें जिससे अपनी राष्ट्रभाषा तथा प्रादेशिक भाषाओं के विकास में कोई अवरोध उत्पन्न न हो। प्रयत्न रहे कि तकनीकी साहित्य को प्रसारित करने में वे समर्थ होती चली जायें। 'वैज्ञानिक' के निरन्तर प्रकाशन ने विज्ञान के गूढ़ विषयों को सरल रूप में प्रस्तुत करके हिन्दी की परिपक्वता और क्षमता का परिचय दिया है।

□□

तालिका 1

'वैज्ञानिक' विशेषांकों की सूची

क्रम सं०	विशेषांक का नाम	वर्ष	अंक
1.	खगोल भौतिकी	1972	4(3)
2.	हमारी पृथ्वी और ब्रह्माण्ड	1972	4(4)
3.	टेलीविजन	1973	5(2)
4.	जनहित में विज्ञान	1978	10(3)
5.	भूकम्प विज्ञान	1978	10(4)
6.	पर्यावरण प्रदूषण	1981	13(1/2)
7.	पदार्थ विज्ञान	1981	13(4)
8.	जीव संरचना	1982	14(1)
9.	खगोल विज्ञान	1982	14(3/4)
10.	रेडियो रसायनिकी	1983	15(3/4)
11.	ध्रुव रियेक्टर	1984	16(2/3)
12.	भारतीय विज्ञान की भावी दिशाएँ	1986	18(1/2)
13.	विकिरण सुरक्षा	1986	18(4)
14.	कृषि विशेषांक (भाग—1)	1987	19(2)
15.	कृषि विशेषांक (भाग—2)	1987	19(3)

हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का उद्‌भव और विकास*

मनोज कुमार पटैरिया

विश्व-विज्ञान पत्रकारिता

आदिकालीन वज्ञान साहित्य में वेबिलोनी काल की ईसा पूर्व 4000 की सुमेरी सभ्यता की चित्रलिपि है, जिसमें अंकगणित का समावेश है। ईसा पूर्व 1700 की, मिट्टी पर लिखी गणितीय सारणियाँ हैं। प्राचीन वैज्ञानिक उपलब्धियों के उल्लेख ईसा पूर्व 600-500 के यूनानी अभिलेखों में हैं। ईसा पूर्व पाँचवी सदी में फारस के शाही हकीम डेमो-सीड्स ने यूनानी भाषा में औषधि विज्ञान की पहली पुस्तक लिखी। सिकंदर की मृत्यु के बाद सिकंदरिया में बड़ा पुस्तकालय बना और पुस्तकें लिखीं गई। सिकंदरिया एकेडमी के गणितज्ञ यूक्लिड (ई० पू० 330-260) ने एलीमेंट्स ऑव जियोमेट्री पर 13 भागों में लोकप्रिय पुस्तक लिखी। आर्कमिडीज (ई० पू० 287-212) ने ग्रीक भाषा में गोला और रम्भ, वैज्ञानिक अनुसंधान की पद्धति आदि कृतियाँ लिखीं। ईसा पूर्व 50 में सीरों ने 'न्यूमेटिका' पुस्तक लिखी, जिसमें भाप चालित उपकरण का वर्णन था। ईसा पूर्व 400 में बेरी ने 'आन फार्मिंग' नामक कृषि पुस्तक तथा प्लीनी ने नेचुरल हिस्ट्री पर पुस्तक लिखी। यूनान के बाद अरब में विज्ञान साहित्य का तेजी से विकास हुआ, लैटिन और

---

*'हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता' (लेखक मनोज कुमार पटैरिया) अनुसंधानपरक संदर्भ ग्रंथ अध्याय : 3, पृष्ठ : 13-29 (पाण्डुलिपि प्रकाशनाधीन)।

संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद किए गए । तभी सरगियस ने पदार्थ विज्ञान की यूनानी पुस्तक का अरबी अनुवाद किया । 776 ई० के लगभग जाबिर ने अनेक रसायन ग्रन्थ लिखे । इसी समय मोहम्मद इब्न इब्राहिम अलफजरी ने भारतीय ग्रन्थ 'सूर्य सिद्धांत' का अरबी अनुवाद किया । नवीं सदी में अलकिंडी ने विश्वकोश बनाया । अरस्तू के बाद अलफराबी ने 'विज्ञान के मूल सिद्धांत' लिखा । अलमसूरी ने अरबी में 'द बुक ऑव इंडिकेशन ऐण्ड रिवीजन' में खनिजों, पेड़-पौधों, प्राणियों और मनुष्य के विकास का वर्णन किया । जिसका अंग्रेजी में अनुवाद किया गया । फारस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबरूनी (973-1048 ई0) ने भारत यात्रा की और भारतीय संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके भारतीय ज्ञान-विज्ञान पर पुस्तकें लिखीं । इब्नशीना ने 10 लाख शब्दों का विश्वकोश "कानून" बनाया ।

चीन में ईसा पूर्व 400 में ग्रन्थ "मोचिंग" का पता चलता है, जिसमें प्रकाशिकी, लेंसों और सूची छिद्र कैमरे का उल्लेख था । यूनान का विज्ञान, अनुवाद होकर अरब होता हुआ यूरोप पहुँचा जहाँ आधुनिक विज्ञान की आधारशिला रखी गई । स्पेन में आबू मखा हवन जहर नामक चिकित्सक ने चिकित्सा शास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखीं । 12वीं शताब्दी में सिसली के सम्राट फ्रैड्रिक द्वितीय ने अरस्तू और सअनरशीर का साहित्य अनूदित कराके पेरिस विश्वविद्यालय को भेंट किया। उसने स्वयं पक्षी शास्त्र पर ग्रन्थ लिखा । भारतीय शून्य अरब से अनूदित हो कर यूरोप पहुँचा। 1316 के आस-पास इंग्लैंड के जॉन होली वुड ने ज्योति विज्ञान पर पाठ्यपुस्तक लिखी । कार्डीनल निकोलस (1401-1464) ने भार, समय मापन हेतु तुला और जलघड़ी आदि पर ग्रन्थ लिखा । 14वीं शती में प्राचीन ग्रीक के वैज्ञानिक ग्रन्थों का सीधा लैटिन में अनुवाद करने का बड़ा आंदोलन चला ।

सन् 1476 में छापाखाने की शुरूआत के साथ ही महत्वपूर्ण प्राचीन वैज्ञानिक ग्रन्थों के मुद्रण का सिलसिला चला और 15वीं शताब्दी से आधुनिक विज्ञान और विज्ञान साहित्य का केन्द्र पश्चिमी जगत बन गया । 1540 में वानोशियो, विरनगुशियों ने धातु शोधन पर ग्रन्थ लिखे । 1546 में तकनीकी लेखक जार्ज अगरीकोला ने खनिज विज्ञान पर मौलिक ग्रन्थ लिखे । 1543 में बेसेलियस नामक चिकित्सा शिक्षक ने "ऑन द फैब्रिक ऑव द ह्यूमन बॉडी" नामक वैज्ञानिक मोनोग्राफ लिखा । 1600 में रानी एलिजाबेथ के निजी चिकित्सक विलियम गिलबर्ट ने चुम्बकीय सिद्धान्त पर लैटिन पुस्तक लिखी, जो इंग्लैंड की पहली विज्ञान पुस्तक है । 1632 में गैलीलियो ने "जगत की दो पद्धतियों का संवाद" पुस्तक तैयार की । गैलीलियो ने ही 1610 में दूरवीक्षण पर 24 पृष्ठों की पुस्तक लिखी थी, जो विज्ञान साहित्य की सबसे छोटी महत्वपूर्ण पुस्तक कहलाती हैं । आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का श्रेय इंग्लैंड के फ्रांसिस वेकन (1561-1626) को है, जिन्होंने रॉयल सोसायटी की स्थापना की और महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं ।

इस तरह विज्ञान पुस्तकों के लेखन के साथ ही विज्ञान लेखक तत्कालीन समाचार पत्रों में भी छुटपुट विज्ञान लेख लिखते रहे, पर इनकी संख्या काफी कम रही। तब कहीं जाकर जनवरी 1665 में दुनियाँ की पहली वैज्ञानिक पत्रिका "जर्नल देस स्कैवान" मासिक, फ्रेंच एकेडमी देस सांइसेज द्वारा आरम्भ हुई। लगभग इसी समय इंग्लैंड की रॉयल सोसायटी ने भी "फिलासॉफिकल ट्रांजैक्शन" नामक विज्ञान पत्रिका आरंभ की। और तब से अब तक दुनिया के विभिन्न देशों से बड़ी संख्या में विज्ञान पत्रिकाएँ निकल रही हैं।

भारतीय विज्ञान पत्रकारिता

चरक द्वारा रचित "चरक संहिता" को हम अनेक दृष्टियों से भारत का प्रथम शुद्ध वैज्ञानिक ग्रन्थ कह सकते हैं। वाराहमिहिर ने 500 ई० में वृहत्संहिता लिखी। नागार्जुन रचित "रसरत्नाकर" 7-8वीं शती का लिखा है, जिसमें रासायनिक विधियों का वर्णन संवाद के रूप में किया गया है। अग्नि पुराण (800-900) ज्ञानकोष का एक वृहत ग्रन्थ है। आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय के अनुसार "रसार्णव" 12वीं शती में लिखा गया, हमारे वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों में अनेक वैज्ञानिक प्रकरण भरे पड़े हैं। यशोधर कृत "रस-प्रकाश सुधाकर" 13वीं शती का है। "रसरत्नसमुच्चय" चौदहवीं शती में वाग्भट्ट ने लिखा था। ये दोनों ग्रन्थ आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने बंगाल की एसियाटिक सोसायटी से छपाए। रसायन शास्त्र पर इस अवधि में अनेक ग्रन्थ लिखे गये यथा-रस प्रदीप, रसकौमुदी आदि। उत्तर प्रदेश के भावमिश्र ने "भावप्रकाश" में सर्वाधिक विस्तृत सूचनाएँ दी हैं। 16वीं शती में धातु क्रिया लिखी गयी। लगभग इसी समय विस्फोटकों आदि पर आकाश भैरवकल्प लिखी गई। इस तरह समय-समय पर स्वैच्छिक रूप से देश में विज्ञान पुस्तकें लिखी जाती रहीं।

सन् 1800 में बंगाल में श्रीरामपुर मिशन प्रेस की स्थापना के साथ अंग्रेजी, बंगला और हिन्दी में विज्ञान पुस्तकों की छपाई आरम्भ हुई। 1817 में बंगाल में स्कूल बुक सोसायटी बनी जिसमें विज्ञान पाठ्य पुस्तकें भी तैयार हुई। 1819 में फैनलिवस ने बंगला में शरीर क्रिया विज्ञान पर पुस्तकें लिखी। 11 सितम्बर 1823 को राजाराम मोहन राय ने गर्वनर जनरल रग्महर्स्ट को यूरोपीय विज्ञान को भारतीयों को उपलब्ध कराने के लिये पत्र लिखा। बंगाल में वैज्ञानिक साहित्य के विकास में राजशेखर बोस के "चलांततके" ने बहुत योग दिया। मराठी में पहली विज्ञान पुस्तक औषधि कल्पना विद्या अनुवाद द्वारा 1815 में लिखी गई। अनेक समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने भी वैज्ञानिक लेख और समाचार छापने शुरू कर दिए। इस तरह देश में अंग्रेजी व हिन्दी सहित विभिन्न भारतीय भाषाओं में निरन्तर बढ़ते छुटपुट वैज्ञानिक प्रकाशनों के बाद, सन् 1834 में कलकत्ता की विद्वत् संस्था, एशियाटिक सोसायटी ने देश की सर्वप्रथम वैज्ञानिक पत्रिका "एसियाटिक सोसायटी जर्नल" अंग्रेजी त्रैमासिक का प्रकाशन आरंभ किया। आज देश

में विज्ञान की विविध शाखाओं और उपशाखाओं पर अनेक विज्ञान पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित की जा रही हैं।

हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता

वैसे तो हिन्दी विज्ञान लेखन की शुरूआत उन पुराने ग्रन्थों से मानी जा सकती है, जिनमें चिकित्सा, खगोल और रसायन शास्त्रीय प्रकरणों का समावेश है। लेकिन आधुनिक हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की शुरूआत 19वीं शताब्दी के आरम्भ से होती है। यद्यपि स्पष्ट रूप से हिन्दी विज्ञान पत्रिका और पुस्तकों का प्रकाशन तो बाद में आरम्भ हुआ, पर सामान्य समाचार, पत्र-पत्रिकाओं में सामान्य विज्ञान के लेख तथा समाचार पहले छपने शुरू हुए। वहीं से हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का सूत्रपात माना जा सकता है। यह सँयोग ही कहा जाएगा कि हिन्दी पत्रकारिता के बिल्कुल साथ ही हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता भी आरम्भ हुई।

अप्रैल 1818 में सीरामपोर (श्रीरामपुर) जिला हुगली, बंगाल के बेपटिस्ट मिशनरियों ने बंगला और अंग्रेजी में मासिक 'दिग्दर्शन' शुरू किया। इसके सम्पादक क्लार्क मार्शमैन (1793-1877) थे। बाद में इसका हिन्दी रूपांतर भी प्रकाशित किया जाने लगा जिसके लिए दिल्ली से कैप्टन गावर द्वारा दो विद्वान भेजे गए। इसके पहले अंक में दो विज्ञानपरक लेख थे, एक तो अमेरिका की खोज, और दूसरा बैलून (गुब्बारा) द्वारा आकाश यात्रा के बारे में। दूसरे अंक में भी दो लेख विज्ञानपरक थे, एक तो हिन्दुस्तान में उगने वाले किन्तु इंग्लैंड में न उगने वाले वृक्ष, और दूसरा भाप की शक्ति से चलने वाली नाव (स्टीम बोट) के बारे में था। इसमें शैक्षिक सामाजिक और अन्य राजनैतिक सामग्री भी पर्याप्त थी। उन दिनों पाठ्यपुस्तकों की कमी होने के कारण कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी ने दिग्दर्शन के बहुत से अंक खरीदकर स्कूलों में बँटवाए, क्योंकि इसमें पर्याप्त शैक्षिक सामग्री होती थी। स्वाभाविक है, इसमें विज्ञान भी काफी था। 'दिग्दर्शन' हिन्दी और बंगला का पहला अखबार था। श्री शिवनारायण खन्ना ने दिग्दर्शन के बारे में लिखा है कि कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी की 1619 में प्रकाशित द्वितीय रिपोर्ट में परिशिष्ट 18 से प्रमाणित होता है कि 1818-19 में हिन्दी दिग्दर्शन की 2,000 प्रतियाँ छपने का प्रावधान था। मिशन प्रेस श्रीरामपुर में छपी "द सेंकड रिपोर्ट ऑव द इंस्टीट्यूशन फार द सपोर्ट एण्ड एनकरेजमेंट ऑव नेटिव स्कूल्स' से प्रमाणित होता है, कि दिग्दर्शन मासिक के प्रथम 3 अंक नागरी लिपि हिन्दी में प्रकाशित हुए। रिपोर्ट के अनुसार ये हिन्दी अंक भारत के विभिन्न स्कूलों को भेजे गए। इस तरह पहली बार हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का प्रादुर्भाव हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी

उन्नीसवीं शताब्दी में आधुनिक हिन्दी विज्ञान लेखन की शुरूआत तो हो गई पर उसका स्वरूप ज्यादा नहीं निखरा और छुट-पुट स्वैच्छिक प्रयास ही चलते रहे। आगरा

की स्कूल बुक सोसायटी ने 1847 में 'रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर' नामक पुस्तक प्रकाशित की। 1860 में सरल विज्ञान विटप नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई। 1875 में राजकीय प्रेस, प्रयाग से श्री कुंज बिहारी लाल की 'सुलभ बीजगणित' प्रकाशित हुई। बनारस के जिला विद्यालय निरीक्षक पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र ने 'गति विज्ञान' पर 1885 में पुस्तक लिखी। उन्होंने काशी पत्रिका भी निकाली, जिसमें विज्ञान विषयों पर उत्तम लेख प्रकाशित होने का उल्लेख है। 1883 में मुन्शी नवल किशोर ने रसायन पर एक ग्रन्थ अपने प्रेस से छपवाया। 1896 में श्री विशम्भर नाथ शर्मा ने रसायन संग्रह नामक पुस्तक बड़ा बाजार, कलकत्ता से प्रकाशित की। 1862 में अलीगढ़ में साइन्टिफिक सोसायटी नामक संस्था बनी। इसका उद्देश्य यूरोपीय विज्ञान साहित्य को अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं से हिन्दी, उर्दू और फारसी में अनुवाद करना था। इसने 8 पुस्तकें इस हेतु चुनीं। समिति ने कुछ मौलिक ग्रन्थों की भी योजना बनाई। इनमें यूरोपीय विज्ञान, भाप इंजन, कृषि के आधुनिक तरीके और औजार, भू-गर्भ शास्त्र, भौतिकी की पाठ्यपुस्तक, आधुनिक औषधि, ज्योतिष और पर्वतों का इतिहास समिति द्वारा खेती पर मौलिक पुस्तक लेखन हेतु सरकार ने 500 रु० का अनुदान दिया। समिति ने अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट नामक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसमें कृषि विज्ञान विषयों का समावेश था।

सन् 1888 में वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करने की दिशा में बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ की संरक्षता में प्रो०त्रिभुवन कल्यान दास गज्जर ने वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशन का बृहत और संगठित प्रयत्न शुरू किया। महाराजा ने इस हेतु 50,000 रुपये स्वीकृत किए। लेकिन शब्दावली के अभाव में पहले वर्ष 5 पुस्तकें ही लिखी जा सकीं और बहुत से लेखकों ने पुस्तकें लिखने को मना कर दिया। तब प्रो० गज्जर ने 80 खण्डों के बहुभाषी विज्ञान विश्वकोश की योजना बनाई। इस विशाल विश्वकोश की पाण्डुलिपि बड़ौदा विश्वविद्यालय में होने की सूचना है। 1898 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने विज्ञान के विविध विषयों पर वैज्ञानिक शब्द निर्माण हेतु एक समिति बनाई और इस तरह हिन्दी विज्ञान लेखन का द्वार प्रशस्त हुआ।

सन् 1852 में आगरा से बुद्धि प्रकाश नामक पत्र आरंभ हुआ। इसमें इतिहास और भूगोल सहित विज्ञान, शिक्षा और गणित पर भी लेख छपते थे। इसे सरकार स्कूलों में बँटवाने हेतु खरीदती थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 15 अक्तूबर 1873 को हरिश्चन्द्र मैग्जीन शुरू की, बाद में इसका नाम हरिश्चन्द्र चन्द्रिका हो गया। इनमें वैज्ञानिक लेखों के प्रकाशन के उल्लेख मिलते हैं। पं० बालकृष्ण भट्ट ने 1877 में प्रयाग से हिन्दी प्रदीप निकाला, जिसमें विज्ञान का समावेश था। विद्या, इतिहास, दर्शन आदि सामग्री की सूचना मुखपृष्ठ पर दी जाती थी। यद्यपि 1854 में कलकत्ता से प्रकाशित समाचार सुधावर्षण को हिन्दी का प्रथम दैनिक होने का श्रेय है, तथापि सही अर्थों में हिन्दी दैनिक हिन्दोस्थान 1885 में कालाकांकर (प्रतापगढ़, उ० प्र०) के राजा रामपाल सिंह ने प्रकाशित किया। इसका सम्पादन महामना मदनमोहन मालवीय ने किया, उन्होंने समाचार

पत्र में प्रतिदिन का विशेष विषय निश्चित किया था, जिसमें हालाँकि शुद्ध विज्ञान का तो उल्लेख नहीं है, लेकिन, ग्रामीण, शारीरिक उन्नति, और शैक्षिक विषयों का समावेश था। 1879 में मेवाड़ से प्रकाशित 'सज्जनकीर्ति सुधाकर' में पुरातत्व विषयों पर लेख प्रकाशन का उल्लेख हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1893 में काशी में हुई, जिसने आगे चल कर हिन्दी विज्ञान साहित्य के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस तरह उन्नीसवीं शताव्दी में हिन्दी विज्ञान लेखन का कार्य चलता रहा। समाचार पत्रों में जो विज्ञान के लेख प्रकाशित होते थे, उनका उद्देश्य शैक्षिक ज्यादा था और इनमें से ज्यादातर लेख शुद्ध विज्ञान की श्रेणी में नहीं आते थे।

स्वतंत्रता पूर्व: बीसवीं शती

उन्नीसवीं शती के अन्त और बीसवीं शती के आरम्भ में हिन्दी विज्ञान साहित्य की अभिवृद्धि हेतु सुनियोजित प्रयास आरम्भ हुए। गुरुकुल कांगड़ी ने 1900 में अपने यहाँ शिक्षा माध्यम हिन्दी को बनाया, जिसमें विज्ञान भी शामिल था। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा निर्मित वैज्ञानिक कोश की मदद से विज्ञान की अनेक पाठ्य पुस्तकें लिखी गईं। श्री महेश शरण द्वारा रसायन शास्त्र (1909), विद्युत शास्त्र (1912), गुणात्मक विश्लेषण (1919) और श्री गोवर्धन द्वारा भौतिकी (1910) लिखी गईं। इस तरह गुरुकुल कांगड़ी की ओर से गणित, रसायन, भौतिकी और चिकित्सा आदि विधियों पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

सन् 1910 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई, जिसने आगे हिन्दी विज्ञान साहित्य के प्रणयन में प्रमुख भूमिका निभाई। 10 मार्च, 1913 को प्रयाग में विज्ञान परिषद की स्थापना हुई। परिषद् ने हिन्दी में विज्ञान साहित्य सृजन और विज्ञान का प्रचार करना अपना उद्देश्य रखा। 1916-1932 में नगेन्द्र नाथ वसु ने हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित किया। 1925 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से वैज्ञानिक शब्दकोश प्रकाशित हुआ। 1930-31 में प्रयाग की विज्ञान परिषद् ने 4821 शब्दों का विज्ञान कोश बनाया। 1939 में श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी के संपादन में ज्ञान विज्ञान का हिन्दी विश्व भारती नामक विश्वकोश आरम्भ हुआ। हिन्दी का यह पहला संदर्भ ग्रन्थ है।

हिन्दी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रकाश निर्देशिका-1966 के अनुसार स्वतंत्रता पूर्व बीसवीं शताव्दी में अनेक विज्ञान पुस्तकें लिखी गईं। हाल ही में (1986) डॉ० गोपाल मिश्र के संपादकत्व में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन भाषणों का संकलन प्रकाशित किया है, जिनसे पता चलता है कि उस समय हिन्दी विज्ञान साहित्य के बारे में लोग कितने चिंतित, कितने आतुर और कितने प्रयासरत थे, आज यदि उस जागरूकता का अंश मात्र भी लोगों में आ जाए तो हिन्दी विज्ञान साहित्य में क्रांति आ जाए। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तानी एकेडमी और विज्ञान परिषद् प्रयाग-इन चार संस्थाओं की आरम्भिक विज्ञान साहित्य के निर्माण में उल्लेखनीय भूमिका रही।

1900 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन पर सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता की दृष्टि से युगांतरकारी था। इसमें साहित्यिक सामग्री सहित स्पष्ट रूप से विज्ञान, शिल्प कौशल, कौतुक और पुरातत्व पर सामग्री देने का प्रावधान था। सरस्वती के प्रथम अंक में बाबू श्यामसुन्दर दास का वैज्ञानिक लेख, "आलोक चित्रण : फोटोग्राफी" प्रकाशित हुआ था। इसमें लेखकों को पारिश्रमिक देने की भी व्यवस्था थी। 1914 में "विद्यार्थी" पत्रिका में विज्ञान लेखों का उल्लेख है। 1913 में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ने दिल्ली से मासिक आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका आरम्भ की। इसे हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका जाना जाता है। पर सही अर्थों में पहली संपूर्ण विज्ञान पत्रिका होने का श्रेय 'विज्ञान' को है, जो विज्ञान परिषद् प्रयाग से 1915 में आरम्भ हुई। 'धन्वंतरि' 1924 में अलीगढ़ से शुरू हुई। भोपाल से कृषक जगत 1945 में निकला। सरकारी क्षेत्र से इण्डियन मिनरल्स 1947 में निकली। 1942 से झाँसी से प्रकाशित दैनिक जागरण में विज्ञान लेख प्रकाशित होते थे। इसके संपादक श्री राजेन्द्र गुप्त थे। 1947 में श्री पूर्ण चन्द्र गुप्त ने कानपुर से भी दैनिक जागरण निकाला। इसमें भी विज्ञान लेखों के उल्लेख हैं। 1934 के आस-पास बड़ौदा, इन्दौर से प्रकाशित हिन्दी शिक्षण पत्रिका में विज्ञान लेख प्रकाशित होते थे। 1919 में नागपुर से उद्यम मासिक आरंभ हुआ, जिसमें प्रचुर मात्रा में वैज्ञानिक/तकनीकी लेख छपते रहे।

इस तरह स्वतन्त्रता के पूर्व बीसवीं सदी में हिन्दी विज्ञान लेखन में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध की अपेक्षा काफी प्रगति हुई। 'सरस्वती' ने स्पष्ट रूप से विज्ञान विषय का समावेश करके ऐतिहासिक कदम उठाया, वहीं हिन्दी में सम्पूर्ण विज्ञान पत्रिकाएँ 'आयुर्वेद महासम्मेलन' और 'विज्ञान' आरम्भ हुई। 'विज्ञान' के प्रकाशन से हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का एक युग आरम्भ हुआ। स्वतन्त्रता पूर्व लगभग 250 हिन्दी विज्ञान पुस्तकें प्रकाशित हुई। इस अवधि में हिन्दी विश्वकोश और वैज्ञानिक शब्दकोशों के प्रणयन से हिन्दी विज्ञान लेखन में उन्नीसवीं शदी में जो अवरोध था, वह काफी कुछ दूर हुआ, और इस तरह हिन्दी विज्ञान लेखन की और प्रगति के द्वार खुले। इस समय का विज्ञान लेखन उन्नीसवीं शताब्दी से अधिक विकसित था, लेकिन परिमार्जित नहीं। उसका परिमार्जित स्वरूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत ही सामने आया।

स्वतन्त्रता के बाद

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संविधान द्वारा हिन्दी को राजभाषा घोषित होने पर हिन्दी विज्ञान लेखन की दिशा में भी प्रगति हुई और अनेक प्रकाशकों ने हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य का कार्य गंभीरता से आरम्भ किया तथा पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त जन विज्ञान पर पुस्तकें प्रकाशित की गई। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, राजकमल प्रकाशन, राजपाल एन्ड सन्स, आत्माराम एन्ड सन्स, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, हिन्दी समिति उ० प्र०, देहाती पुस्तक भण्डार, किताब महल, सस्ता साहित्य मंडल, सर्वोदय प्रकाशन, ग्रामोदय

प्रकाशन आदि ने इस दिशा में उल्लेखनीय पहल की। 1958 में भारतीय संसद ने विज्ञान नीति पारित की जिसमें लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रावधान था।

1970 में प्रांतीय स्तरों पर ग्रंथ अकादमियों की स्थापना से काफी साहित्य रचा गया। अप्रैल 1960 में राष्ट्रपति के अध्यादेश पर सुनियोजित और आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावलियों के निर्माण और मानकीकरण के लिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई, जिसने अब तक विज्ञान के विभिन्न विषयों पर प्रमाणिक शब्दावलियाँ प्रकाशित की है, जिनके कारण आज परिमार्जित विज्ञान लेखन संभव हो सका है। केन्द्रीय स्तर पर वैज्ञानिक एवं औद्यौगिक अनुसंधान परिषद्, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने हिन्दी विज्ञान साहित्य की अभिवृद्धि में खासी भूमिका निभाई।

स्वतन्त्रता के बाद देश में अनेक हिन्दी पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाने लगीं और कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने विज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान दिया। 1934 में प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ने 'गंगा' मासिक का विज्ञानांक निकाला था। इस दौरान केवल विज्ञान विषयों की नई पत्रिकाएँ भी आरम्भ हुई। 1948 में लखनऊ से 'प्राकृतिक जीवन' एवं पटना से 'सचित्र आयुर्वेद' आरम्भ हुई। 1950 में पूना से 'स्वास्थ्य और जीवन' निकली। होमियो-पैथिक संदेश 1948 में दिल्ली से आरम्भ हुई। चिकित्सा विज्ञान के साथ ही कृषि पत्रिकाएँ भी प्रकाश में आई। 1948 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् से 'खेती' आरंभ हुई। कृषि विभाग मध्यप्रदेश से 1948 में किसानी समाचार, 1950 में लखनऊ से कृषि और पशुपालन, 1952 में विस्तार निदेशालय दिल्ली से उन्नत कृषि, फार्म सूचना एकक से गोसंवर्धन, आदि पत्रिकाएँ आरम्भ हुई। 1948 में भारतीय प्राणिशास्त्र परिषद् से प्राणि-शास्त्र निकली। इस तरह से स्वतन्त्रता के बाद विज्ञान के विभिन्न विषयों पर विज्ञान पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, जिनमें से कुछ आज भी चल रही हैं। 1958 में विज्ञान परिषद् प्रयाग ने हिन्दी में त्रैमासिक शोध पत्रिका 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' आरम्भ करके एक नया किन्तु प्रयोग किया, जिसके फलस्वरूप और भी शोध पत्रिकाएँ प्रारम्भ हुई। 1966 तक जहाँ 81 हिन्दी विकास पत्रिकाएँ प्रकाशित होने की सूचना थी, वहीं 1983 तक विभिन्न विज्ञान विषयों पर 321 पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। पर सामान्य विज्ञान की पत्रिकाएँ इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि आगे लोग सिर्फ उन्हें ही विज्ञान पत्रिका मानने लगे।

लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाएं

सन् 1915 में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद से 'विज्ञान' के प्रकाशन के 37 वर्ष बाद वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् से 1952 में 'विज्ञान प्रगति' का प्रकाशन ऐतिहासिक महत्व रखता है। पहले इसमें जटिल तकनीकी विषयों और पेटेन्ट विशिष्टियों आदि का समावेश रहता था पर 1964 में इसका कायाकल्प करके इसे लोक विज्ञान

पत्रिका बना दिया गया, और इसकी लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती चली गई। इसके संपादकों में क्रमशः श्री रामचन्द्र तिवारी, डॉ० ओम प्रकाश शर्मा और श्री श्याम सुन्दर शर्मा रहे। 1960 में विज्ञान समिति उदयपुर ने डॉ० कुन्दन लाल कोठारी के संपादकत्व में **'लोक विज्ञान'** (मासिक) आरम्भ की जिसमें विज्ञान की विविध शाखाओं पर लेख छपते थे। 1961 में दो हिन्दी विज्ञान मासिक पत्रिकाएँ आरम्भ हुईं, जिनका गेटअप पूर्णतया वाणिज्यिक सफल पत्रिकाओं की तरह था। इनमें रंग-बिरगें चित्र और विज्ञान पर अच्छे स्तर के लोकप्रिय लेख थे। इनमें से पहली थी **'विज्ञान लोक'** (मासिक), जो श्री शंकर मेहरा ने आगरा से शुरू की, और दूसरी थी **'विज्ञान जगत'** (साइन्स डाइजेस्ट), जिसे इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद से आर० डी० विद्यार्थी के संपादकत्व में आरम्भ किया गया। इसके प्रवेशांक में थ्रॉम्बोसिस, (डा० प्रीतम दास), उड़ती मोटरों का रहस्य (डा० नवल बिहारी मिश्र), टेलिविजन (वी० सिंह), सर्जरी का चमत्कार (डॉ० आर० के० विद्यार्थी) आदि लेखों के साथ चित्रकथा, समाचार तथा विज्ञान क्लब नामक स्तम्भ भी थे। विज्ञान जगत का प्रकाशन ऐतिहासिक था, पर यह ज्यादा नहीं चला। हाँ आगरा की विज्ञान लोक लगभग 15 वर्ष सफलतापूर्वक चली। श्री रमेश दत्त शर्मा के अनुसार ये पत्रिकाएँ यद्यपि व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा निकाली गई : फिर भी ये इसलिए डूबीं कि प्रकाशकों ने संपादक आदि सलाहकार आधार पर रखे, और पूर्ण-कालिक स्टाफ नहीं रखा गया। फिर भी विज्ञान पत्रकारिता की दिशा में इन पत्रिकाओं का उल्लेखनीय योगदान है। 1964 में सूरज प्रकाश पापा के संपादन में जयपुर से 'वैज्ञानिक बालक' निकली। अब यह बन्द है।

इसी क्रम में 1969 में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद् का गठन किया और **'वैज्ञानिक'** नामक त्रैमासिक पत्रिका आरम्भ की। यह आज भी निकल रही है। इसमें उच्च कोटि के लेख प्रकाशित होते हैं। जनवरी 1971 में राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम, नई दिल्ली से मासिक पत्रिका, 'आविष्कार' शुरू हुई, पहले श्री बदीउद्दीन खाँ इसके संपादक थे। बाद में श्री देवेन्द्र नाथ भटनागर संपादक हुए। श्री भटनागर के संपादकत्व में पत्रिका की विषयवस्तु तथा आकार में काफी परिवर्तन हुए। अक्तूबर 1975 में नैनीताल से **'विज्ञान डाइजेस्ट'** मासिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 1979 में विज्ञान परिषद् महोबा (उ० प्र०) की स्थापना हुई और तभी वहाँ से 'ज्ञान विज्ञान' मासिक पत्रिका आरम्भ हुई। इसके संपादक मनोज कुमार पटैरिया थे। पत्रिका में विविध वैज्ञानिक विषयों पर रोचक जानकारी दी जाती थी, किन्तु परिषद् के सीमित साधनों के कारण यह पत्रिका बन्द हो गई। 1978 में इलाहाबाद से **'विज्ञान भारती'** त्रैमासिक तथा 1980 में 'विज्ञान वैचारिकी' त्रैमासिक पत्रिकाएँ प्रारम्भ हुई किन्तु असमय ही कालकवलित हो गईं। 1979 में भारतीय विज्ञान संस्थान से "विज्ञान परिचय" नामक त्रैमासिक पत्रिका आरम्भ हुई। इसमें जटिल वैज्ञानिक विषयों पर सरल भाषा में ठोस लेख प्रकाशित होते हैं।

जुलाई 1981 में 3 पत्रिकाएँ आरम्भ हुई। **'विज्ञानपुरी'** त्रैमासिक, **'ग्रामशिल्प'** त्रैमासिक और **'जूनियर साइन्स डाइजेस्ट'** मासिक। विज्ञानपुरी, 'विज्ञान परिषद्' महोबा से मनोज कुमार पटैरिया के संपादकत्व में आरम्भ हुई। ग्राम शिल्प, राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम ने ग्रामीण प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार के लिए आरम्भ की। इसके संपादक श्री देवेन्द्र नाथ भटनागर हैं। जूनियर साइन्स डाइजेस्ट दिल्ली से वर्मा ब्रदर्स नामक प्रतिष्ठान ने निकाली। यह पत्रिका पूर्ण रूपेण पाठ्यक्रम विषयक विज्ञान पर केन्द्रित थी। दिसम्बर 1982 में बैरकपुर, पश्चिम बंगाल से **'विज्ञान दूत'** नामक मासिक पत्रिका डॉ० गोविन्द प्रसाद यादव के संपादकत्व में आरम्भ हुई, पर यह ज्यादा नहीं चली। 1982 में ही इलाहाबाद से ही एक और मासिक पत्रिका **'पर्यावरण दर्शन'** आरम्भ हुई किन्तु तुरन्त अनियमित हो गई। 1983 में डॉ० ओमप्रकाश शर्मा ने 'विज्ञान प्रवाह' मासिक शुरू किया, पर यह 1985 में बन्द हो गया। सम्पादक श्री लीलाधर काला थे।

जुलाई 1985 में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के वित्तीय सहयोग से भोपाल (म०प्र०) की एकलव्य संस्था ने **'चकमक'** मासिक पत्रिका आरम्भ की। इसे पहली हिन्दी बाल विज्ञान पत्रिका होने का श्रेय प्राप्त है। इसमें खेल, कहानी, कविता और चित्रों के माध्यम से बच्चों को विज्ञान की सरल बातें समझाने के प्रयास किए गए हैं। फरवरी 1986 में श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव के सम्पादकत्व में द्वैमासिक पत्रिका 'विज्ञान वीथिका' आरम्भ हुई। यद्यपि यह व्यावसायिक प्रतिष्ठान, एशिया बुक कम्पनी, इलाहाबाद से निकाली गई, पर 3 अंक निकल कर बन्द हो गई। 1986 में बम्बई से एक चित्रात्मक बाल विज्ञान पत्रिका, 'साइफन' आरम्भ हुई जो निःसन्देह बच्चों को वैज्ञानिक जानकारी के लिए एक सर्वोपयुक्त पत्रिका है। इसी दौरान केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने **'विज्ञान गरिमा सिन्धु'** नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रारंभ की है, जिसका उद्देश्य स्नातक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए नई पाठ्य सामग्री रोचक ढँग से प्रस्तुत करना है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा हिन्दी को विश्व की तीसरी भाषा मानने के कारण यूनेस्को की पत्रिका 'कूरियर' का हिन्दी संस्करण भारत में नेशनल बुक ट्रस्ट प्रकाशित करता है। कुछ समय तक विश्व स्वास्थ्य संगठन के भारतीय कार्यालय से 'वर्ल्ड हेल्थ' का हिन्दी संस्करण प्रकाशित होता रहा। हिन्दी में विज्ञान के प्रचार-प्रसार में विदेशी ऐजेन्सियाँ भी आगे आई हैं। सोवियत रूस की पत्रिकाओं सोवियत संघ, सोवियत नारी आदि में उस देश का काफी विज्ञान होता है। इधर भारत स्थित ब्रिटिश दूतावास की ब्रिटिश सूचना सेवा ने 1985 में एक त्रैमासिक हिन्दी विज्ञान पत्रिका प्रयोग के तौर पर आरम्भ की है, जिसमें ब्रिटिश वैज्ञानिक उपलब्धियों पर लोकप्रिय लेख होते हैं। पत्रिका का नाम है, **'ब्रिटिश वैज्ञानिक एवं आर्थिक समीक्षा'**। जनवरी 1986 से इसे नियमित कर दिया गया है।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान नई दिल्ली ने 1987 में अर्धवार्षिक विज्ञान पत्रिका '**जिज्ञासा**' आरम्भ की है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान जैसे अंग्रेज़ीपरक संस्थान से हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन अत्यन्त महत्वपूर्ण है, तथा अन्य संस्थानों के लिए अनुकरणीय भी। इसके सम्पादक प्रो० बंशबहादुर त्रिपाठी हैं। हाल ही में अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन ने बंगलौर से 'स्पेस इन्डिया' हिन्दी त्रैमासिक का प्रकाशन आरम्भ किया है। इसमें भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान पर मनमोहक सचित्र लेख प्रकाशित होते हैं। केन्द्रीय जल आयोग की हिन्दी व अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिकाओं 'भगीरथ' के सम्पादक श्री० बी० डी० पटैरिया के संपादकत्व में केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्, नई दिल्ली, ने जनवरी 1988 से 'विज्ञान गंगा' नामक त्रैमासिक हिन्दी विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया है। इनके अतिरिक्त चिकित्सा विज्ञान, कृषि विज्ञान और अन्य शाखाओं पर अनेक विज्ञान पत्रिकाएँ हिन्दी में उदय और अस्त होती रहीं, तथा कुछ अभी भी निकल रही हैं। इस हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की यह यात्राविकास की ओर अग्रसर है।

□□

भारत में आधुनिक कृषि पत्रकारिता के प्रथम सवा सौ साल

डॉ० रामकृष्ण पाराशर

भारत में कृषि पत्रकारिता का उद्भव तो आज से कई हज़ार वर्ष पूर्व माना है। उस समय कृषि पत्रकारिता का स्वरूप आधुनिक पत्रकारिता से भिन्न था, क्योंकि उस समय आजकल की तरह न तो समाचार-पत्र प्रकाशित होते थे और न समाचार पहुँचाने के लिए वर्तमान टेलीप्रिन्टर जैसी व्यवस्था थी। उस समय संत, कवि, भाट, चारण भ्रमण करके समाचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने में समाचारपत्र का कार्य करते थे। महर्षि नारद को इसी कारण पत्रकारों का आदि पुरुष माना जाता है। वे पत्रकार के रूप में स्थल मार्ग नहीं अपितु आकाश मार्ग से भ्रमण करते थे। महाभारत के काल में संजय की रिपोर्टिंग अद्वितीय मानी गयी थी। उस समय मुद्रण कला वर्तमान रूप में विकसित नहीं थी। अधिकांश सूचनाएँ और ज्ञान का प्रसार मौखिक रूप में एक मुख से दूसरे मुख में पहुँचता था। आगे चलकर मुगल काल में राजदरबार की ओर से हाथ से लिखकर समाचार भेजने की प्रथा शुरू हुई।

प्राचीन कृषि पत्रकारिता ने आधुनिक युग में एक नया रूप धारण किया है। कृषि पत्रकारिता को नया रूप देने में आधुनिक मुद्रण कला का विशेष योगदान रहा है। इसके साथ जैसे-जैसे संचार के नये-नये साधनों, यंत्रों, उपकरणों का विकास होता गया वैसे-वैसे कृषि पत्रकारिता का आधुनिक स्वरूप आकार लेता गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप की औद्योगिक क्रन्ति ने भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कृषि पत्रकारिता का मूल लक्ष्य कृषि विकास रहा है। नये-नये संचार माध्यमों से कृषि विज्ञान की

नयी उपलब्धियों को किसानों तक पहुँचाकर कृषि उत्पादन बढ़ाने में योगदान करना इसका कार्यक्षेत्र रहा है।

देश में कृषि एवं बागवानी के विकास के उद्देश्य से लार्ड हेंटिग्स के संरक्षण में 19 सितम्बर 1920 को रायल एग्रीहार्टीकल्चरल सोसायटी नामक संस्था की स्थापना डॉ० विलयम कैरी नामक मिशनरी विद्वान द्वारा की गयी और इसकी शाखाएँ देश के अन्य भागों में खुलीं। इस सोसायटी ने अंग्रेजी में कृषि की पहली भारतीय वैज्ञानिक पत्रिका 'जनरल आफ एग्रीकल्चरल एण्ड हार्टीकल्चरल सोसायटी ऑव इंडिया' का प्रकाशन शुरू किया। इस सोसायटी के जन्मदाता डॉ० कैरी ने सिरामपुर में एक मिशनरी प्रेस लगाया था। इस प्रेस में उक्त पत्रिका का प्रकाशन होता था। इस पत्रिका के अंग्रेज़ी संस्करण के साथ बंगला संस्करण भी शुरू किया गया लेकिन माँग कम होने के कारण उसको जल्दी ही बन्द करना पड़ा। 1864 ई० में कुछ सरकारी कर्मचारियों द्वारा कृषिप्रसार में गैर-सरकारी प्रयास किये गये। सर सैयद अहमद खाँ ने एक संस्था वैज्ञानिक समिति के नाम से बनायी जिसके आरम्भ में 19 सदस्य थे।

इस समिति की पहली बैठक गाज़ीपुर में हुई। उक्त बैठक में विचार-विमर्श हुआ और यह तय पाया गया कि वैज्ञानिक समिति अंग्रेज़ी भाषा के इस्तेमाल का विरोध नहीं करती है, लेकिन समिति का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतवासियों को उनकी अपनी ही भाषाओं द्वारा आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान को उन तक पहुँचाया जाना चाहिए। सर सैयद अहमद खाँ का तबादला जब 1864 में अलीगढ़ हो गया तब वैज्ञानिक समिति का कार्यालय अलीगढ़ आ गया। यहीं पर वैज्ञानिक समिति ने 14 फरवरी 1886 को एक शिक्षण संस्था खोली और 'अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट' नाम से एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करने का निश्चय किया। इस साप्ताहिक पत्र का पहला अंक 30 मार्च 1866 को प्रकाशित हुआ। पत्र के पहले कुछ अंको में निम्नलिखित लेख कृषि के बारे में प्रकाशित हुए–

1. कपास की खेती
2. भारत में कृषि को सुधारने के प्रस्ताव
3. भारतीय कृषि में योरोपीय औज़ार
4. रूस में भूमिहीन मज़दूरों की मुक्ति
5. देहातों में रूढ़िवाद

वैज्ञानिक समिति का यह साप्ताहिक पत्र ही पहला ऐसा साप्ताहिक पत्र था जिसमें कृषि के बारे में लेख प्रकाशित होने आरम्भ हुए थे। हालांकि हिन्दी का पहला साप्ताहिक पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' वर्ष 1826 में कलकत्ते से प्रकाशित होने लगा था, लेकिन उसमें कृषि के बारे में चर्चा नहीं होती थी। ऐसी स्थिति में विद्वान 'अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट' को

आधुनिक कृषि का पहला साप्ताहिक पत्र मानते हैं। समिति ने यह निश्चय किया है कि विभिन्न कृषि विधियों और तरीकों को स्वयं परख कर और उनका अध्ययन करके केवल उन्हीं तरीकों को भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करे जिनको वैज्ञानिक समिति का प्रबन्ध मंडल किसानों के लिए लाभदायक समझता है। विज्ञान समिति के उक्त साप्ताहिक पत्र के पश्चात् अमरावती से कृषि कारक अर्थात् **'शेतकारी'** नामक मासिक का सन् 1890 में श्री गणेश नारायण तथा सखाराम चिणाजी गोले के संपादकत्व में खेती सुधारक मंडल द्वारा प्रकाशित होना शुरू हुआ। इसके हिन्दी अनुवादक श्री रामकृष्ण वर्मा थे। यह मराठी और हिन्दी दो भाषाओं में प्रकाशित होता था। इसके बाद वाराणसी से 'खेत खेती खेतिहर' नाम से एक पाक्षिक पत्र सन् 1886 से प्रकाशित होना आरम्भ हुआ था। इसके संपादक श्री माधोराम कर्माकिर थे। इसी वर्ष भारत के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र वसु ने वनस्पति विज्ञान संबंधी खोजों से तहलका मचा दिया था।

इस समय देश में कृषि सुधार की एक लहर उत्पन्न हो गयी थी और कृषि में सहकारिता का उदय हो रहा था। ऐसी स्थिति भारत में सन् 1904 में सहकारी समिति की सहकारिता का सूत्रपात हुआ। **'किसान और सहकारी समाचार'** नामक पत्रिका मध्य प्रान्त सरकार द्वारा रायल अठपेजी आकार में नागपुर से आरम्भ की गयी। इसके बाद नागपुर से ही एक दूसरी मासिक पत्रिका **'किसानी माला'** सन् 1909 में देश सेवक प्रेस से प्रकाशित होनी शुरू हुई। इधर बिहार में पटना से श्रीगणेश दीक्षित के संपादन में **'किसान मित्र'** नामक मासिक पत्रिका का सन् 1911 से प्रकाशित होने के प्रमाण मिलते हैं। इस प्रकार एक ओर सरकार द्वारा कृषि में अनुसंधान कार्य शुरू किये गये और दूसरी ओर कृषि विज्ञान की नयी खोजों को किसानों तक पहुँचाने के लिए कृषि पत्रिकाओं के प्रकाशन का सिलसिला सन् 1866 से शुरू हुआ।

पूसा के कृषि अनुसंधान संस्थान के डॉ० अलबर्ट हावर्ड ने गेहूँ की कई नई किस्में निकालीं। इन्होंने 'व्हीट इन इंडिया', 'क्राप प्रोडक्शन इन इंडिया' नामक पुस्तकें लिखीं। इन्होंने कई अन्य फसलों की भी नई किस्में निकालीं और जैविक खादों की दिशा में उल्लेखनीय अनुसंधान कार्य किया। कम्पोस्ट बनाने की एक नई पद्धति इन्हीं की देन है। इन्होंने सन् 1914 में इंडियन साइन्स कांग्रेस की स्थापना की थी। सन् 1926 में ये उक्त साइन्स कांग्रेस से अध्यक्ष चुने गए। मृदा विषयक अनुसंधान में डॉ० लैदर और कीट विज्ञान के क्षेत्र में डा० हारोल्ड मेक्सेवेल लेफराय के अनुसंधान कार्य उल्लेखनीय हैं। इन्होंने सामान्य कीट विज्ञान, हानिकारक कीट, लाभप्रद कीट, कीट नियंत्रण जैसे शीर्षकों पर कई पुस्तिकाएँ लिखीं। सन् 1936 में इनकी 'इंडियन इन्सेक्टपेस्ट' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके बाद सन् 1909 में इंडियन इन्सेक्ट लाइफ' नामक पुस्तक छपी। इस पुस्तक में भारत के कीट विज्ञान का इतिहास भी दिया गया। सन् 1923 में आर्थिक कीट विज्ञान के छात्रों के उपयोग के लिए 'मैनुअल ऑव इन्टोमॉलोजी' नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने कहवा के दक्षिण भारत में पाए जाने वाले हानिकारक कीटों पर 'इन्सेक्ट पेस्ट ऑव काफी इन साउथ

इंडिया' शीर्षक से एक पुस्तिका भी लिखी। इसके अतिरिक्त घरेलू हानिकारक कीटों पर भी एक पुस्तक लिखी थी।

लेफराय के बाद भारत के कीट विज्ञान के क्षेत्र में टी० बी० फ्लेचर ने उल्लेखनीय कार्य किया। उनके 'ए वोट ऑन प्लान्ट इम्पोर्ट इन इंडिया' नामक लेख के आधार पर 'डेस्ट्रिक्टिव इन्सेक्ट्स एण्ड पेस्टस एक्ट' बना जिससे विदेशी पौधों के साथ हानिकारक कीटों का भारत आने पर प्रतिबन्ध लगा। सन् 1911 में इन्होंने शहद निकालने का उपकरण तैयार किया था।

आयरलैण्ड के निवासी सर इंडियन जॉन बटलर को भारत के पादप रोग विज्ञान का जनक माना जाता है। सन् 1918 में इनकी पहली पुस्तक 'फंजाई ऐण्ड डिसीजेज ऑव प्लान्ट' प्रकाशित हुई। इनमें विभिन्न फसलों के लगभग 200 रोगों का वर्णन है। मैसूर राज्य के मुंडकर गाँव में जनमे डॉ० बालचन्द्र भवानी शंकर मुंडकर 'फंजाई ऐण्ड प्लान्ट डिसीजेज' नामक पुस्तक लिखी और इंडियन फाइटोपैथैलॉजिकल सोसायटी ऑव इंडिया' की स्थापना की और 'इंडियन फाइटो पैथोलॉजी' नामक एक त्रैमासिक शोधपत्रिका का प्रकाशन शुरू कराया।

इस अवधि में एक ओर भारत में कृषि के अनुसंधान के नये संस्थान स्थापित हुए और कृषि की आधुनिक शिक्षा के लिए विद्यालय और महाविद्यालय खुले, दूसरी ओर कृषि प्रसार के लिए प्रदर्शन, प्रदर्शनियाँ एवं कृषक संगठन बने। कृषि सम्बन्धी नई-नई पत्रिकाएं शुरू हुई। प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश) से '**किसानोपकारक**' नामक मासिक पत्रिका सन् 1913 में श्री श्याम नारायण, डिप्टी डायरेक्टर कागज़ात देही व एग्रीकल्चर द्वारा प्रकाशित कराई गई। सन् 1914 में इलाहाबाद से '**विज्ञान**' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका में विज्ञान के विभिन्न पक्षों के साथ कृषि विज्ञान के कुछ पक्षों की सामग्री का प्रकाशन होता रहा है। सन् 1914 में मैनपुरी से '**कृषि सुधार**' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन श्री जीवालाल दुबे के संपादकत्व में आरंभ हुआ और सन् 1918 में आगरे से '**कृषि**' नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ।

इसके बाद ज़िला स्तर पर स्थापित किसान सभाओं द्वारा अपने-अपने ज़िले में '**किसान**' नामक पत्रिकाओं के प्रकाशित होने के प्रमाण मिलते हैं। हिन्दी समाचार पत्र संग्रहालय, कसार हट्टा रोड, हैदराबाद द्वारा प्रकाशित हिन्दी समाचार पत्र सूची भाग एक के अनुसार सन् 1919 में फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) की जिला किसान सभा की ओर से और सन् 1920 में उन्नाव से नन्दकिशोर वर्मा के संपादकत्व में सन् 1921 में इलाहाबाद से श्री इन्द्र नारायण द्विवेदी के संपादकत्व में प्रान्तीय किसान सभा की ओर से और सन् 1924 में कानपुर से श्री रघुवर दयाल मिश्र के संपादकत्व में पाक्षिक पत्रिका के रूप में एक ही शीर्षक 'किसान' नाम से अलग पत्रिकाओं के प्रकाशित होने का उल्लेख

मिलता है। इसी प्रकार सन् 1920 मे 'किसान' नामक साप्ताहिक के रिकाबगंज फैजाबाद से प्रकाशित होने के प्रमाण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त 'किसान' शीर्षक की पत्रिकाओं के खुर्जा, कानपुर और काशी से प्रकाशित होने का उल्लेख मिलता है।

पूसा कृषि अनुसंधान के विशेषज्ञ डॉ० हावर्ड ने सन् 1924 में इंदौर में 300 एकड़ के एक फार्म पर एक कृषि अनुसंधानशाला खोली और एक मासिक पत्रिका **'किसान'** का इन्दौर से प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्रिका के अतिरिक्त एक दूसरी पत्रिका **'खेती बाडी समाचार'** भी 1914 में ही इंदौर से शुरू हुई थी।

भारत मे भूमि सर्वेक्षण कार्य सन् 1846 मे इंडियन जियोलॉजिकल सर्वे ऑव इंडिया की स्थापना से शुरू हुआ। मद्रास के कृषि विभाग के श्री हैरिस (1914-15), नॉरिस (1922), विश्वनाथ (1928) द्वारा कई भूमि-सर्वेक्षण किये गये। 1929 मे पंजाब की मिट्टियों का सर्वेक्षण लैण्डर द्वारा किया गया। रॉयल एग्रीकल्चरल कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर 23 मई 1929 में भारत सरकार ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की स्थापना की। सर मोहम्मद हबीबुल्ला इसके पहले अध्यक्ष और सर० टी० विजय राघवाचार्य उपाध्यक्ष तथा श्री एम० ए० हैदरी सचिव बने और बी० बर्ट उसके कृषि विशेषज्ञ नियुक्त किए गये।

गांधी जी ने 'हरिजन' नामक पत्रिका में कृषि सुधार और ग्रामोद्योग संबंधी पर्याप्त सामग्री प्रकाशित की। उनके द्वारा कृषि को महत्व दिए जाने से अन्य समाचार पत्रों में कृषि संबंधी समाचारों को महत्व मिला और कृषि पत्रकारिता को एक नई दिशा मिली और किसानों में नई जागृति आई। गाँधीजी के अतिरिक्त कृषि सुधार के गैर सरकारी प्रयासों में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रयास भी उल्लेखनीय हैं।

सन् 1933 में बिहार कृषि परिषद् ने **'किसान'** नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। सन् 1935 में आल इंडिया रेडियो से प्रसारण आरम्भ हुआ और कृषि समाचारों से रेडियो कृषि पत्रकारिता शुरू हुई। सन् 1936 में भागलपुर से पं० गौरीशंकर झा द्वारा **'हलधर'** नामक साप्ताहिक पत्र और दरभंगा से **'गोपालन'** नामक मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ।

इसी वर्ष मुज़फ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) से **'देहात'** नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। अगले वर्ष 1937 में पटना से **'गाँव'**, वर्धा से **'ग्रामोद्योग पत्रिका'** का प्रकाशन शुरू हुआ और सागर से **'देहाती दुनिया'** साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू हुआ। सन् 1939 में इन्दौर राज्य के ग्राम उत्थान विभाग द्वारा **'ग्रामसुधार'** नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया और सन् 1941 में इन्दौर से दैनिक **'किसान'** नामक कृषि का पहला दैनिक पत्र शुरू हुआ, जो 18 महीने ही चला। इस समय देश में ग्राम-

वासियों की दशा सुधारने के लिए देशव्यापी आन्दोलन-सा सहज रूप में शुरू हो गया। इस कारण ग्राम सुधार की दिशा में अलग-अलग स्थानों से अलग-अलय नामों से कई पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। **'ग्रामसुधार'** पाक्षिक लखनऊ से, **'गाँव की बात'**, **'ग्रामवासी'**, **'ग्रामसेवक'**, **ग्राम हितैषी'**, इलाहाबाद से प्रकाशित होने के प्रमाण मिले हैं। सन् 1939 में **'गाँव'** पाक्षिक पटना से प्रकाक्षित होने के समाचार है।

सहकारिता पर प्रकाशित अन्य पत्रिकाओं में जयपुर और काशी से सहकारी, **'सहयोग'** नामक पत्रिकाएँ हैं। सन् 1943 में कोटा से **'किसान सन्देश'** पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। सन् 1947 में पूसा (बिहार) से 'ईख समाचार' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। सन् 1941 में पंचायतों की स्थापना के बाद इस विषय की पर्याप्त पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। उन्नाव से पंचज्योति, देवरिया से पंचदूत, जौनपुर से पंचवाणी, रायबरेली और अलीगढ़, बुलन्दशहर और लहरिया सराय (बिहार) से 'पंचायतराज' शीर्षक से साप्ताहिक और माँसिक पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ।

इसके पूर्व इम्पीरियल कृषि अनुसंधान परिषद ने सन् 1940 में 'इंडियन फार्मिंग' के नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया।

इस प्रकार भारत में कृषि एवं कृषि पत्रकारिता के आधुनिक विकास का एक नया सिलसिला जो एग्रोर्हटिकल्चर सोसायटी ऑव इंडिया की स्थापना और उसकी त्रैमासिक पत्रिका के द्वारा सन् 1920 में शुरू हुआ था, वह सन् 1947 तक विदेशी सरकार की कृषि आवश्यकताओं के अनुसार पनपा।

किसानों को खेती 'बाड़ी' के नए तरीके से सिखाने के लिए पुस्तकें प्रकाशित की गयीं। अंग्रेज़ी की शेष पत्रिकाओं के साथ हिन्दी में प्रसार पत्रिकाएँ भी निकलीं। उत्तर भारत में 'किसान', 'देहात', 'पंचायत' तथा सहकारिता पर अलग-अलग स्थानों से एक ही नाम की कई साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रिकाएं हिन्दी में प्रकासित हुई जिनसे आधुनिक कृषि पत्रकारिता की एक बुनियाद पड़ी। ये पत्रिकाएँ अधिकांशतः किसान संगठनों और सरकारी कृषि सहकारिता या पंचायत विभागों की ओर से प्रकाशित होती रही हैं। कुछ दैनिक पत्रों में भी कृषि के विभिन्न पक्षों पर समाचार और लेख छपने शुरू हुइ। सारे देश में कृषि के अनुसंधान, शिक्षा एवं प्रसार के विस्तार के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान की स्थापना हुई। आल इंडिया रेडियो की भी स्थापना हुई जिससे रेडियो कृषि पत्रकारिता का उदय हुआ। समाचार एजेन्सियाँ बनीं। शासन की भाषा अंग्रेजी थी और कृषि विकास का अधिकांश कार्य शासन द्वारा संचालित होता था इसलिए कृषि पत्रकारिता में भी पहले अंग्रेज़ी का वर्चस्व अधिक रहा, परन्तु धीरे-धीरे और साथ-साथ प्रादेशिक भाषाओं में भी कृषि पत्रकारिता का विकास हुआ और उत्तर भारत के वर्तमान 6 राज्यों (हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार) में हिन्दी में कृषि पत्रकारिता का तेज़ी से विकास हुआ।

पूसा, पटना, वाराणसी, इलाहाबाद, कानपुर, फैजाबाद, आगरा, मेरठ, दिल्ली, शिमला, जयपुर, सागर, इन्दौर से कृषि और संबंधित विषयों जैसे पशुपालन, सहकारिता पंचायत और ग्राम सुधार पर दैनिक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और त्रैमासिक पत्रिकाएं निकलीं। वैज्ञानिकों की संस्थाएं बनी। गैरसरकारी संस्थाओं में सर सैयद अहमद साहब की 'विज्ञान समिति' और प्रयाग की 'विज्ञान परिषद' ने पत्रिकाओं का प्रकाश करके उल्लेखनीय कार्य किया। संस्थागत प्रयासों में इन्दौर से डा० हावर्ड, व्यक्तिगत प्रयासों में अजमेर के श्री सुखसंपत राय भंडारी, नागपुर से वी० एन० वाडेगावर, अहमदाबाद से राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी, भोपाल से मानिक चन्द्र बोद्रिया के प्रयास उल्लेखनीय रहे।

उस समय हिन्दी की कृषि पत्रिकाओं के सामने हिन्दी अनुवाद की जटिल समस्या अवश्य रहती थी, क्योंकि कृषि अनुसंधान संस्थानों से सारी सामग्री अंग्रेज़ी में उपलब्ध होती थी। हिन्दी की कृषी पत्रिकाओं को शुद्ध और प्रमाणित सामग्री उपलब्धता के लिए हिन्दी अनुवादक रखने होते थे क्योंकि अनुसंधान स्थानों से शोध परिणाम अंग्रेज़ी में प्राप्त होते थे। कुछ कृषि पत्रकार अनुसंधान संस्थानों में जाकर स्वयं सामग्री, सूचनाएं प्राप्त करके हिन्दी में रूपांतरित करके मौलिक लेख के रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं। इस प्रकार हिन्दी की आधुनिक कृषि पत्रकारिता के आरंभिक वर्षों में, अंग्रेज़ी की कृषि पत्रकारिता पर आधारित रही, और धीरे-धीरे वह आत्मनिर्भर हो गयी है। सन् 1947 में देश के स्वतंत्र होने पर उसका एक नया रूप निर्मित हुआ। नई-नई शाखाएं निकली और नये दायित्व उत्पन्न हुए। भारत में आधुनिक कृषि और कृषि पत्रकारिता के विकास का पहला दौर ब्रिटिश राज्य की समाप्ति के साथ पूरा हो जाता है।

□□

जनप्रिय विज्ञान लेखन

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान लेखन से सम्बन्धित समस्याओं की चर्चा मैं नहीं करना चाहता। मेरा अपना यह निश्चित मत है कि यदि आप में लिखने की इच्छा बलवती है और आप अपने लेखन के माध्यम से समाज को कुछ देना चाहते हैं, तो आपकी राह में कोई भी कठिनाई अवरोध नहीं उत्पन्न कर सकती। आज देश में ज्ञान-विज्ञान की ढेरों पत्रिकायें हैं, जिनमें विज्ञान के विभिन्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते रहते हैं। विज्ञान के टेक्निकल या तकनीकी शब्दों के लिए शब्दकोश हैं। बहुत सी पुस्तकें हैं। लेखकों को प्रोत्साहन के लिए सरकारी और गैरसरकारी अनेक पुरस्कार हैं। कमी है तो मात्र इच्छाशक्ति की अथवा यह हिचकिचाहट कि पता नहीं लेख छपेगा भी या नहीं। अतएव मैं यहाँ आपसे 'आम जनता के लिए विज्ञान लेखन' पर कुछ बात-चीत करना चाहता हूँ, विशेष रूप से किसी पत्रिका के लिए लेख लिखने के सम्बन्ध में।

मैं अपनी बात एक आधारभूत बिन्दु से ही प्रारम्भ कर रहा हूँ। वैसे यह इतना स्पष्ट है कि इसकी चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी बहुत से लेखक, विशेष रूप से नये लेखक, इस पर ध्यान नहीं देते हैं अथवा अनदेखा रह जाता है और वह यह कि पत्रिकायें अपने विषय-विस्तार और विशेष वर्ग के पाठकों के लिए होने के कारण एक दूसरे से भिन्न होती हैं। एन० आर० डी० सी० द्वारा प्रकाशित 'आविष्कार' और 'ग्रामशिल्प', सी० एस० आई० आर० द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान प्रगति', 'दि इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स (इण्डिया) का जनरल', विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान' आदि एक ही तरह की पत्रिकायें नहीं हैं। 'खेती' और 'आपका स्वास्थ्य' में किसी प्रकार की समानता नहीं है। इससे यह बात स्पष्ट है कि **लेखक पत्रिका विशेष की आवश्यकता**

और कलेवर को ध्यान में रखकर लिखें। ऐसा बहुत ही कम होता है कि लेखक बैठे, अपने विचारों को लेखनीबद्ध करे और बिना यह सोचे-समझे कि लेख किस पत्रिका में प्रकाशन के योग्य है अथवा पत्रिका किस प्रकार के लेखों की खोज में है, किसी पत्रिका को भेज दे। इसलिए पहली बात इस सम्बन्ध में विज्ञान के नये लेखकों से यह कहना चाहूँगा कि वे लेख तैयार करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि पत्रिका विशेष, जिसके लिए वे लेख भेजना चाहते हैं, किस प्रकार के लेख प्रकाशित करती है और कहीं ऐसा तो नहीं कि उस विषय पर उसी पत्रिका में पहले काफी कुछ प्रकाशित हो चुका है।

एक दूसरी आधारभूत बात यह है कि लेखक के पास कहने के लिए 'विषय वस्तु' या 'थीम' अवश्य होनी चाहिए। उसे यह अवश्य ही ज्ञात होना चाहिए कि वह क्या कहना चाहता है ताकि पाठक भी यह ठीक से समझ सकें कि लेखक कहना क्या चाहता है। इसे स्पष्ट करने के लिए किसी भी सफल पत्रिका की विषय-सूची से लेखों के शीर्षक लिए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए 'विज्ञान' के जनवरी-मार्च 1986 अंक से यहाँ कुछ शीर्षक दिये जा रहे हैं—'भारतीय पर्यावरण की वर्तमान स्थिति', 'नाभिकीय युद्ध की विभीषिका', 'जल प्रदूषण और जल-वाहित रोग', 'गंगा की व्यथा कथा और पुनरुद्धार', 'क्या पर्यावरण आन्दोलन गैर वैज्ञानिक हो चला है?' इसमें से प्रत्येक की विषयवस्तु के सम्बन्ध में क्या कोई सन्देह है?

अर्थात् ये दोनों आधारभूत बातें हैं—'वर्ग विशेष के लिए लिखना' और कहने के लिए पास में 'कथ्य' का होना। इसके बाद हम लिखने के 'तरीके' और 'शैली' पर आते हैं।

यह बुद्धिमानी होगी कि आप जो कुछ लिखना चाहते हैं उस पर भली-भाँति चिंतन-मनन कर लें ताकि लिखने के पहले आप विषय को अच्छी तरह से समझ लें। आप जो कुछ लिखने जा रहे हैं, यदि उसे आपने समझ लिया है तो अपने विचारों को पाठक तक संप्रेषित करने में आपको कठिनाई नहीं होगी।

समान महत्व की एक और बात है 'परिशुद्धता'। इस परिशुद्धता से मेरा तात्पर्य 'तथ्य' और भाषा की 'सुस्पष्टता' से है। हो सकता है आप में से बहुतों ने अमेरिकी लेखक **कॉर्नेलियस रिआन** (Cornelius Ryan) की पुस्तक 'द लांगेस्ट डे' और द्वितीय विश्व युद्ध से सम्बन्धित अन्य पुस्तकें पढ़ी हों। **रिआन** का 'तरीका' परिशुद्धता पर आधारित था। एक पुस्तक को लिखने के लिए उन्होंने अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा और जर्मनी के समाचार पत्रों में प्रसिद्ध योद्धाओं से साक्षात्कार के लिए विज्ञापन दिये। 6,300 व्यक्तियों के उत्तर उन्हें प्राप्त हुए, जिसमें से 1000 लोगों से साक्षात्कार किया और 400 के साक्षात्कार पुस्तक में सम्मिलित किये। यह जानते हुए कि **रिआन** किस प्रकार के लेखक थे और उनके शोध सहायक कितने दक्ष थे, हमें यह मानना ही होगा कि उन्होंने तथ्यों की बारीकी से जाँच की होगी।

किन्तु क्या सुस्पष्टता और परिशुद्धता ही पर्याप्त हैं ? ऐसे बहुत से स्थापित ख्याति-प्राप्त लेखक हैं जिनका यह निश्चित मत है कि अच्छे लेखन के लिए मात्र ये बातें ही पर्याप्त नहीं । इन सबके बावजूद या यों कहें कि इन सबके ऊपर किसी भी अच्छे लेखन का जो सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व है, वह है 'रोचकता' । लेखन में आदि से अन्त तक रोचकता बनी रहनी चाहिए । उबाऊ लेखन भला किसे पसंद आयेगा ? पर प्रश्न यह है कि लेखक पाठक में रुचि कैसे उत्पन्न करे ? आरामकुर्सी में आराम कर रहे व्यक्ति को लेखक इस बात के लिए कैसे राजी करे कि उसके सामने जो मुद्रित सामग्री पड़ी है उसे वह पढ़ने को विवश हो ?

यहाँ यह बता देना समीचीन होगा कि विषयवस्तु से निश्चय ही अन्तर पड़ता है। उदाहरण के लिए 'आम' या 'हाथी' में बहुतों की रुचि हो सकती है, किन्तु 'जैवतकनीकी' की बारीकियों को जानने में कम लोग ही रुचि रखते हैं। पर लेखक के विषयवस्तु की बात छोड़कर यहाँ हम किसी भी लेख को रुचिकर बनाने सम्बन्धी कला के विषय में बात करेंगे, जो किसी भी लेखक को उपलब्ध हो सकती है।

एक है, 'गल्प कला' या 'फिक्शन तकनीकी', जिसमें ऐसा लगता है जैसे पहले ही पैराग्राफ से लेखक कोई कहानी कह रहा हो, यथा—'पिछले रविवार को एक सुहावने शाम के समय'…।

एक दूसरी कला है, किसी 'कथा, उपाख्यान या जीवन की झाँकी का इस्तेमाल' । एक गम्भीर लेख में किसी रोचक घटना, कथा का उल्लेख किसी एक खास बिन्दु को व्याख्यायित करने में सहायक होता है । हम अपने अतीत, अपनी प्राचीन संस्कृति और पूर्वजों को प्यार करते हैं, कथा—कहानी, चुटकुले, उपाख्यान हमें बाँधे रखते हैं और आनन्द देते हैं ।

एक तीसरी शैली है बड़े-बड़े पैराग्राफों के स्थान पर 'छोटे-छोटे पैराग्राफों का उपयोग' । आपके अपने विचारों के बीच-बीच में महान लेखकों की रचनाओं से उद्धरण, गम्भीर विषयवस्तु के बीच में हल्की-फुल्की सामग्री, प्रश्नों और उत्तरों का इस्तेमाल आदि विषय को रुचिकर और अधिक ग्राह्य बनाते हैं । लेख की गति (पेस) में परिवर्तन से नीरसता नहीं आने पाती ।

चौथा तत्त्व है 'विस्तृत विवरण' । एक गल्प लेखक किसी दृश्य (सीन) या चरित्र (कैरेक्टर) के विस्तृत वर्णन से नाटकीयता लाता है । गम्भीर विषयों के रचनाकार भी ऐसा प्रयोग कर सकते हैं ।

और अन्त में 'रंगों का इस्तेमाल' । रंगों से यहाँ तात्पर्य है शब्दों का इस प्रकार का चयन कि उन शब्दों से बुने गये विवरण का चित्र पाठक के सामने उपस्थित हो जाये । ऐसे

शब्दों का इस्तेमाल जिससे लेखक और पाठक में तारतम्य स्थापित हो जाये। पाठक लेखक की आँखों से देखे और उसी रोमांच का अनुभव करे जिसे लेखक ने किया है।

वैसे सच पूछा जाये तो लेखन का ऐसा कोई रहस्य नहीं, गुर नहीं जो बताया जा सके। लिखना लिखते-लिखते, निरन्तर लिखने से, आता है। आप छप रहे हैं और लिखना आ गया अथवा आप नहीं छाप रहे हैं इसलिए लिखना नहीं जानते, ऐसा नहीं है। प्रत्येक सफल लेखक को अपने लेखन के प्रारम्भिक काल में असफलता का सामना करना पड़ता है। कई बार अच्छे लेख किसी विशेष कारणवश वापस लौटा दिये जाते हैं।

हाँ, अच्छा हो यदि अपने लेख के आप स्वयं सम्पादक बन जायें। लिखने के लिए उसी विषय को चुनें जिसे आप समझते हों। लिखने के बाद उसे कुछ दिनों के लिए रख दें। फिर जब आप उसे पुनः पढ़ेंगे तब उसमें आपको अनेक त्रुटियाँ नजर आयेंगी, कमियाँ उभर कर सामने आ जायेंगी। आपको स्वयं ही लगेगा कि यदि आपने उसी समय किसी पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेज दिया होता तो निश्चय ही रचना वापस लौट आती। इसलिए अपने लेखों के सम्पादक आप स्वयं बनें। रचनाधर्मिता कठिन है, सम्पादन अपेक्षाकृत सरल। यदि आपकी सुन्दर रचना किसी छोटी पत्रिका में छपे तो भी उसे निश्चय ही साधुवाद मिलेगा, किन्तु सम्पादन के क्षेत्र में तभी यश मिलेगा जब पत्रिका यशस्वी हो। अतएव नये लेखकों को मेरा सुझाव है कि वे किसी सम्पादक का अनुसरण न करके किसी अच्छे सफल लेखक का अनुसरण करें और यशस्वी लेखक बनें। सम्पादक का अनुसरण न करने की सलाह मैं इस कारण दे रहा हूँ क्योंकि प्रायः पत्रिका के पृष्ठों को पूरा करने के लिए और पत्रिका समय से निकल जाये, इस बात को ध्यान में रखकर सम्पादक को बहुत कुछ जल्दी में लिखना पड़ता है। वैसे लेखन में मौलिकता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि आप नकल किसी की भी न करें।

हाँ, यदि आप लेखन के क्षेत्र में प्रवेश के इच्छुक हैं, भाषा पर अधिकार नहीं है, अथवा हिन्दी भाषी नहीं हैं तो भी राष्ट्रभाषा हिन्दी की पूजा-अर्चना और विज्ञान की सेवा से दूर न रहें, लिखें अवश्य। **जे० बी० एस० हाल्डेन** का तो यहाँ तक कहना था कि जो लोग लिख सकते हैं, पर लिखते नहीं, वे अपराध कर रहे हैं। इसलिए आप अवश्य लिखें। 'विज्ञान' में आपके लेखों का स्वागत है।

अपनी बात को मैं अब और आगे न बढ़ाकर एक घटना का जिक्र करते हुए समाप्त कर रहा हूँ। घटना इस प्रकार है—

एक बार एक युवा लेखक ने प्रसिद्ध नाटककार **बरनार्ड शॉ** से पूछा था—"क्या कोई व्यक्ति अपने आपको प्रशिक्षण देकर लेखक बना सकता है ?" शॉ ने उसे सलाह दी

थी—"किसी अच्छे विश्वकोश के पन्ने पलटते जाओ, जब कोई दिलचस्प चीज मिले तो उसे पढ़ डालो।" शॉ का कहना था कि लिखना जानना व्यर्थ है, अगर आपके पास कहने को कुछ न हो। और आप में साहित्यिक क्षमता है तो शब्द अपने आप आ जायेंगे। "यदि ये आपके पास नहीं हैं तो आपको अभिव्यक्ति का कोई और उपाय खोजना चाहिए।" इस घटना का उल्लेख शॉ की सेक्रेटरी (सचिव) **ब्लांश पैच** ने अपने संस्मरणों में किया है।

□□

मराठी विज्ञान साहित्य : कल, आज और कल

डाॅ० मनोहर मो० मोघे

मराठी विज्ञान साहित्य के सन्दर्भ में कुछ कहने से पहले यह जानना आवश्यक है कि विज्ञान साहित्य क्या है ? जिस साहित्य से विज्ञान प्रकट होता है, वह साहित्य 'विज्ञान साहित्य' कहा जा सकता है। जिस साहित्य के कारण वैज्ञानिक दृष्टिकोण के निर्माण में मदद मिलती है उसे 'विज्ञान साहित्य' नहीं कहना चाहिये। मेरे मतानुसार, 'वैचारिक साहित्य' कहना चाहिए।

जिस साहित्य में विज्ञान के बारे मे लिखा हुआ है, अर्थात् वैज्ञानिक जानकारी और वैज्ञानिक विचार जिसमें हैं, वह 'विज्ञान साहित्य' है। इस विज्ञान साहित्य के भेद इस तरह किए जा सकते हैं।

1. वैज्ञानिक विषयों पर शोध प्रबन्ध।

2. विज्ञान की किसी एक शाखा या उपशाखा में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अथवा राष्ट्रीय स्तर पर हुए संशोधन की अथवा उसकी प्रगति प्रदर्शित करने वाले शोधपत्र।

3. किसी वैज्ञानिक विषय का सामान्य वैज्ञानिकों को अथवा विज्ञान के विद्यार्थियों को सहज सरल तरीके से ज्ञान हो, इस उद्देश्य से लिखा गया विवरणात्मक साहित्य।

4. किसी भी विषय पर संक्षिप्त, किन्तु आवश्यक जानकारी देने वाला विज्ञान कोश।

5. सामान्य, सुशिक्षित व्यक्तियों के लिए वैज्ञानिक जानकारी देने वाला साहित्य ।

6. कहानी, उपन्यास तथा कविता के जाने-माने माध्यमों की सहायता से विज्ञानविषयक जानकारी देने वाला फुटकर यानी ललित साहित्य । इसीमें दूरदर्शन, आकाशवाणी द्वारा प्रसारित संवादात्मक साहित्य भी आता है ।

उपर्युक्त प्रकार के साहित्यों के भेदों का क्रम देखा जाय तो समझ में आता है कि पहले दो प्रकार, केवल वैज्ञानिक जानकारी देने वाले प्रकार हैं । इसमें भाषा का, माध्यम का कार्य महत्वपूर्ण नहीं है । जैसे-जैसे हम अगले प्रकारों की तरफ बढ़ते हैं तो भाषा का, माध्यम का महत्व बढ़ता जाता है और वैज्ञानिक जानकारी का महत्त्व कम होता जाता है । शोध प्रबन्धों में वैज्ञानिक जानकारी महत्वपूर्ण साबित होती है । मुद्दों की सत्यता और उन पर किए गए तर्क महत्वपूर्ण होते हैं । भाषा, शैली आदि गौण हो जाते हैं ।

तीसरे, चौथे भेदों में वैज्ञानिक जानकारी, उसके क्रम, भाषा आदि का सन्तुलन रखना पड़ता है । वैज्ञानिक बातें समझाने के लिए भाषा की सरलता कतिपय पारम्परिक/ सांस्कृतिक संकेत, भाषा-शैली आदि का उपयोग होता है । फिर भी वैज्ञानिक जानकारी देना ही इस साहित्य का मुख्य उद्देश्य होता है ।

पाँचवें प्रकार में भी माध्यम महत्वपूर्ण है । छठे प्रकार में तो केवल माध्यम ही महत्वपूर्ण है । यहाँ माध्यम की सहजता और सादापन तो महत्वपूर्ण है ही, साथ ही वह रसपूर्ण और मनोरंजक भी होना चाहिए । उसमें सर्व-सामान्य सुशिक्षित पाठकों में रुचि उत्पन्न करने की क्षमता होनी चाहिए । कहानी, उपन्यास, काव्य के माध्यम से थोड़ी-सी वैज्ञानिक जानकारी देने का प्रयास होना चाहिए । यह जानकारी भी क्लिष्ट नहीं होनी चाहिए । विज्ञान विषयक तत्वज्ञान, विचार रूपी भोजन है । उसमें मनोरंजन की शर्करा मिलाकर, मधुर बनाकर, पेश करना चाहिए । ज्युल वर्न लिखित 'अस्सी दिनों में पृथ्वी परिक्रमा' पुस्तक इसका उत्तम उदाहरण है । सम्पूर्ण उपन्यास के बाद अन्त में एक ही परिच्छेद में वैज्ञानिक तत्व प्रकट किया गया है, "पृथ्वी की परिक्रमा करते समय वह पूर्व दिशा की ओर जाता है, यही कारण है कि, वह अपने सम्पूर्ण प्रवास में 80 दिन देखता है, किन्तु लन्दन के निवासी 79 दिन ही देख पाते हैं । केवल इस एक तत्व को समझाने के लिए पूरा उपन्यास लिखा गया है ।"

मराठी साहित्य में पहले दो साहित्य भेद (प्रकार) करीब-करीब नहीं के बराबर हैं । किन्तु तीसरे प्रकार का साहित्य आजकल लिखा जा रहा है ।

मराठी विज्ञान साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है । प्राथमिक अवस्था में यह साहित्य केवल अनुवादित था । ई० सन् 1833 में हरि केशवजी का 'कॉनवर्सेशन ऑव

नेचुरल फिलॉसॉफी' ग्रंथ का अनुवाद प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'केरल कोकिल' नामक पत्रिका में कुछ लेख प्रकाशित हुए। दक्षिण अमेरिका के विचित्र प्राणी, अफ्रीकी पिग्मी, आदि विषयों पर लेखन हुआ। माध्यम थोड़ा सा मनोरंजनप्रधान होने के बावजूद यह साहित्य पहले पाँच प्रकारों के अन्तर्गत ही आता है।

वैज्ञानिक क्रान्ति के अग्रदूत इसके पूर्व भी साहित्य निर्माण कर रहे थे। ई० सन् 1829 में श्री ज० भा० क्रमवन्त, ई० सन् 1832 में बालशास्त्री जांभेकर, दादोबा पांडुरंग, लोकहितवादी देशमुख आदि मनीषी इस प्रकार के वैचारिक साहित्य लेखन का आरम्भ कर चुके थे। किन्तु उनके साहित्य का मुख्य आशय वैज्ञानिक प्रबोधन का था, वैज्ञानिक जानकारी देने का नहीं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार और प्रचार करने वाला लेखन विष्णुशास्त्री चिपलूणकर, महात्मा फुले, रानाडे, आगरकर, राजवाडे आदि लोगों ने किया। 'मराठी का पहला ज्ञानकोश'—चौथे प्रकार का साहित्य—डॉ० श्रीधर व्यंकटेश केलकर द्वारा लिखा गया। विज्ञान प्रबोधन का उत्तरदायित्व 20वीं शती में वा० म० जोशी, कर्मवीर वि० रा० शिंदे, न० चि० केलकर, जावडेकर आदि विद्वानों ने किया। किन्तु उनके साहित्य में सामाजिक प्रबोधन भी था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का और विज्ञानाधारित सामाजिक क्रान्ति का उद्‌घोष डॉ० र० धों० कर्वे, वि० दा० सावरकर आदि अपने साहित्य द्वारा कर रहे थे। यह परम्परा आज भी चालू है।

आज मराठी में करीब-करीब हर एक प्रकार का विज्ञान साहित्य लिखा जा रहा है। सीधी सरल भाषा में विज्ञान विषयक जानकारी देने वाला, वैज्ञानिकों का परिचय देने वाला बहुत-सा लेखन आज भी सतत् चालू है। इस तरह का लेखन करने वाले लेखकों में जहाँ एक ओर सुरेश मथुरे (विज्ञानाचे वायडे), वैज्ञानिकों के चरित्र लिखने वाले प्रा० ना० वा० कोगेकर (विज्ञानाचे शिल्पकार, भारताची विज्ञान भूषणे) जैसे जाने माने लेखक हैं, वहीं दूसरी ओर विज्ञान विषयक किन्तु सरल मनोरंजक भाषा में लिखने वाले 'निरंजन घाटे, प्रभाकर सोवनी, रा० वि० सोवनी, भालबा केलकर, डॉ० हेमन्त विझे, रमेश कावणोकर, बंसल कांडिल आदि अनेक लेखक हैं। इनमें से अनेक ने उच्च कोटि के मराठी साहित्य सृजन के लिए राज्यस्तरीय पुरस्कार भी पाये हैं। 'संवादों के द्वारा विज्ञान' नामक एक अनोखी विधा डॉ० मनोहर मोघे द्वारा प्रचलित की गयी, जिसके लिए उन्हें 'महाराष्ट्र राज्य उत्कृष्ट साहित्य निर्माण' का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। पुणे की 'अनिरुद्ध प्रकाशन' संस्था केवल विज्ञान साहित्य का प्रकाशन ही करती है। और भी कुछ प्रकाशन संस्थाएँ विज्ञान विषयक पुस्तकें प्रकाशित करती हैं। सृष्टि विज्ञान, विज्ञान युग, प्रगत विज्ञान, ज्ञान-विकास, विज्ञान-विहार, कृषि-मित्र, बली राजा आदि अनेक मासिक पत्रिकाएँ केवल इसी कार्य में जुटी हुई हैं। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र के प्रायः सभी प्रमुख समाचार-पत्रों द्वारा विज्ञान विषयक साहित्य की विशेष सामग्री सप्ताह में एक दिन प्रकाशित की जाती है। 'मराठी विज्ञान परिषद्' तथा और भी कई संस्थाएँ विज्ञान निबन्ध प्रतियोगिता

विज्ञान कथा प्रतियोगिता, आयोजित करके विज्ञान साहित्य लिखने के लिए प्रोत्साहन दे रही हैं। मराठी विज्ञान परिषद्, मासिक पत्रिका प्रकाशित करती है, वार्षिक विज्ञान सम्मेलन आयोजित करती है, आवश्यकतानुसार साहित्य भी प्रकाशित करती है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक डॉ० जयन्त विष्णु नारलीकर भी मराठी के सभी प्रकार के विज्ञान साहित्य में एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

इन सभी विज्ञान साहित्य के भेदों में विज्ञान कथा–उपर्युक्त वर्गीकरण का छठा भेद—एक आधुनिक भेद है। इसके अन्तर्गत कहानी, उपन्यास, काव्य आदि फुटकर साहित्य के सभी प्रकार आते हैं। यह वैज्ञानिक फुटकर साहित्य का प्रकार (Science Fiction) आधुनिक कहलाता है, किन्तु 1915 में 'मनोरंजन' पत्रिका में 'लारेंचे हास्य' नामक विज्ञान कथा छपी थी, ई० सन् 1950-55 तक ये विज्ञान कथाएँ बहुत कम संख्या में लिखी गईं। उसी समयावधि में 'हंस' और उसके बाद 'नवल' पत्रिकाओं में विज्ञान कथाएँ नियमित रूप में छप रही थीं। आजकल तो अनेक पत्रिकाओं के 'विज्ञान कथा विशेषांक' छपते हैं। उल्लेखनीय विज्ञान कथाकार हैं—द० चि० सोमण, द० पां० खाबेटे, ग० रा० टिकेकर, दि० वा० मोकाशी, गजानन क्षीरसागर, धनंजय जोशी, प० ग० सुर्वे, शं० र० देशपांडे, डॉ० बाल फोंडके, भालबा केलकर, शुभदा गोगटे, डॉ० जयन्त विष्णु नारलीकर, जगदीश काबरे आदि।

विज्ञान कथा की विधा साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न है। इस विधा के बारे में, "क्या इन कथाओं का उद्देश्य विज्ञान का प्रसार करना है", से लेकर "क्या इसे कथा कहा जा सकता है?" जैसे अनेक प्रश्न उठाये जाते हैं। साथ ही रहस्य कथा, गूढ़ कथा, साहस कथा, आदि को विज्ञान कथा कहा जाये या नहीं, यह भी प्रश्न उठाया जाता है। संक्षेप में विज्ञान कथा नामक विधा पर अधिक चर्चा की अपेक्षा है। विज्ञान कथा सम्पूर्ण वैज्ञानिक सत्य कहने का दावा नहीं कर सकती। बल्कि, उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी से आगे चलकर भविष्य के वैज्ञानिक आविष्कारों पर ही ये कथाएँ आधारित होती हैं। कथा में मनुष्य का उपस्थित रहना भी आवश्यक है। उसके बगैर मानवीय भावनाओं का चित्रण नहीं हो सकता। यही कारण है कि अन्य ग्रहों पर रहने वाले अति उन्नत मानव सदृश जीवों की कल्पना करके ही बहुत सी कथाएँ लिखी गईं। मराठी विज्ञान कथाओं में प्रायः निम्नलिखित विषय मिलते हैं—

1. अन्तरिक्ष कथा : अन्तरिक्ष यात्रा, उसमें आने वाली रुकावटें, दुर्घटना आदि।
2. पृथ्वी से इतर जीवों की कथायें : आक्रमण, भेंट, संघर्ष, आदि।
3. अन्तरिक्ष अथवा अन्य ग्रहों की बस्तियाँ : अन्तरिक्ष युद्ध।
4. ब्रह्मांड की वैश्विक संस्कृति का दर्शन।

5. मनुष्य द्वारा बनाई गई सर्व संहारक, कुटिल योजनाओं का चित्रण ।
6. यन्त्र मानव व संगणक (कम्प्यूटर) कथा—उनकी मानव जाति पर विजय अथवा उनका विद्रोह ।
7. जीन अभियांत्रिकी, जनन नियंत्रण से होने वाली समस्याएँ ।
8. मानव की अतींद्रिय शक्ति, बुद्धि का विकास आदि ।
9. कालयन्त्र—टाइम मशीन द्वारा काल से आगे या पीछे जाना ।
10. वैज्ञानिक प्रगति के कारण बदलने वाला मानवीय जीवन, नये-पुराने का संघर्ष आदि ।

इन विषयों को छोड़ अन्य विषयों पर आजतक मराठी साहित्य में नहीं लिखा गया । विज्ञान नाट्य तो नहीं के बराबर है । विज्ञान काव्य भी बहुत कम है । विज्ञान कथाकारों को फैन्टेसी का आधार किस हद तक लेना चाहिये ? या वही कथाबीज होना चाहिए ? ज्ञात विज्ञान को मान्य न होने वाले तत्वों का कथा में अन्तर्भाव करना चाहिए या नहीं ? वैज्ञानिक सन्दर्भ कितने सही हों ? किस परिभाषा का, कैसे प्रयोग किया जाय ? सामाजिक, धार्मिक, पारम्परिक संकेतों का प्रयोग कितना करें ? आदि अनेक प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं । इन सब प्रश्नों पर चर्चा होना आवश्यक है । इस कथा साहित्य की कसौटी उस साहित्यिक कथा पर निर्भर हो या उसमें अन्तर्भूत वैज्ञानिक सन्दर्भों पर ? यह भी प्रश्न उपस्थित होता है । किन्तु यह साहित्य इतना कम है कि उसे किसी भी कसौटी पर खड़ा करने के झमेले में न पड़ना और वह जैसा है वैसा ही उसे स्वीकृत करना उचित होगा । अपने आप ही इस साहित्य का विकास होता रहेगा ।

शिक्षाप्रद विज्ञान साहित्य में आलेख, छायाचित्र, आकृतियों आदि की आवश्यकता होती है । इसी वजह से प्रकाशन खर्च बढ़ता है, साथ ही कीमत भी बढ़ जाती है और पाठक वर्ग कम हो जाता है । इसलिए प्रकाशक इस प्रकार का साहित्य प्रकाशित करने के लिए तैयार नहीं होते । इस समस्या को कैसे हल किया जाय, इस पर विचार होना आवश्यक है ।

विज्ञान विषयक लेखन की एक परिभाषा हो, प्रकाशन में कथा तथा पुस्तकों की बिक्री में शासन का सहयोग प्राप्त हो, केवल कथात्मक वैज्ञानिक साहित्य पर जोर न देकर सभी प्रकार का विज्ञान विषयक लेखन विपुल मात्रा में किया जाय, और इन सभी विषयों पर गोष्ठियों द्वारा विचार हो ।

संक्षेप में ऐसा कहा जा सकता है कि विज्ञान साहित्य का हर प्रकार का उचित ढंग से उपयोग होना चाहिए । सभी भारतीय भाषाओं में जितना विज्ञान साहित्य लिखा

जाय उतना स्वीकार्य होना चाहिए। विज्ञान साहित्य के लिए उचित वैज्ञानिक परिभाषा होनी चाहिए। हो सके तो सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक संस्कृतोद्भूत विज्ञान शब्दावली होनी चाहिए। विज्ञान लेखन के लिए लेखकों को प्रोत्साहन सदृश कुछ पुरस्कार राज्य स्तर पर रखे जाने चाहिए। विज्ञान साहित्य प्रकाशकों को आर्थिक नुकसान न पहुँचे, इसलिए सरकार द्वारा कुछ खास योजना होनी चाहिए।

समाज जितना विज्ञानाभिमुख हो, उतनी ही राष्ट्र की प्रगति हो सकती है। यह विज्ञानाभिमुखता विज्ञान साहित्य से ही विकसित हो सकती है। दूरदर्शन जैसा एक बहुत बड़ा और जनप्रिय माध्यम विज्ञान प्रचारकों को मिला। इस माध्यम का अधिकतम और उचित ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक जानकारी देने वाला साहित्य जितना आवश्यक है, उतना ही वैज्ञानिक विचार प्रदान करने वाला, वैज्ञानिक दृष्टिकोण निर्माण करने वाला साहित्य आवश्यक है। इसलिए—कथा, उपन्यास, नाट्य द्वारा वैज्ञानिक दृष्टि-कोण फैलाने वाला सृजित विज्ञान साहित्य स्वीकार्य है।

□□
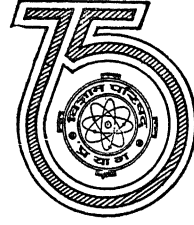
रसायन-शास्त्र के क्षेत्र में वैज्ञानिक हिन्दी का विकास

आचार्य रामचरण मेहरोत्रा

आधुनिक जीवन में विज्ञान तथा तकनीक के बढ़ते हुए महत्व के परिपेक्ष्य में जब इन क्षेत्रों में हिन्दी के उपयोग की ओर दृष्टिपात करते हैं तो एक ओर तकनीकी शब्दावली के सृजन तथा उसकी सहायता से मौलिक तथा अनूदित साहित्य के परिमाण से सन्तोष सा होता है और यह भी स्पष्ट आभास मिलता है कि अभी तो बहुत मंजिलें पार करनी हैं।

यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य युग में मेकाले के प्रभाव से देश में अंग्रेजी भाषा का बोलबाला हो रहा था, परन्तु इसी समय से कुछ उत्साही देशवासियों का ध्यान हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की ओर भी आकर्षित हुआ था। उदाहरण के लिए रसायन शास्त्र के क्षेत्र में वाराणसी के डा० बैलेनटीस ने एक मौलिक पुस्तक लिखने के ध्येय से संस्कृत में रसायनशास्त्र के तकनीकी शब्द गढ़ने की प्रक्रिया का सूत्रपात किया। श्री विशम्भर नाथ वर्मा द्वारा लिखित पुस्तक "रसायन संग्रह" सन् 1896 में कलकत्ता से प्रकाशित हुई। पाण्डे महेश चरण सिंह की मौलिक पुस्तक "हिन्दी रसायन" इण्डियन प्रेस, प्रयाग से सन् 1909 में प्रकाशित हुई। श्री रामशरणदास सक्सेना द्वारा लिखित "गुणात्मक रासायनिक विश्लेषण" नामक पुस्तिका 1919 में गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार द्वारा प्रकाशित की गई।

जहाँ तक पारिभाषिक शब्दावली का प्रश्न है सन् 1906 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रथम विस्तृत वैज्ञानिक शब्दकोश प्रकाश में आया। यह वृहत् कार्य प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान श्री श्याम सुन्दर दास के सम्पादन में सम्पन्न हुआ और

इस कोश का द्वितीय संस्करण 1931 में प्रकाशित किया गया। पारिभाषिक शब्दावली के सृजन में डा० रघुबीर का योगदान तो सर्वविदित है ही। इसके अतिरिक्त गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार, विज्ञान परिषद प्रयाग और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

वैज्ञानिक साहित्य सृजन में भी अनेकों संस्थाओं का योगदान उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए सन् 1913 में प्रयाग में "विज्ञान परिषद" नामक संस्थान की स्थापना हुई थी जिसका मुख्य ध्येय ही था कि हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के बढ़ते हुए ज्ञान को जन साधारण तक पहुँचाया जाए और इसी ध्येय पूर्ति के लिए "विज्ञान" नामक मासिक पत्रिका लगभग 75 वर्षों से बराबर प्रकाशित होती रही है। समस्त हिन्दी जगत को रामदास गौड़, सालिग्राम भार्गव, गोरखप्रसाद, फूलदेव सहाय वर्मा तथा सत्य प्रकाश जी ऐसे महानुभावों का आभारी होना चाहिए कि इनके सतत् निःस्वार्थ प्रयासों के फलस्वरूप विज्ञान के विविध विषयों पर इतनी वृहद् सामग्री उपलब्ध हो सकी है जो प्रायः आगामी लेखकों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। यह तो उदाहरण है कुछ हिन्दी प्रेमियों के अथवा प्रयासों की आंशिक सफलता का। बिना किसी आर्थिक या इस शताब्दी के चौथे दशक में मिली रु० 600/-साल की हास्यास्पद सहायता के सहारे प्रतिकूल वातावरण में इतना वृहद् कार्य चला पाना कितना कठिन रहा होगा। इसका छोटा सा अनुभव मुझे भी सन् 1947 से 1949 तक "विज्ञान" मासिक के सम्पादन भार संभालते समय हुआ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में राष्ट्रीय स्वाभिमान की जो एक लहर आई थी, उसको यदि उच्च वर्गों के गिनेचुने अंग्रेजीदां पनपने देते और अपने क्षणिक स्वार्थ के कारण उसमें रोड़े न अटकाते तो तीन-चार दशकों में आज तक सब क्षेत्रीय भाषाएँ अधिक उन्नत स्तर पर होतीं और हिन्दी सब क्षेत्रों को एक सूत्र में बाँधने वाली सम्पर्क या राष्ट्रभाषा के रूप में निर्विवाद रूप से स्वीकृत होती। इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र ऐसे समाज विज्ञान के विषयों का पठन-पाठन तो स्वतन्त्रता के दो-एक साल बाद ही कुछ विश्वविद्यालयों में आरम्भ हो गया था, परन्तु विज्ञान, इंजीनियरिंग तथा चिकित्साशास्त्र ऐसे विषयों के लिए मुख्य समस्या उपयुक्त शब्दावली की थी। शब्दावली निर्माण का कार्य वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड के मार्ग दर्शन में सन् 1952 में शिक्षा मंत्रालय में एक "हिन्दी अनुभाग" के अधीन आरम्भ हुआ था। धीरे-धीरे इस हिन्दी अनुभाग का विस्तार हुआ और सन् 1960 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना हुई, जिसके कठिन परिश्रम के फलस्वरूप सन् 1973 में विभिन्न विषयों में स्नातकोत्तर स्तर के लिए एक लाख तीस हजार शब्दों का "वृहद् पारिभाषिक शब्द संग्रह" प्रकाशित किया गया। गत कुछ वर्षों से आयोग विभिन्न विषयों में शब्दों के पारिभाषिक कोष लिखवाने का प्रयत्न कर रहा है तथा विज्ञान के अतिरिक्त इंजीनियरिंग और चिकित्साशास्त्र ऐसे विषयों में भी शब्द कोश तथा पठन-पाठन की सामग्री उपलब्ध करवाने की ओर अग्रसर है।

अपने देश की विशिष्ट परिस्थितियों में शब्द कोषों का तो महत्व है ही परन्तु साथ ही कठिन से कठिन विषयों पर पुस्तकें लिखने के प्रयास में स्वतः ही शब्द गढ़े जाते हैं और इस प्रकार के शब्द प्रायः अधिक उपयुक्त होते हैं।

सन् पचास के दशक में, प्रयाग विश्वविद्यालय ऐसी संस्था में, जहाँ आई० सी० एस०, आई० ए० एस० ऐसी सरकारी नौकरियों का ही बोलबाला था, वहाँ भी कक्षा में पूछने पर कि कितने विद्यार्थी हिन्दी में पढ़ना चाहते हैं, तो लगभग 70 से 80 प्रतिशत विद्यार्थी हिन्दी के माध्यम से पढ़ना चाहते थे। आज 25-30 वर्षों बाद यदि कक्षा में वही सवाल फिर दुहराता हूँ तो 25 प्रतिशत से अधिक विद्यार्थी हिन्दी में पढ़ना नहीं चाहते। अपनी राष्ट्रीय भावनाओं में कितनी गिरावट आई है, यह इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

उपर्युक्त सोचनीय स्थित का क्या कारण है? आजकल हिन्दी क्षेत्रों के अधिकतर स्कूलों में तो सब विषयों की पढ़ाई हिन्दी में होने लगी है। हो सकता है कि सभी विषयों में पर्याप्त संख्या में अच्छी पुस्तकें उपलब्ध न हों, तो भी पहले से और विशेष रूप में विभिन्न अकादमियों में पिछले दो दशकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप कठिन से कठिन विषयों पर अच्छी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। इन सब परिस्थतियों की अनुकूलता के होते हुए भी हमारा विद्यार्थी अंग्रेजी के माध्यम को पसन्द करता है जिसमें कुछ समझ पाना उसके लिए और भी कठिन हो रहा है, क्योंकि उसकी सब बुनियादी पढ़ाई हिन्दी ही में हुई है। इसका मुख्य कारण हमारे देश की ढुलमुल नीति है और देश में बढ़ती हुई बेकारी मे विदेशी नौकरियों का आकर्षण है।

आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान के ज्ञान को जन साधारण तक पहुँचाने का कार्य कितना महत्वपूर्ण है इसके दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। प्रायः उच्च स्तर पर विज्ञान की शिक्षा अपनी मातृभाषा में हो इसके विरोध में यह तर्क दिया जाता है कि उच्चतम ज्ञान का भण्डार अंग्रेजी में सबसे ज्यादा तेजी से बढ़ रहा है और अपनी मातृभाषा में शिक्षित विद्यार्थी इस ज्ञान से पूरा लाभ न उठा सकेंगे। जब रूसी, चीनी, जापानी, सब इस अँग्रेजो के ज्ञान से लाभ उठा सकते हैं तो अँग्रेजी की इतनी पुरानी थाती के वातावरण में पले विद्यार्थियों को क्यों कठिनाइ आएगी, यह बात समझ में नहीं आ सकती। परन्तु फिर भी यदि इस बात के महत्व को कुछ देर के लिए मान भी लिया जाये तो विज्ञान के सरल ज्ञान को जन साधारण तक पहुँचाने का कार्य विदेशी भाषा के माध्यम से नहीं हो सकता, इस बात को तो अंग्रेजी के बड़े से बड़े समर्थकों को भी मानना पड़ेगा। इस ओर कभी-कभी दबी जबान से यह भनक सुनाई सी पड़ती है कि हमारी जनता की रुचि ही इस ओर नहीं है। इस बात की असत्यता को सिद्ध करने के लिए भी मैं एक अपने अनुभव की शरण लेने की क्षमा याचना करूँगा। विज्ञान और तकनीक के महत्व को समझते हुए स्वातंत्र्य काल के आरम्भ ही से कौंसिल आफ साइंटिफिक ऐण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च के अन्तर्गत अनेकों अनुसन्धानशालाओं का आरम्भ किया गया और इस

कौंसिल ने विशेष कर अपनी प्रयोगशालाओं की उपलब्धियों को और विज्ञान के सरल ज्ञान को जन साधारण तक पहुँचाने के लिए "विज्ञान प्रगति" नामक मासिक का शुभारम्भ सन् 1954 में किया, परन्तु इसको ऐसा सौतेला बर्ताव मिल रहा था कि 1962 तक इसका वितरण लगभग दो-ढाई सौ तक ही रहा। 1963 में कौंसिल के शासक बोर्ड में जब मैंने यह प्रश्न उठाया तो पंडित नेहरू को इससे बड़ा क्षोभ हुआ और इन्होंने इस स्थिति को फौरन सुधारने के आदेश दिये और मुझ पर उसका उत्तरदायित्व सौंपा। हम दो-तीन व्यक्तियों के मामूली प्रयास से ही इसी 'विज्ञान प्रगति' का वितरण दो-तीन वर्षों में प्रति मास ढाई सौ से बढ़ कर एक लाख से भी ऊपर पहुँच गया। स्पष्ट है कि हमारे जन साधारण में नये ज्ञान की ओर विरक्ति नहीं है वरन् हमारे प्रयत्नों में ही कमी रह जाती है, जिसके कारण वे नये ज्ञान की लहर से वंचित रह जाते हैं।

हमारे देश में उच्चतम स्तर तक विज्ञान की शिक्षा का माध्यम बनाने में प्राथ: यह भी संशय व्यक्त किया जाता है कि विभिन्न विषयों की शब्दावली और पाठ्य पुस्तकों तथा अन्य साहित्य पर इतना कार्य हो जाने पर हिन्दी भाषा में इतनी क्षमता नहीं है कि शोध के स्तर पर इसका उपयोग किया जा सके। विज्ञान परिषद, प्रयाग द्वारा 'अनुसंधान पत्रिका' का प्रकाशन तो 1958 ई० से ही निरन्तर हो रहा है। इधर 10-11 वर्षों से राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी से 'रसायन समीक्षा' नामक पत्रिका के प्रकाशन ने रसायन शास्त्र ऐसे जटिल विषय का उदाहरण लेकर सिद्ध कर दिया है कि क्लिष्ट विषय का आधुनिकतम ज्ञान हिन्दी द्वारा प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई नहीं रह गई है। सच तो यह है कि विज्ञान के विद्यार्थी और अध्यापक के रूप में मेरा तो यह अनुमान है कि हमारे देश में वैज्ञानिक कार्य का स्तर सर्वोच्च कोटि का नहीं हो पाता, इसके कारणों में प्रमुख कारण विदेशी अपरिचित भाषा का शिक्षा-माध्यम होना है। आज से 40-50 वर्ष पहले परतंत्र काल तक जब मेरी श्रेणी के व्यक्ति विद्यार्थी थे तो स्कूली शिक्षा का प्रमुख अंग अंग्रेजी भाषा होती थी और इसके बाद इस विदेशी भाषा में इतना ज्ञान कम से कम सम्भव हो पाता था कि वैज्ञानिक पुस्तकों के मर्म को समझ सके। तथापि हम भी सोचते तो अपनी मातृभाषा ही में थे, परन्तु फिर भी कुछ काम तो चल ही जाता था। स्वाभाविक ही है कि आजकल अंग्रेजी की शिक्षा को उतना महत्व नहीं दिया जा सकता और इसके फल-स्वरूप टूटी-फूटी अंग्रेजी के ज्ञान के सहारे विज्ञान के गूढ़तम विषयों को समझ पाना नई पीढ़ी के लिए अत्यन्त ही कठिन हो उठा है।

हिन्दी को शिक्षा तथा ज्ञान का माध्यम बनाने के मेरे ऐसे समर्थक अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं के अध्ययन के विरुद्ध नहीं हैं। आज की संकुचित होती हुई दुनियाँ में विदेशी भाषाओं के ज्ञान का महत्व तेजी से बढ़ता जा रहा है। प्रश्न केवल यह है कि इन विदेशी भाषाओं का ज्ञान किस स्तर पर ग्रहण किया जाये। आधुनिक ज्ञान की जिस पिछड़ी हुई परिस्थिति में हमारे देश को इस कमी को दूर करने के लिए नई नीति निर्धारण करने का अवसर मिला, लगभग कुछ वैसी ही परिस्थितियों में होकर तीन-चार दशकों से

चीन भी गुजर रहा है। इस थोड़े से समय में चीन में हर विषय का वृहत् साहित्य ही चीनी भाषा में उपलब्ध नहीं कराया गया है वरन् वहाँ उच्चतम स्तर का सब कार्य ही चीनी भाषा में ही होता है, यहाँ तक कि उनके वैज्ञानिकों के अधिकांश अनुसंधान लेख चीनी भाषा में ही छपाये जाते हैं। रूस का वैज्ञानिक स्तर उनकी निर्णायक क्रांति के समय इतना नीचा नहीं था, परन्तु विभिन्न 16 प्रादेशिक भाषाओं की समस्या उनके यहाँ भी हमारे देश की ही भाँति जटिल थी। सब सोलह भाषाओं में शब्दावली उपलब्ध कराने का वृहत् कार्य सोवियत संघ को भी करना पड़ा और वह अब भी जारी है। रूस में अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में छपे अनुसन्धान लेखों का बराबर अनुवाद किया जाता है और वैज्ञानिकों को विदेशी भाषाएं पढ़ने और अन्य भाषाओं में छपे लेखों को सीधा समझने को भी प्रोत्साहित किया जाता है जिससे आज के अति तीव्र गति से बढ़ते हुए ज्ञान की होड़ में वे किसी भी कारण जरा भी पिछड़ न जाएं। यह सब होते हुए भी शिक्षा और आंतरिक अनुसन्धान गोष्ठियों आदि का माध्यम तो अपनी भाषा है; तभी तो रूसी में छपे साहित्य को पश्चिमी देश इतना महत्व देते हैं कि अमरीका में रूसी भाषा में प्रकाशित विज्ञान के अनुसन्धान लेखों को तुरन्त ही अनुवाद करने की वृहत् योजना कार्य कर रही है। जापान में द्वितीय महायुद्ध के बाद ज्ञान की परिस्थिति काफी अच्छी होते हुए भी उन्होंने विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में अग्रणी रहने का विशेष प्रयत्न किया। अधिकांश जापानी वैज्ञानिक थोड़ी बहुत अंग्रेजी जानते हैं, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय कांफ्रेंसों में उन्हें अपनी टूटी-फूटी अग्रेजी के ज्ञान पर कोई लज्जा नहीं आती; साथ ही ज्ञान भंडार की दक्षता के कारण उन्हें विशेष आदर से सुना जाता है और उनकी बात के मर्म को समझने का विशेष प्रयत्न किया जाता है। हमारे देश में तो कोई वैज्ञानिक हिन्दी में अपनी बात कहने भी लगे तो उसकी ओर लोग अजीब निगाह से देखने लगते हैं। सन् 1979 में इंडियन साइंस कांग्रेस के अध्यक्ष पद से अपना अभिभाषण अंग्रेजी में ही पढ़ते समय जब मैने आरम्भिक दो-चार वाक्य प्रतीकात्मक रूप से हिन्दी में कहे, तो कुछ ऐसी ही अनुभूति मुझे भी हुई थी।

अपने देश के विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी के उपयोग के बारे में पिछले 3-4 दशकों में किये गये प्रयासों का उल्लेख करते समय मैंने कुछ व्यक्तिगत अनुभवों का भी जिक्र किया है; इसके औचित्य के लिए क्षमा प्रार्थी होते हुए भी मुझे आशा है कि इससे समस्या की विभिन्न प्रवृत्तियों और समस्याओं को अधिक विश्वसनीय रूप से स्पष्ट किया जा सका है। यद्यपि बहुत लम्बा और बहुमूल्य समय निकल चुका है, परन्तु स्थिति सर्वथा निराशा-जनक नहीं है। विज्ञान के विभिन्न विषयों और स्तरों पर प्रकाशित साहित्य की तालिकाएं उपलब्ध हैं। इनसे यह स्पष्ट होगा कि भौतिक तथा जैविक विज्ञानों के तो मुख्य विषयों और उनकी प्रमुख शाखाओं के लिए स्नातकोत्तर स्तर का साहित्य लिखा जा चुका है। कुछ बिशिष्ट स्थलों पर जैसे पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय में तो हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य कक्षा में उपयोग के दृष्टिकोण से ही लिखा गया है; अन्यत्र इस नये साहित्य की उपयुक्तता के बारे में प्रश्न उठ सकते हैं परन्तु उनका समाधान कठिन नहीं है। परन्तु हाँ

चिकित्साशास्त्र और इंजीनियरिंग के क्षेत्रों में न केवल साहित्य ही का अभाव है अपितु शिक्षकों और नीति-निर्धारकों की मनोवृत्ति ही विपरीत दिशा में कार्य कर रही है। इसमें कुछ आंशिक योगदान इन संकायों के विद्यार्थियों का विदेशी नौकरी के प्रति प्रलोभन का भी है, जिसमें अंग्रेजी भाषा का ज्ञान विशेष रूप से सहायक होता है। इन विषयों के कार्य की कठिनता को देखते हुए इन विषयों साहित्य की रचना का कार्य केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने ले रखा है। इस ओर विशेष उत्साह से प्रगति करने की नितान्त आवश्यकता है। स्कूलों में हिन्दी माध्यम से पढ़कर आने वाले विद्यार्थियों को यदि यह विश्वास हो जाए कि उनकी सरलता से समझ में आने वाली मातृभाषा में विषय का पठन-पाठन हो सकता है, तो उनके आग्रह को अधिक दिनों तक टाला नहीं जा सकेगा। विदेशों में नौकरी के लिए इच्छुक एक छोटे अंश के विद्यार्थी समाज को छोड़ कर चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग संकायों के अधिकांश विद्यार्थी अन्य संकायों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अपने भविष्य से अधिक आशान्वित हैं और इस ज्ञानार्जन में उनकी रुचि भी अधिक है और यही रुचि हिन्दी में पठन-पाठन करने में सहायक होगी।

दूसरा प्रश्न विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में गढ़ी गई पृथक-पृथक पारिभाषिक शब्दावलियों का है। प्रसन्नता की बात है कि केन्द्रीय संस्थान के प्रयासों के फलस्वरूप यह प्रदर्शित किया गया है कि इनमें इतनी भिन्नता नहीं है, जितनी कि अनुमान की जाती थी और थोड़े से प्रयत्न से इसे और भी कम किया जा सकता है, जो इच्छित दिशा में प्रगति करने में विशेष रूप से सहायक होगी।

सबसे प्रमुख बात तो मनोवृत्ति की है कि हम सब में अपनी मातृभाषा का गर्व हो और केवल विदेशी भाषा में दक्षता ही को हम अपनी प्रगति का मापदण्ड न बनाये रहें। आज देश में शिक्षा स्तर को उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। आशा है इस दिशा में भाषा के महत्व को ठीक से आँक कर सही दिशा में कदम उठाये जायेंगे जिससे कि आगे आने वाली पीढ़ी विदेशी भाषा की हीन दासता से ग्रसित और फलस्वरूप आधुनिक ज्ञान से भी वंचित न रह जाये।

□□

इंजीनियरी विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी की प्रगति

विश्वम्भर प्रसाद 'गुप्त-बन्धु'

यह निर्विवाद सत्य है कि मानव जीवन के लिए कलाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मानव जीवन के लिए उपयोगी कलाऐं मुख्य रूप से दो वर्गों में बाँटी गई हैं। ललित कला, और व्यावहारिक कला। इन दोनों में अन्तर बहुत कम है। ललित कलाएँ मनोरंजन प्रधान होती हैं किन्तु वे मानव जीवन के लिए उपयोगी भी होती हैं और व्यावहारिक कलाएँ व्यापक व्यवहार की कलाएँ होते हुए भी मानव-मन को रंजित करने वाली अवश्य होनी चाहिए। इन दोनों के मध्य भ्रम दूर करने के लिए ललित कला को अब मानविकी कहा जाने लगा है और व्यावहारिक कला को विज्ञान।

विज्ञान का एक रूप होता है विशुद्ध विज्ञान, जिसमें पदार्थों के रूप, गुण, व्यवहार आदि का कोरा अध्ययन होता है और दूसरा रूप होता है व्यावहारिक विज्ञान जिसमें विशुद्ध विज्ञान के अन्तर्गत प्राप्त हुए ज्ञान का मानव-हित में प्रयोग किया जाता है। व्यावहारिक विज्ञान की दो मुख्य धारायें हैं : इंजीनियरी वा प्रौद्योगिकी और चिकित्सा शास्त्र। इन दोनों ही धाराओं का मानव-हित की दृष्टि से बड़ा महत्व है और इनके ज्ञान का प्रसार सारी जनता में होना आवश्यक है। इसलिए साहित्य, स+हित से निष्पन्न होने के कारण, यदि जन-हित-साधक है तो व्यावहारिक विज्ञानों के विषय उसमें अवश्य होने चाहिए और वह राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है।

व्यावहारिक विज्ञान का प्राचीन वाङ्मय

भारत में इन दोनों ही धाराओं के बारे में प्राचीन ज्ञान प्रायः संस्कृत में लिपिबद्ध है। किन्तु चिकित्सा-शास्त्र या आयुर्वेद का बहुत सा प्राचीन ज्ञान कुछ नवीन जानकारी के

साथ हिन्दी में भी उपलब्ध कराया गया है। इंजीनियरी भी, जिसके अन्तर्गत प्रौद्योगिकी भी किसी सीमा तक आ जाती है, प्राचीन भारत में बहुत समृद्ध थी, जैसा कि इसके विपुल साहित्य से प्रकट होता है। किन्तु प्राचीन इंजीनियरी साहित्य प्रायः सारा का सारा संस्कृत में ही उपलब्ध हैं।

इंजीनियरी में हिन्दी का प्रवेश

शिल्पी और इंजीनियरी शिक्षा-संस्थानों में अँग्रेजी में ही पढ़ाई होती थी। इसलिए इन विषयों की पारिभाषिक शब्दावली बनाने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं हुआ। फिर भी विद्वानों के प्रयत्न जारी रहे। 1930 और 1940 के बीच अजमेर के श्री सुखसंपतराय भंडारी ने कितने ही शिल्प-विज्ञानों की, जैसे, इंजीनियरी, औषधि-विज्ञान आदि की बड़ी शब्दावली प्रकाशित की और औद्योगिकी तथा पाश्चात्य औषधि-विज्ञान पर भी कई पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हुईं।

हिन्दी के अखिल भारतीय स्वरूप ने इंजीनियरों को विशेष आकृष्ट किया और अपने ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी के प्रयोग पर उन्होंने विचार करना आरम्भ किया। इनमें एक महत्वपूर्ण रचना 'गृह विज्ञान' (लेखक श्री वी० सी० एस० मेहता) हिन्दी पुस्तक भंडार नागपुर से इस सदी के (शायद) तीसरे या चौथे दशक में प्रकाशित हुई थी। लगभग उसी समय महाराष्ट्र के प्रख्यात इंजीनियर, आर० एस० देशपांडे ने वास्तु-शास्त्र सम्बन्धी अपनी दो मराठी पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किये। ये रचनायें इंजीनियरों के अतिरिक्त जन-सामान्य में भी बहुत लोकप्रिय हुईं। इनमें पारिभाषिक शब्दों के लिए बहुधा प्रचलित शब्द और साथ में अँग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त हुए थे। किन्तु पारि-भाषिक शब्दों की आवश्यकता सभी लेखक विशेष रूप से अनुभव करते थे।

बंगाल सरकार ने 1877 में ही एक विशेषज्ञ-समिति नियुक्त की थी जिसके एक सदस्य श्री राजेन्द्र लाल मित्र ने विषय की विशालता से चकित होकर सर्व-सम्मति से कुछ कर सकने में निराशा ही प्रकट की थी। किन्तु विद्वान हतोत्साहित नहीं हुए। 1943 से 1946 तक डा० रघुवीर ने अपना अँग्रेजी-भारतीय भाषा कोश चार खण्डों में प्रकाशित किया। उनका काम आगे भी चलता रहा और 1955 में उन्होंने अपना वृहत् अँग्रेजी-हिन्दी कोश प्रकाशित किया, जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयों के शब्द हैं।

वार्तकीय परिभाषा मंडल

चौथे दशक में ही महाराष्ट्र में पारिभाषिक शब्दावली निर्माण करने के लिए एक वार्तकीय परिभाषा मंडल बना था जिसके प्रमुख आधार स्तम्भ प्राध्यापक सखाराम विनायक आपटेजी एम० ए० थे। आपने अन्य-अन्य शास्त्र-विभागों में शब्दावली निर्माण का काम अविरत रूप से 1932 से जारी रखा था। संस्कृत वाङ्मय का और भाषा का आपका

ज्ञान प्रगाढ़ था। संस्कृत शब्दों के व्युत्पादन में आपकी विशेष गति थी। इस मंडल के दो और स्थायी सदस्य श्री त्र्यंबक गोबिन्द ढवलेजी, गणितज्ञ और श्री विष्णु सखाराम घाटेजी एल० सी० ई० थे। श्री ढवलेजी मौसम विज्ञान विभाग के एक कार्यकर्ता थे और श्री घाटेजी रिटायर्ड रेलवे इंजीनियर थे। ये दोनों भी संस्कृत और हिन्दी के अच्छे जानकार थे।

इंस्टीट्युशन आफ इंजीनियर्स की पहल

भारतीय इंजीनियरों के विषय में यह बात अवश्य सन्तोषजनक है कि योरपीय संस्कृति भारत में फैलने से पहिले जो शिल्प-शास्त्र यहाँ प्रचलित था, उसके प्रति विरोधी भावना आंग्ल परिपाटी के भारतीय इंजीनियरों में कभी नहीं रही, भले ही कई अन्य शास्त्रों के क्षेत्र में आधुनिक विद्वानों की और संस्थाओं की प्रवृत्ति अपनी-अपनी प्राचीन प्रणाली के ग्रन्थों और व्यवसायियों को पद-दलित करने की ओर रही हो, चाहे वह शासन के शिक्षा-प्रसार के फलस्वरूप हो या फिर नए की चकाचौंध के प्रति आकर्षण के कारण। किन्तु इंजीनियरों में अपने प्राचीन गौरव के प्रति आस्था, स्वदेशी के प्रति प्रेम और स्वाभिमान की मात्रा सदा ही विद्यमान रही है। यहाँ भारतीय शिल्प-शास्त्र की उत्कृष्टता का उचित गर्व भी लोगों में हीन भावना पनपने से रोकता रहा।

इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स (इंडिया) इंजीनियरों की एक अखिल-भारतीय संस्था है जिसे 1935 में रायल चार्टर प्राप्त हुआ था। तब से इसे एक अखिल-भारतीय विश्व-विद्यालय का दर्जा प्राप्त है (जिसके इस समय लगभग पचास-साठ हजार छात्र देश भर में फैले हुए अपनी निजी तैयारी करते और स्नातक स्तर तक की परीक्षाएँ देते हैं)। इस इंस्टीट्यूशन के मुख-पत्र (जरनल) में हिन्दी का प्रवेश भारतीय गणराज्य के आरम्भ के पहिले ही हो चुका था—इंस्टीट्यूशन की कौंसिल ने **7-7**-1949 की अपनी बम्बई की बैठक में ऐतिहासिक 21वाँ प्रस्ताव पास करने अपने अँग्रेजी जरनल में हिन्दी विभाग आरम्भ करने का निश्चय कर लिया था। इस प्रकार जहाँ वार्तकीय परिभाषा मंडल ने पारिभाषिक शब्दावली बनाने से महत्वपूर्ण प्रगति कर रखी थी और कई लेखकों ने हिन्दी में पुस्तकें लिखना आरम्भ कर रखा था। शोध-निबन्धों में हिन्दी का प्रयोग करने और हिन्दी की एक विशेष शैली, जो तकनीकी कार्य के उपयुक्त हो, प्रस्तुत करने में इंस्टीट्यूशन ने ही पहल की; और इसका श्रेय अत्यन्त दूरदर्शी कौंसिल-सदस्य पूनावासी **श्री नरहरि सदाशिव जोशी**, ए० एम० आई० ई० को जाता है जो बम्बई लोक निर्माण विभाग के रिटायर्ड सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर थे और स्वयं अहिंदी भाषी होते हुए भी जिनका अडिग विश्वास था कि देश की एकता और प्रगति तथा इंजीनियरी विज्ञान का अपेक्षित प्रचार-प्रसार हिन्दी के माध्यम से ही सम्भव है। भारतीयता के पुजारी एक अन्य सदस्य मेजर नारायण बालकृष्ण गद्रे, एम० आई० ई०, आई० एस० ई० (रिटायर्ड) ने तो यहाँ तक

सुझाया था कि इंस्टीट्यूशन को 'भारतीय शिल्प-शास्त्र परिसंख्या' नाम देता अधिक उपयुक्त होता, यद्यपि अनेक वैज्ञानिक कारणों से यह सम्भव नहीं हुआ।

गद्रेजी ने इंस्टीट्यूशन के सामने यह प्रस्ताव भी रखा था कि संस्कृत तथा अन्य सभी भारतीय भाषाओं में विद्यमान वाङ्मय का पूरा संग्रह हर एक केन्द्र में किया जाए और ऐसे ग्रन्थों में से स्वीकार करने योग्य पारिभाषिक शब्दों की खोज में एक-एक स्थायी समिति हर एक केन्द्र में नियुक्त की जाये जिससे सरकारी अधिकारियों और चित्रों को शब्दों के चुनाव में पूरी सहायता मिलती रहे। इसके अनुसार भारतीय शिल्प-वाङ्मय सम्बन्धी प्रदर्शिनी, कई स्थानों पर लगाई गई थी और अब वह स्थायी रूप से नागपुर में है।

भारत सरकार का हाथ

इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स ने वार्तकीय परिभाषा मंडल के साथ मिलकर 1950 से चार साल तक बहुत परिश्रमपूर्वक खास शिल्पीय दृष्टिकोण से सम्पादित लगभग डेढ़-दो हजार इंजीनियरी शब्दों का समूह प्रस्तुत किया और मेजर गद्रे ने 1954 में भारतीय शिक्षा मन्त्री के कार्यालय की शिल्प-परिभाषा विज्ञान समिति के सामने अपने विचार रखे। उन्होंने स्पष्ट किया कि यद्यपि संस्कृत के विद्वानों ने बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में महत्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु शिल्प-साहित्य की उन्नति इंजीनियरों के ही प्रयत्न से होगी। फलस्वरूप भारत सरकार ने अपना सांविधानिक उत्तरदायित्व समझा और शिक्षा मंत्रालय के हिन्दी विभाग को धीरे-धीरे सुदृढ़ करते हुए 1 मार्च 1960 को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना कर दी। इसके अन्तर्गत विभिन्न विषयों की विशेषज्ञ-समितियाँ काम करती थीं, जिनकी संख्या 1961 तक 26 हो गई और लगभग तीन लाख शब्द तैयार कर लिये गये।

इंस्टीट्यूशन के उत्साही सदस्यों की प्रेरणा से अक्तूबर 1961 में ही डा० डी० एस० कोठारी के सभापतित्व में एक वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग नियुक्त हो गया।

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग अब भी शब्दावली पर काम कर रहा है। लगभग सभी विज्ञानों की शब्दावलियाँ तैयार हो चुकी हैं। इंजीनियरी का एक वृहत् अँग्रेजी-हिन्दी शब्द-कोश प्रकाशित हो चुका है और परिभाषा-कोश बन रहा है। हिन्दी-अँग्रेजी कोश बनाने की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है।

हिन्दी में इंजीनियरी साहित्य का निर्माण

पाठ्य पुस्तकें और अनुषंगी (सहायक) पुस्तकें तैयार करने की ओर भी सरकार का ध्यान गया है। विश्वविद्यालय स्तर की मौलिक पुस्तकें लिखने और अँग्रेजी की मानक

पुस्तकों का अनुवाद करने की दिशा में व्यापक प्रयास हुए हैं। विभिन्न आई० आई० टी० संस्थाओं और रुड़की विश्वविद्यालय की मदद से कार्य कराया जा रहा है। देश के पाँच हिन्दी-भाषी राज्यों में हिन्दी अकादमियाँ बनी है जिन्हें पालिटेकनीक स्तर तक की पुस्तकों के प्रकाशन का काम सौंपा गया है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा किए हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार 1979 तक लगभग पाँच सौ पुस्तकें इंजीनियरी की विभिन्न शाखाओं में तैयार हो चुकी थीं, जिनमें से सिविल, यांत्रिक और विद्युत् इंजीनियरी की 332 पुस्तकों की एक अन्तिम सूची इंस्टीट्यूशन के जरनल के दिसम्बर 1979 अंक में और कृषि इंजीनियरी की 104 पुस्तकों की एक सूची अप्रैल 1982 अंक में छपी है।

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद ने 1966 से 1980 तक 15 वर्ष में प्रकाशित हिन्दी वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य की एक निदेशिका प्रकाशित की है जिसके, अनुसार 3000 से भी अधिक पुस्तकों का प्रकाशन उस अवधि में हुआ था। ये चिकित्सा विज्ञान से लेकर इंजीनियरी, कृषि तथा अन्य सभी जन-सामान्य के तथा स्कूल-कालेजों के वैज्ञानिक विषयों की है। पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन बराबर जारी है। भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालय तथा विभाग पुस्तकों के लेखन तथा प्रकाशन को प्रोत्साहित करने के लिये अनेक पुरस्कार-योजनाएँ चलाते हैं।

वैज्ञानिक और तकनीकी पत्र-पत्रिकाएं

यह एक रोचक तथ्य है कि हिन्दी में वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं की कमी नहीं है। आज कृषि चिकित्सा, इंजीनियरी, भू-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान आदि अनेक विषयों पर हिन्दी में नियमित रूप से लगभग 321 पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। शोध-पत्रिकाएँ भी निकलती है, जिनमें से "विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका" और "इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स का हिन्दी जरनल" प्रमुख हैं। इस जरनल की इस समय 11000 प्रतियाँ छपती है और समय-समय पर विशेषांक भी निकलते हैं जिनमें सामयिक महत्व के उच्च कोटि के शोध-निबन्ध होते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि अनेक वैज्ञानिक पत्रिकाएँ 70-75 साल से नियमित प्रकाशित हो रही हैं। उदाहरण के लिए "आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका" 1913 से "विज्ञान" 1915 से और "उद्यम" 1918 से लगातार निकल रही है। इनके अतिरिक्त उच्च स्तर की विज्ञान-कथाएँ और लेख साप्ताहिक हिन्दुस्तान, विज्ञान-प्रगति; धर्मयुग आदि में भी प्रकाशित होते रहते हैं। 'मेला' पाक्षिक और अन्य विज्ञान पत्रिकाओं के विज्ञान-कथा विशेषांक भी समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं।

सरकारी कार्यालयों के तकनीकी काम में हिन्दी का प्रयोग

भारत सरकार के इंजीनियरी कार्यों के निष्पादन में केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग प्रमुख है। इस विभाग में लेखक ने 1959-60 से ही सरकारी काम में हिन्दी का प्रयोग

आरम्भ कर दिया था और हिन्दी में सामान्य कार्य के अतिरिक्त तकनीकी कार्य और अनुवाद आदि में सहायता के लिये "केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्" की एक शाखा का गठन कर लिया था। फलस्वरूप अनेक अधिकारी नियमित कार्य में काफी कुछ और तकनीकी कार्य में भी कुछ प्रयोग हिन्दी का करने लगे। मंत्रालय ने तकनीकी विषयों पर भी हिन्दी में टिप्पणियाँ भेजी जाने लगीं और "निर्माण" नाम की एक तकनीकी पत्रिका भी निकाली गई जो आठ-दस साल तक चली। इससे विभाग में सभी जगह हिन्दी में काफी काम होने लगा।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने अपनी स्थापना होते ही सारा विभागीय साहित्य अनुवाद करने के लिये मँगा लिया था; किन्तु नौ-दस साल तक अनुवाद में कुछ प्रगति न हुई: हाँ, साहित्य अवश्य संशोधित और बहुत परिवर्द्धित हो गया। इन पंक्तियों के लेखक जब सम्पर्क अधिकारी (हिन्दी) बने और इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स के हिन्दी सम्पादक हुए तब उन्होंने भारत सरकार को पुनः विश्वस्त किया कि तकनीकी साहित्य का हिन्दी में अनुवाद और इंजीनियरी कामों में हिन्दी का प्रयोग इंजीनियरों द्वारा ही सम्भव हो सकता है। दीर्घकालीन विचार-विमर्श और भगीरथ प्रयास के फलस्वरूप वे 1971 में केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग में एक हिन्दी शाखा स्थापित कराने में सफल हुए और फिर सभी दिशाओं में हिन्दी का प्रयोग तेजी से बढ़ने लगा।

विभाग के सारे तकनीकी साहित्य का हिन्दी में अनुवाद हुआ और हिन्दी के प्रयोग में सहायता देने के लिए सहायक पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुईं। सभी कार्यालयों में कार्यान्वयन समितियाँ बनीं और सहायक कर्मचारी नियुक्त हुए। ताजी जानकारी के अनुसार इस समय लगभग तीन-चौथाई कार्यालयों में लगभग तीन-चौथाई काम हिन्दी में होने लगा है। बहुत से तकनीकी अनुमान हिन्दी में बनते हैं और वास्तुकीय नक्शों में भी हिन्दी का प्रयोग हो रहा है।

देश के अन्य इंजीनियरी कार्यालयों, विभागों और राज्य सरकारों ने भी हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिये केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग के साहित्य की सहायता ली है।

□□

हिन्दी में विज्ञान साहित्य–एक आकलन

शुकदेव प्रसाद

वर्ष 1976 में जब "हिन्दी पत्रकारिता" के डेढ़ सौ वर्ष पूरे हुए (हिन्दी का सर्वप्रथम पत्र "उदन्त मार्तण्ड" 30 मई 1826 को प्रकाशित हुआ था) तो पत्र-पत्रिकाओं ने विशेषांक निकाले और उस साल गोष्ठियों में इसका आकलन किया गया कि हिन्दी पत्रकारिता किन राहों से गुजरी है और उनकी वर्तमान स्थिति क्या है।

हिन्दी पत्रकारिता अपने जीवन के डेढ़ सौ वर्ष पूरे कर चुकी है तो हिन्दी की विज्ञान पत्रकारिता ने इसकी लगभग आधी यात्रा ही तय की है। वस्तुतः विज्ञान विषयक पहली पत्रिका "विज्ञान" अप्रैल, 1915 में प्रकाशित हुई थी। लेकिन यदि हम समग्र विज्ञान लेखन की चर्चा करें तो यह तारीख थोड़ी पीछे खिसक सकती है। देशी भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य रचा जाय, यह सोच बहुत पुरानी नहीं है। हिन्दी का विज्ञान साहित्य बमुश्किल सवा सौ साल की यात्रा कर सका है, क्योंकि हिन्दी में विज्ञान की पहली पुस्तक 1885 में छपी थी।

19वीं शती का उत्तरार्द्ध काल

सन् 1855 में आगरे से छपी पं० कुंजबिहारी लाल की किताब "लघु त्रिकोणमिति" को हिन्दी में विज्ञान की पहली पुस्तक कहना चाहिए, क्योंकि अभी तक इससे पूर्व छपी किसी किताब का उल्लेख नहीं हुआ है। इसके बाद बापूदेव शास्त्री कृत संस्कृत में लिखी "त्रिकोणमिति" का वेणीशंकर झा कृत हिन्दी अनुवाद 1859 में प्रकाशित हुआ। फिर 1860 में आरा से बलदेव झा ने अंग्रेजी पुस्तक "पापुलर नेचुरल फिलासफी" का "सरल विज्ञान विटप" नाम से हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। 1859-60 में पादरी

शोरिंग द्वारा सम्पादित "विद्यासागर" नामक विज्ञान पुस्तक माला मिर्जापुर से प्रकाशित हुई। सरकार की ओर से 1861 में 'मैन'स लेसन्स इन जनरल केमिस्ट्री' का मथुरा प्रसाद मिश्र कृत हिन्दी अनुवाद छपा। नाम था—"बाह्य प्रपंच दर्पण।" 1860 में वंशीधर, मोहनलाल और कृष्ण दत्त द्वारा अनुवादित ग्रंथ "सिद्ध पदार्थ विज्ञान" (यन्त्र शास्त्र का ग्रंथ) प्रकाशित हुआ। 1860 में ही प्रयाग से बाल कृष्ण शास्त्री खण्डरकर की ज्योतिष का "खगोल" नाम से हिन्दी अनुवाद हुआ।

1867 में जयपुर के राजवैद्य कालिन एस० वैलेन्टाइन ने "वायु की उत्पत्ति" और रसायन विद्या की "संक्षेप पाठ" नामक किताब छपवायी। आगरा निवासी बद्री लाल ने एक अंग्रेजी किताब का अनुवाद किया "रसायन प्रकाश" नाम से, जो कलकत्ते के बैपटिस्ट मिशन प्रेस से छपा। इसी किताब का दूसरा संस्करण 1883 में लखनऊ के नवल किशोर प्रेस ने छापा। 1887 में वंशीधर की पुस्तक "चित्रकारी सार" छपी।

1870 से 1880 के बीच रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज के अध्यापक जगमोहन लाल ने कई पुस्तकें कॉलेज के छात्रों के लिए लिखीं। इसी समय 1875 में काशी के मिश्र बन्धुओं—लक्ष्मीशंकर, प्रभाशंकर और रमाशंकर ने 'पदार्थ विज्ञान विटप', 'त्रिकोणमिति', 'प्रकृति विज्ञान विटप', 'गति विद्या', 'स्थिति विद्या' और 'गणित कौमुदी' पुस्तकें लिखीं। 1882 में लाहौर के नवीन चन्द्र राय ने पंजाब विश्वविद्यालय में पढ़ाई के लिए 'स्थिति तत्व' और 'गति तत्व' पुस्तकें छपवायीं। इसी वर्ष लखनऊ के नवल किशोर प्रेस ने 'सृष्टि का वर्णन' पुस्तक छापी।

1883 में इलाहाबाद जिले के निवासी काशी नाथ खत्री द्वारा अनुवादित कृषि की पहली पुस्तक 'खेती की विद्या के मुख्य सिद्धान्त' शाहजहाँपुर के आर्य दर्पण प्रेस में छपी। 1885 में काशी के पं० सुधाकर द्विवेदी ने गणित की उच्चकोटि की किताबें 'चलन कलन' और 'चल राशि कलन' प्रकाशित कीं।

20वीं शती का पूर्वार्द्ध

बीसवीं शती के प्रारम्भ में वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन में काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने महत्वपूर्ण योग दिया 'वैज्ञानिक कोष' छापकर। हिन्दी में मौलिक पुस्तकों के लिखने एवं अनुवाद करने में काफी सहायता मिलने लगी।

डॉ० सत्यप्रकाश द्वारा संकलित 'रासायनिक पारिभाषिक शब्द', निहालकरण सेठी द्वारा 'भौतिक विज्ञान पारिभाषिक शब्द', शुकदेव पांडेय द्वारा 'गणित पारिभाषिक शब्द' प्रकाशित हुए।

इसी के आस-पास महेश चरण सिंह ने रसायन शास्त्र, विद्युत और वनस्पति शास्त्र पर अनेक ग्रंथ लिखे।

गुरुकुल कांगड़ी से भी कुछ किताबें इसी काल में प्रकाशित हुईं। प्रो० रामशरण दास जी ने गुरुकुल कांगड़ी से 'विकासवाद' और 'गुणात्मक विश्लेषण' नामक अच्छे ग्रन्थ छपाए।

इसी के आस-पास प्रो० लक्ष्मी चन्द्र ने बनारस से 'हिन्दीसायंस यूनीवर्सिटी माला' नाम से कुछ औद्योगिक रसायन की पुस्तकें प्रकाशित कीं। इस माला की पहली कड़ी 1915 में छपी जिसका नाम था 'रोशनाई बनाने की कला'। प्रो० लक्ष्मी चन्द्र कृत अन्य कृतियाँ हैं—'साबुन बनाने की पुस्तक', 'वार्निश और पेंट' आदि।

विज्ञान परिषद्, प्रयाग की स्थापना और 'विज्ञान'

इन छिटपुट प्रयासों के बाद ठोस कार्य इस दिशा में हुआ इलाहाबाद में 'विज्ञान परिषद्' नामक संस्था की स्थापना (1913 ई०) और उसके मुख्य पत्र 'विज्ञान' के प्रकाशन (1915 ई०) द्वारा।

विज्ञान परिषद् से 'विज्ञान' के प्रकाशन के अतिरिक्त लगभग 60 स्वतन्त्र पुस्तकें भी छपीं जिनमें 'विज्ञान हस्तामलक' (प्रो० रामदास गौड़), 'वैज्ञानिक परिमाण' (डॉ० निहाल करण सेठी और डॉ० सत्यप्रकाश), 'सूर्य सिद्धान्त' (टीकाकार महावीर प्रसाद श्रीवास्तव), 'समीकरण मीमांसा' (पं० सुधाकर द्विवेदी), 'वर्षा और वनस्पति' (शंकर राव जोशी), 'फोटोग्राफी' (डॉ० गोरख प्रसाद), 'सुवर्णकारी' (गंगा शंकर पचोली) आदि प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त परिषद् द्वारा 1958 ई० से निरन्तर प्रकाशित शोध त्रैमासिक 'विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका' ने हिन्दी को वैज्ञानिक शोध की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्लाघनीय कार्य किया है।

कुछ अन्य संस्थाओं ने भी हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रणयन एवं प्रकाशन के क्षेत्र में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। इनमें से कुछ का विवरण दिया जा रहा है—

हिन्दी समिति : 1947 में उत्तर प्रदेश शासन ने हिन्दी में उच्च कोटि के ग्रन्थों के प्रणयन और प्रकाशन के लिए लेखकों, प्रकाशकों के प्रोत्साहन हेतु प्रकाशित ग्रन्थों पर पुरस्कार देने की योजना बनायी और समिति का गठन भी किया।

1956 में उक्त पुरस्कार समिति ने पुस्तकों के प्रकाशन का जिम्मा स्वयं लिया और उसका नाम बदलकर 'हिन्दी समिति' रख दिया। 1961 में समिति का पुनर्गठन किया गया और विश्वविद्यालीय स्तर पर पुस्तकों के प्रकाशन का (मौलिक एवं अनुवाद) कार्य प्रारम्भ हुआ। समिति ने 250 के करीब किताबें छापीं। समिति की विज्ञान विषयक कुछ अच्छी किताबें हैं—डॉ० सत्यप्रकाश की 'प्राचीन भारत में रसायन का विकास',

अत्रिदेव विद्यालंकार की 'आयुर्वेद का बृहत् इतिहास', डॉ० गोरख प्रसाद की 'भारतीय ज्योतिष', डॉ० ब्रज मोहन का 'गणित का इतिहास', प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा की पुस्तक 'लाख और चपड़ा' आदि ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन : वर्ष 1910 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की स्थापना हुई । सम्मेलन ने अपने जीवन के गौरवशाली 75 वर्ष पूरे कर लिये हैं और हिन्दी जगत् की अभूतपूर्व सेवा की है और कर रहा है ।

सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में विज्ञान परिषदें आयोजित हुआ करती थीं । इन विज्ञान परिषदों में देश के मूर्धन्य विज्ञानियों के भाषण हुआ करते थे । सम्मेलन के 'अमृत महोत्सव' आयोजन की बेला में 'विज्ञान परिषद्' के अन्तर्गत किये गये सारे व्याख्यान एक जिल्द में प्रकाशित किये गये हैं, जिसका सम्पादन डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने किया है ।

सम्मेलन ने उच्चकोटि के कतिपय हिन्दी के वैज्ञानिक ग्रंथ भी छापे हैं । यथा— 'आयुर्वेद का इतिहास' (अत्रिदेव विद्यालंकार), आयुर्वेदीय विश्वकोष' (सम्पा० वैद्य रामजीत सिंह), 'गति विज्ञान' (पी० डी० शुक्ल) 'चलराशि कलन' (हरिश्चन्द्र गुप्त), 'ठोस ज्यामिति' (डॉ० ब्रजमोहन), 'बीजगणित' (डॉ० ब्रजमोहन), 'बीजगणित' (डॉ० झम्मन लाल शर्मा) ।

सम्मेलन ने कुछ पर्याय-कोश (शब्दावलियाँ) भी छापी हैं । 'चिकित्सा विज्ञान कोश', 'जीव रसायन कोश', 'भूतत्व विज्ञान कोश' आदि उल्लेखनीय हैं ।

नागरी प्रचारिणी सभा : काशी की उक्त सभा ने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली को तैयार करने का काम पहले ही आरम्भ किया था । सभा ने 1929 में निहालकरण सेठी की 'भौतिक विज्ञान शब्दावली', 1930 में फूलदेव सहाय वर्मा की 'रसायन शास्त्र शब्दावली', 1931 में शुकदेव पांडेय की 'गणित विज्ञान शब्दावली' तथा 1934 में शुकदेव पांडेय की ही 'ज्योतिष विज्ञान शब्दावली' छापी । 1960 में 'हिन्दी विश्वकोश' के प्रकाशन का प्रारम्भ कर सभा ने एक अच्छा कार्य किया है । राजा बलदेव दास बिड़ला ग्रंथमाला के अन्तर्गत 1967 में प्रकाशित पुस्तक 'लुगदी और कागज' (लेखक—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा) भी उल्लेखनीय है ।

भारतीय भाषा एकक

भारतीय एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, ने हिन्दी में वैज्ञानिक विश्वकोश का प्रकाशन आरम्भ किया है । 'वेल्थ ऑफ इण्डिया' के 'भारत की सम्पदा' नाम से 8 खंड तथा 4 पूरक खंड छप चुके हैं ।

अभी हाल में ही निदेशालय ने 'मानव उपयोगी वनस्पतियों और प्राणियों के वंश तथा जाति नामों का कोश' छापा है—जिसमें नामों के अँग्रेजी और लैटिन उच्चारण

देवनागरी में दिये गये हैं। तकनीकी शब्दों के उच्चारण के मानकीकरण की दिशा में यह एक अच्छा प्रयास है। अन्य क्षेत्रों में भी ऐसे कार्य अपेक्षित हैं।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय : निदेशालय ने 2 खंडों में तकनीकी शब्दों का 'बृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह' तथा एक ही जिल्द में आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, और शारीरिक नृ विज्ञान का 'बृहत पारिभाषिक शब्द संग्रह' छापा है। निदेशालय के अधिकारी, विद्वानों की मदद से, आजकल 'आनुवंशिकी' की शब्दावली तैयार कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त निदेशालय ने स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर 'सप्लीमेंट्री रीडिंग के लिए 'जैव विज्ञान चयनिका' (सम्पा० प्रेमानन्द चन्दोला), 'भौतिक विज्ञान चयनिका' तथा 'भू-विज्ञान चयनिका' का भी प्रकाशन आरम्भ किया। खेद है कि इन्हें गति नहीं मिल सकी। निदेशालय अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन कार्यरत है।

हिन्दी ग्रन्थ अकादमियाँ

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध करने-कराने के लिए 1968 में एक योजना बनायी। इसी योजना के अन्तर्गत 1970 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की देख-रेख में हिन्दी प्रदेशों-हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बिहार में विश्वविद्यालय स्तर की हिन्दी पुस्तकें एवं मानक ग्रंथ तैयार करने लिए हिन्दी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना की गई। इस योजना के अधीन विज्ञान तथा मानविकी विषयों पर अब तक लगभग 1,000 किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। उ० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी तथा हिन्दी समिति को आपस में मिलाकर 'उ० प्र० हिन्दी संस्थान' का रूप दे दिया गया है।

बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी के अतिरिक्त 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' (पटना) भी कुछ अच्छी वैज्ञानिक किताबें छाप चुका है। स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश की 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा' एवं प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा कृत 'रबर', 'ईख और चीनी' एवं 'पेट्रोलियम' शीर्षक मोनोग्राफ अच्छे हैं।

भौतिकी कक्ष

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी की हिन्दी प्रकाशन समिति (भौतिकी कक्ष) ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की देखरेख में हिन्दी में विज्ञान साहित्य के निर्माण में योग दिया है। भौतिकी कक्ष के पूर्व निदेशक प्रो० (डॉ०) नन्द लाल सिंह के निर्देशन में लगभग 40 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्

भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र तथा टाटा आधारभूत अनुसन्धान केन्द्र, बम्बई के कार्यरत वैज्ञानिकों ने हिन्दी-विज्ञान के सम्वर्धन हेतु उक्त परिषद् की स्थापना की।

परिषद् ने विज्ञान के जटिल विषयों पर कई लघु सन्दर्भ पुस्तकें (मोनोग्राफ) छापी हैं। एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका 'वैज्ञानिक' का भी प्रकाशन हो रहा है।

इधर सामान्य पत्रिकाओं में भी विज्ञान के स्तम्भ देखने को मिल जाते हैं। स्थिति सुधरी ही है। विज्ञान लेखन को बढ़ावा मिल रहा है। तकनीकी शब्दों का बोझ हटा दिया जाय तो निस्सन्देह कार्य आगे बढ़ सकता है।

□□

हिन्दी में वज्ञान की पाठ्यपुस्तकों का प्रणयन

डॉ० सुप्रभात मुकर्जी

स्वतन्त्रता प्राप्ति के इकतालीस वर्षों बाद भी किन कारणों से हम विज्ञान की उच्च स्तरीय शिक्षा हिन्दी या प्रान्तीय भाषाओं में प्रदान करने की स्थिति में नहीं आ सके ? संभवतः सबसे बड़ी समस्या, समुचित पाठ्यसामग्री विशेषकर अच्छी पाठ्यपुस्तकों की अनुपलब्धता की रही है। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमारे अध्यापक महानुभाव आत्मविश्वास के साथ हिन्दी में पढ़ाना प्रारम्भ कर सकें और देश में जिस वैज्ञानिक प्रतिभा का विकास हो, उसमें मौलिकता तथा सृजनात्मकता हो, साथ ही वह विश्व में विज्ञान एवं तकनीकी के विकास में अपने योगदान की छाप छोड़ने में सक्षम हो सके, तो हमारा पहला कदम हिन्दी में विज्ञान की उत्कृष्ट पाठ्यपुस्तकों को उपलब्ध कराना होना चाहिए। उत्कृष्ट पाठ्य-पुस्तकें वे हैं जिन्हें पढ़कर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सके कि ये पुस्तकें विदेशी भाषा में उपलब्ध पुस्तकों से सभी अर्थों में अधिक उपयोगी एवं गुणवत्ता की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये उत्कृष्टता और परिष्कार रातोंरात सम्भव नहीं। इसमें समय लगना स्वाभाविक है, परन्तु इस लक्ष्य को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इसमें बाधक समस्याओं का हमें पूर्ण ज्ञान हो। हिन्दी में उच्च स्तरीय विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों के प्रणयन की कतिपय प्रमुख समस्याएँ हैं :

1. वैज्ञानिकों की मनोवृत्ति

आज परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बन गयीं हैं कि हमारे देश के अधिकांश वैज्ञानिक जाने-अनजाने में अंग्रेजीपरस्त हो जाते हैं और फिर इसमें दिखावटी गर्व का अनुभव करने लगते हैं। यह अंग्रेजीपरस्त मनोवृति दो प्रकार से बाधक होती है। एक ओर तो इस श्रेणी के वैज्ञानिकों की प्रतिभा का हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य सृजन में कोई योगदान प्राप्त

नहीं हो पाता, जिससे हिन्दी में रचित वैज्ञानिक साहित्य की गुणवत्ता प्रभावित होती है तथा दूसरे वे विज्ञान के छात्रों को हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना तो दूर रहा उनमें यह भय भी उत्पन्न करने में सहायक बन जाते हैं कि हिन्दी माध्यम से अध्ययन करने पर भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा। इस प्रकार अधिकांश प्रतिभाशाली छात्र बाध्य होकर अंग्रेजी माध्यम की ओर झुक जाते हैं, फलस्वरूप हिन्दी माध्यम की उच्च स्तरीय पाठ्यपुस्तकों की माँग प्रभावित होती है।

इस समस्या के निराकरण के लिए अन्तर्निहित कारणों पर दृष्टिपात करना होगा। हमारे देश में हिन्दी भाषी क्षेत्रों में इण्टरमीडिएट कक्षाओं तक हिन्दी में विज्ञान के अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था है और विज्ञान वर्ग के प्रतिभाशाली, यहाँ तक कि श्रेष्ठता सूची में प्रथम दस स्थान प्राप्त करने वाले, छात्र भी अंग्रेजीपरस्त नहीं होते। उनमें हिन्दी के प्रति अनादर या उपेक्षा का भाव नहीं परिलक्षित होता, परन्तु स्नातक स्तर पर उन्हें जो परिवेश प्राप्त होता है, वह उनके व्यक्तित्व में अंग्रेजीपरस्त होने का बीजारोपण करता है क्योंकि जो छात्र स्नातक स्तर पर हिन्दी के पक्षधर होते हैं, उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। परिणामस्वरूप उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व और विशेषकर विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता में एक प्रकार की जड़ता घर कर जाती है। अन्ततोगत्वा प्रतिभा का विकास थम जाता है और रह जाती है केवल रटे हुए सीमित ज्ञान की पुनरावृत्ति तथा औसत स्तर के शोध कार्य करने की क्षमता और सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने की लालसा। इस स्थिति से बिरले ही बच पाते हैं, परन्तु उनका भी हिन्दी से नाता तो टूट ही जाता है। परिणामस्वरूप प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों में, हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य सृजन की क्षमता शेष नहीं रह जाती। वे स्वयं हिन्दी में शोध प्रबन्ध आदि लिखने से कतराते हैं और दूसरों को भी प्रभावित करते हैं।

उपर्युक्त परिस्थिति में परिवर्तन लाने के लिए प्रतिभाशाली वरिष्ठ वैज्ञानिकों से अंग्रेजी के उच्च प्रासादों से उतर कर हिन्दी की कुटिया में आने के लिए आग्रह करना व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता। उनसे मात्र यह अनुरोध करने की धृष्टता करना चाहता हूँ कि हिन्दी की जर्जर कुटिया में रहने वाले अपने अनुजों को भी भ्रातृवत प्रेम और उचित सम्मान प्रदान करे। आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता करें जिससे वे मेहनत करके हिन्दी का राजमहल बना सकें।

2. शब्दावली की एकरूपता का अभाव

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शब्दावली के निर्माण की दिशा में पर्याप्त कार्य किया गया है। आज बाजार में अनेक शब्दकोश उपलब्ध हैं जो शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित मानक शब्दकोश से भिन्न हैं। एकाधिक शब्दकोश होने के कारण लेखन में कठिनाई तो होती ही है, यह साहित्य की गुणवत्ता तथा लोकप्रियता पर भी दूरगामी प्रभाव छोड़ती है।

सभी सम्बद्ध पक्ष—लेखक, अध्यापक, शब्दावली आयोग तथा पाठक यदि खुले मन से एक दूसरे के साथ बैठकर, एक दूसरे की कठिनाइयों पर विचार करते हुए सतत् प्रयास करें तो मेरा विश्वास है कि थोड़े से प्रयास से ही एकरूपता प्राप्त करना सम्भव हो सकेगा। किसी भी क्षेत्र में जड़ता बनाये रखने से कार्य में अवरोध उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। "विज्ञान परिषद, प्रयाग" यदि सभी सम्बन्धित पक्षों से वार्ता और विचार-विमर्श करके उन्हें एक मंच प्रदान करने में पहल कर सके तो इस क्षेत्र में ठोस कार्य को दिशा मिल सकेगी।

3. हिन्दी के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग

हिन्दी में जब पाठ्यपुस्तकें लिखी जाती हैं तो लेखक अक्सर अंग्रेजी में सोचते हैं और फिर शब्दकोश का सहारा लेकर हिन्दी में लिखते हैं। परिणामस्वरूप यह हिन्दी दुरूह हो जाती है और पाठक को इसे आत्मसात् करने में कठिनाई होने लगती है।

आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी में सोचकर हिन्दी में लिखा जाय, पर साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग आवश्यकता से अधिक न किया जाय। पहले की अपेक्षा इस स्थिति में पर्याप्त सुधार विगत वर्षों में हुआ है और स्थिति निरन्तर सुधरती जा रही है परन्तु इस दिशा में और अधिक प्रयास की आवश्यकता है। इस बात का उल्लेख यहाँ पर करना कदाचित अनुपयुक्त न होगा कि छात्रों तथा अध्यापकों के सामान्य भाषा ज्ञान में जो गिरावट आ रही है उसे अगर रोका न जा सका तो आशंका है कि जो कुछ भी लिखा जायेगा वही अधिकांश को दुरूह प्रतीत हो और स्वाध्याय की प्रवृत्ति को प्रभावित करे।

4. पश्च पोषण (feed back) का अभाव

पाठ्यपुस्तकों की गुणवत्ता में लगातार सुधार होता रहे और वे श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर होती चली जाये इसके लिए पाठकों से पश्चपोषण प्राप्त कर उसमें समुचित परिवर्तन करते रहना नितान्त आवश्यक है। स्थिति कुछ ऐसी है कि पुस्तकों की मौखिक आलोचना तो बहुत अधिक होती है, परन्तु पुस्तक की कमियों और उसमें वांछित सुधार के सम्बन्ध में उपयोगी सुझाव बहुत कम प्राप्त होते हैं।

अतः प्रत्येक श्रेणी के पाठकों का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि वे पुस्तकों के सम्बन्ध में अपने सुझाव निःसंकोच लेखक/प्रकाशक तक अवश्य पहुँचा दें इससे पुस्तक प्रणयन में बड़ी सहायता मिलेगी। पुस्तकों के स्तरोन्नयन हेतु स्वस्थ सुझाव प्रदान करने के लिए विशेषज्ञों की परामर्शदात्री समिति का गठन क्या इस दशा में लाभकारी होगा, इस पर भी विचार किया जाना आवश्यक है।

5. शैलीगत सौन्दर्य का अभाव

हमारे देश में पाठ्य पुस्तकों के लेखक अपने विषय के तो विद्वान होते हैं, परन्तु भाषा के माध्यम से विषय को किसी स्तर विशेष के विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करने की

शैली कैसी हो इसमें बहुत कम ही लेखक प्रशिक्षित होते हैं। विश्वविद्यालय स्तरीय अधिकांश अध्यापकों पर ये बात और अधिक लागू होती है। कदाचित इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत ऐकेडेमिक स्टाफ कालेजों की स्थापना की गयी है जिससे विद्वान अध्यापक महानुभावों को शैक्षिक मनोविज्ञान तथा शिक्षा के दर्शन से भी परिचित कराया जा सके। व्यवस्था से वे न केवल विद्यार्थियों को अपने ज्ञानपुंज का हस्तान्तरण और अधिक प्रभावी ढंग से कर सकेंगे वरन् अपने अध्यापन कार्य के अनुभवों का उपयोग समुचित शैली में पाठ्यपुस्तक लेखन में भी कर सकेंगे। शैलीगत सौन्दर्य के अभाव में पाठ्यवस्तु की ग्राह्यता प्रभावित होती है। शैली के सुधार की ओर थोड़ा सा ध्यान देने पर पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में बहुत अधिक सुधार सम्भव है।

6. वरिष्ठ वैज्ञानिकों द्वारा हिन्दी लेखन से कतराना

यह तो सर्वविदित है कि अधिकांश वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने व्यक्तिगत लेखन माध्यम के रूप में हिन्दी को गम्भीरता से नहीं लिया है, परन्तु यह भी देखा जाता है कि उच्च शैक्षिक योग्यता होने के कारण यदि किसी संस्था द्वारा उनकी प्रतिभा का लाभ हिन्दी में लेखन हेतु प्राप्त करने के उद्देश्य से उन्हें नामित भी किया जाता है तो वे उसे स्वीकार तो कर लेते हैं, परन्तु अपना अंशदान समुचित रूप से करने में रुचि नहीं लेते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रुचि न ले पाने के लिए उनके पास अपने कारण और बाध्यताएँ होंगी, परन्तु जब प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले समस्याओं के समाधान हेतु प्रयास नहीं करेंगे तो उनकी छत्रछाया में रहने वाले कनिष्ठ लेखकों में भटकन और दिशाहीनता पाया जाना स्वाभाविक ही है।

7. प्रोत्साहन का अभाव

विगत लगभग तीन दशकों में हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में उल्लेखनीय कार्य हुआ है! उच्चकोटि के लेखकों का हिन्दी में पदार्पण हुआ है। भाषा शैली में पहले से अधिक स्पष्टता और प्रवाह परिलक्षित होने लगा है। कुछ निजी प्रकाशकों ने अच्छी पुस्तकें प्रकाशित की है, परन्तु खेद का विषय है कि जो प्रोन्साहन इन्हें मिलना चाहिये था वह नहीं मिल सका। उचित प्रोत्साहन के अभाव में स्थिति कुछ ऐसी है कि हिन्दी में जितना साहित्य उपलब्ध है उसे पढ़ने वालों की संख्या अधिक नहीं है जिससे पुस्तकों के प्रणयन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन का सीधा सम्बन्ध उनकी माँग से है। यदि हिन्दी में पाठ्यपुस्तकों की माँग बढ़ेगी तो और अधिक लोग पुस्तकों के प्रणयन से जुड़ेंगे, अच्छे प्रकाशक और लेखक रुचि लेने लगेंगे और स्वतः ही अधिक संख्या में अच्छी पुस्तकें उपलब्ध होने लगेंगी।

अतः अध्यापकगण विद्यार्थियों को हिन्दी माध्यम की पुस्तकें पढ़ने के लिए निःसंकोच प्रोत्साहित करें क्योंकि यदि अपनी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करके छात्र मौलिक

चिन्तन और सृजनात्मकता को विकसित करने में सफल हुए तो आवश्यकता पड़ने पर दूसरी भाषा को सीखना उनके लिए कठिन न होगा ।

विभिन्न समस्याओं की उपर्युक्त विवेचना का उद्देश्य समस्याओं से परिचित होकर इनके निराकरण हेतु प्रयत्नशील होना है । मनोवृत्ति में अनुकूल परिवर्तन के लिए हमें निरन्तर सचेष्ट रहकर विभिन्न स्तरों पर कार्य करना होगा । इस दिशा में प्रामाणिक शैक्षिक शोध करके तथ्यों के उचित प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है जिससे भ्रांतियाँ दूर हो सकें । तकनीकी शब्दावली में एकरूपता की दिशा में जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, सभी पक्षों को एक मंच पर लाने हेतु पहल करनी होगी । अन्य समस्याओं का समाधान पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन को और अधिक गम्भीरता से लेकर किया जा सकता है । समुचित शैली एवं सरलता से बोधगम्य पुस्तकों के प्रणयन हेतु लेखकों से और अधिक परिश्रम की अपेक्षा है । उनका उद्देश्य श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर होना चाहिये । प्रकाशित पुस्तकों के सम्बन्ध में पश्च-पोषण प्राप्ति की उचित व्यवस्था से लेखकों को दिशा मिल सकेगी और कार्य आसान होगा ।

आशा ही नहीं वरन् पूरा बिश्वास है कि धैर्य और निष्ठा से सतत् कार्यरत रहने पर सफलता प्राप्त होगी ।

टिप्पणी : इस आलेख में लेखक के व्यक्तिगत विचार प्रस्तुत किये गये हैं । इनका किसी भी संस्था के किसी कार्यक्रम से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

□□

विज्ञान लेखन और कविता

दिनेश द्विवेदी 'मणि'

कविता करने व कहने की प्रवृत्ति मनुष्य के स्वभाव में आदिकाल से रही है। भारतीय साहित्य का अतीत वेदों एवं अन्य पौराणिक ग्रन्थों में श्लोकों, आख्यानों, सूक्तियों आदि के रूप में देखने को मिलता है। आजकल विज्ञान लेखन में भी कविता का प्रयोग बहुतायत से हो रहा है। इसके पहले कहानी और उपन्यास की शैलियाँ प्रयोग होती रही हैं। इनमें से कई कहानियों और उपन्यासों को विज्ञान प्रेमियों द्वारा काफी सराहा गया है।

वैसे तो हिन्दी में विज्ञान-लेखन के लिये काफी अरसे से कविता, कहानी, आत्मकथा उपन्यास, डायरी आदि विधाओं का प्रयोग होता रहा है किन्तु मैं यहां पर विज्ञान लेखन में कविता करने की विधा पर प्रकाश डालना चाहूँगा। हिन्दी की प्रसिद्ध विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' में प्रकाशित होने वाली कई कवितायें बहुत ही अच्छी हैं। वास्तव में रचनाकारों का यह प्रयास स्तुत्य है कि उन्होंने विज्ञान जैसे जटिल विषय को भी कविता के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। परन्तु कभी-कभी कुछ कवितायें इस तरह की देखने को मिलती हैं, जिनमें वैज्ञानिक तथ्यों को मनमाने ढँग से व्यक्त किया जाता है। अतुकान्त तथा गद्य की तरह लिखी जाने वाली ये कवितायें यह आभास दिलाती हैं कि लेखक ने हठात् लेखनी चलाई है।

मैं यहाँ पर 'विज्ञान प्रगति' के बाल विशेषांक (नवम्बर-दिसम्बर 1986) में प्रकाशित 'रिऐक्शन' शीर्षक के अन्तर्गत लिखी गई कविता का उदाहरण देना चाहूँगा।

रिऐक्शन

एक वैज्ञानिक को सहसा आया एक विचार उसने एक स्वस्थ पौधे को गमले में जकड़कर मोमजामे का बनाकर पैंजामा पौधे के गले तक पहना दिया फिर उसे ट्रान्सपेरेन्ट बेलजार की जबरदस्त दीवारों में कैद कर चेहरे पर वैसलीन पोत दी जिससे बेचारा साँस न ले सके और घुटघुट कर मर जाये।

वह हृष्टपुष्ट पौधा पहले तो डर के मारे सहम गया,
फिर उसके हौसले हुये बुलन्द,
उसने पानी का इतनी तेजी से छोड़ा फव्वारा,
कि बेलजार की दीवारें तक तर हो गयीं।
बेचारा वैज्ञानिक अवाक् रह गया।
झटपट उसने बुलाया एक सर्जन को,
सर्जन ने चश्में के नीचे से,
आँसुओं को पोंछते हुये, सूखे कंठ से बताया।
अरे नासमझ, तुम्हारे कैदी को कर गया है कुछ रिऐक्शन क्या ?

आँखें फाड़कर वैज्ञानिक ने दुखित होकर पूछा-सर ! क्या आप बता सकते हैं किस रोग में होता है, यह रिऐक्शन, ?

सर्जन ने तपाक से नाक सिकोड़ कर ऐनक को ऊपर करते हुये कहा "ट्रान्स-पिरेशन" (उत्स्वेदन या वाष्पोत्सर्जन)।

यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि विज्ञान सम्बन्धी कविता लिखने के लिये विज्ञान का समुचित ज्ञान एवं कविता करने की प्रतिभा-दोनों तरह की योग्यताओं का होना अत्यन्त आवश्यक है। अत : मेरा यह सुझाव है कि **इन कविताओं को इस तरह से लिखा जाय कि कम से कम एवं प्रामाणिक शब्दों में अधिक से अधिक विज्ञान सम्बन्धी जानकारी समाहित हो**। ऐसा न हो कि कविता इतनी बड़ी हो कि पढ़ने पर यह महसूस हो कि अच्छा होता बजाय कविता पढ़ने के हम कोई लेख ही पढ़ लेते।

निःसन्देह "विज्ञान प्रगति" में प्रकाशित होने वाली छोटी-छोटी (चार-चार पंक्ति की) कवितामय 'पहेलियाँ' काफी रोचक व आकर्षक हैं—

आकर्षण की शक्ति महान
'मैग्नीशिया' जन्मस्थान।
कहलाया था-लीडिंग स्टोन
अब बतलाओ मैं हूँ कौन ?

(चुम्बक)

प्रिस्टले ने मुझे बनाया,
डेवी ने यह गुण बतलाया ।
उदासीन एक गैस है खास,
सूँघो-हँसी का हो आभास ।

(नाइट्रस ऑक्साइड)

संभवत: ऐसी पहेलियों को पढ़ने की जिज्ञासा पाठकों के अन्दर अवश्य ही बड़ी-बड़ी कविताओं और लेखों की अपेक्षा अधिक रहती होगी ।

□□

भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन: कतिपय व्यक्तिगत विचार

द्वारिका प्रसाद शुक्ल

मेरा ध्यान छात्र जीवन के वर्ष 1959-1961 के काल की तरफ जाता है और कुछ संस्मरण उभर कर सामने आते हैं। हमारे भौतिकी के गुरुजी अंग्रेजी में तो लिखाते थे —पाठ्यपुस्तकें अधिकतर छात्र हिन्दी की पढ़ते थे। एक बार कुछ छात्रों ने अनुरोध किया कि कक्षा में नोट्स हिन्दी में दिये जायें। गुरुजी ने बड़े प्रेम से कहा, "अंग्रेजी में लिख, लो-काम आयेगा।" उनका संकेत था कि विश्वविद्यालय स्तर पर तथा इंजीनियरिंग व मेडिकल के पाठ्यक्रमों को अंग्रेजी भाषा माध्यम से पढ़ना पड़ेगा और उसके लिए तैयार रहना आवश्यक है। हिन्दी विषय के गुरु जी इतनी रुचि से विषय को ऐसे स्तरीय ढंग से पढ़ाते थे कि मुझे लगता था कि मैं विश्वविद्यालय स्तर का हिन्दी साहित्य पढ़ रहा हूँ। दूसरी तरफ अंग्रेजी भाषा के गुरू जी अक्सर यह शिकायत छात्रो से करते कि हम लोग इस बिषय के अध्ययन कों उचित महत्व नहीं दे रहे थे। उनकी चेतावनी होती कि बिना अंग्रेजी का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किये विज्ञान के छात्र प्रौद्योगिकी एवं औषधि विजान के कॉलेजों में प्रवेश पाने में भी सफल न हो पायेंगे। यद्यपि मेरी रुचि हिन्दी, अंग्रेजी व संस्कृत भाषाओं में काफी थी पुनश्च मेरे किशोर मन में वैज्ञानिक साहित्य व पुस्तकें अधिकाधिक अंग्रेजी में ही पढ़ने का शौक तभी पैदा हुआ और यह (मिथ्या) आभास हुआ कि विज्ञान के छात्र को विशेषकर अंग्रेजी भाषा में निपुणता की अत्यधिक आवश्यकता है।

1961 में मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० एस-सी० (प्रथम वर्ष) में प्रवेश लिया। यहाँ गणित, भौतिकी तथा रसायन विज्ञान की शिक्षा अधिकांशत: अंग्रेजी के माध्यम से ही दी जाती थी—पाठ्यपुस्तकें तो सभी अंग्रेजी में ही थीं—हाँ, कक्षा में हिन्दी में पढ़ाने वाले 3 गुरुओं का जिक्र किये बिना नहीं रहा जा सकता। वे थे भौतिकी में श्री राजेन्द्र सिंह

व डॉ० मुरली मनोहर जोशी तथा रसायन विज्ञान में डॉ० सत्यप्रकाश (वर्तमान में स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती)। संयोग की बात यह भी थी कि ये गुरुजन बहुत मधुर ढँग से हिन्दी भाषा के माध्यम से विषय का ज्ञान कराते थे—यद्यपि परीक्षायें अंग्रेजी के माध्यम से ही देनी होती थीं। इसके बाद मैंने एम० एस-सी० (गणित) किया। हिन्दी माध्यम से पढ़ने अथवा पढ़ाये जाने का कोई अवसर मुझे नहीं मिला।

इस परिप्रेक्ष्य में एक कौतूहलपूर्ण संस्मरण उस समय का याद आता है, जब मैं 1957-1959 में हाई स्कूल का विद्यार्थी था। उस स्तर पर विज्ञान विषय हिन्दी भाषा के माध्यम से पढ़ाये जाते थे, यद्यपि पारिभाषिक शब्दावली का अंग्रेजी रूप भी बताया जाता था। शायद यही सोचकर कि बाद में अंग्रेजी शब्दावली का ही अधिक उपयोग किया जाएगा। जीव विज्ञान में जीवों के वर्गीकरण विषय के कुछ शब्द बड़े कौतूहल से मैंने पढ़े थे और ऐसा सुखद अनुभव होता था जैसे संस्कृत के श्लोकों को पढ़ने का। शब्द थे—जरायुमृगाः, स्तनधारिणः, कीटाः। यद्यपि मैंने अंग्रेजी माध्यम से विज्ञान विषय इण्टर-मीडिएट से ही पढ़ने शुरू कर दिये थे। फिर भी मुझे बी० एस-सी० (पूर्वार्द्ध) में भौतिकी व रसायन विज्ञान की पुस्तकों को अंग्रेजी में पढ़कर विषय-वस्तु को आत्मसात् करने में कठिनाई का अनुभव हुआ था।

विद्यार्थी जीवन के उपरान्त दिसम्बर 1967 में मैंने 'भारतीय स्टेट बैंक' में प्रवेश किया—पदनाम था प्रोबेशनरी ऑफीसर, जिसे हिन्दी में परिवीक्षाधीन अधिकारी कहा जाता है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इस पद के लिए चुनाव अंग्रेजी भाषा में लिखने तथा बोलने के ज्ञान पर बहुत अधिक आधारित था—हिन्दी के ज्ञान की कहीं आवश्यकता नहीं पड़ी थी। बैंक की लिखा-पढ़ी में तो दूर-दूर तक हिन्दी का कहीं नाम न था—हाँ इधर कुछेक वर्षों से राजभाषा अधिनियम के अन्तर्गत अब लेखन, प्रशिक्षण एवं ग्राहकों के साथ बातचीत व पत्र व्यवहार में हिन्दी के उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। अब तो सेवा के लिए भर्ती करने की प्रतियोगिता परीक्षाओं तथा साक्षात्कार में भी हिन्दी का प्रयोग करने की अनुमति दे दी गयी है। अब हिन्दी में बात करना व लिखना हेय नहीं माना जा रहा है। यह श्रेयस्कर है।

पिछले वर्ष 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव की प्रेरणा से मैं भी विज्ञान परिषद् का सदस्य बना। उन्हीं की प्रेरणा से फरवरी 1988 अंक के लिए 'भारतरत्न सर चन्द्रशेखर वेंकटरामन' पर एक लघु लेख लिखा।

चूँकि अधिकांश सामग्री अंग्रेजी में ही उपलब्ध थी अतः हिन्दी में लिखते समय भाषा व विचारों का प्रवाह गड़बड़ाता नजर आता था। अधिक ध्यान इसी में लगा रहा

कि अंग्रेजी की किस सामग्री को अपने हिन्दी के लेख में कहाँ पर रक्खूँ। एक अत्यन्त हास्यास्पद परेशानी तो यह आयी कि अंग्रेजी में लिखे जाने वाले 'Raman' को हिन्दी में 'रमण' या 'रमन' या 'रामन' क्या लिखा जाय। श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी के सुझाव के बाद यह निश्चय किया गया कि यद्यपि हम लोग 'रमन' बोलते हैं, परन्तु 'रामन' लिखना अधिक उपयुक्त होगा। जानबूझकर मजबूरी के कारण रामन साहब के 'रामन-प्रभाव' का बहुत सूक्ष्म में वर्णन किया क्योंकि हिन्दी में उसकी विवेचना मेरे लिये सम्भव नहीं हो पा रही थी। मेरे पास कोई वैज्ञानिक अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश भी नहीं था। अतः मैंने प्रकाश की 'स्कैटरिंग' के लिए 'विकिरण' लिखा जो 'रेडियेशन' के लिए उपयुक्त है तथा स्कैटरिंग को 'प्रकीर्णन' करना बेहतर है। 'फ्लोरेसेन्सट्रैक' को मैंने हिन्दी में ऐसे ही लिख दिया। ध्वनि विज्ञान में 'हारमोनिक्स' के लिए 'रागात्मकता' लिखा, परन्तु अभी भी मैं आश्वस्त नहीं हूँ कि ये रूपान्तर उचित हैं या नहीं। पर्यावरण तथा विज्ञान सम्बन्धी अन्य क्षेत्रों में मेरी रुचि है तथा अंग्रेजी में काफी लेख पढ़ता हूँ, परन्तु जब 'विज्ञान' के सम्पादक जी कुछ लिखने को कहते हैं तो बहाना करके टाल जाता हूँ क्योंकि विचारों को हिन्दी में व्यक्त कर पाना दुरूह लगता है—जब तक कि वैज्ञानिक शब्दकोश आदि लेकर न बैठा जाय। इस तरह मैं अनुभव करता हूँ कि अंग्रेजी भाषा के पाठक को अंग्रेजी में पढ़ी हुई विषयवस्तु को हिन्दी में लिख पाना सुगम नहीं हो पाता। फिर सामान्य पाठकों/लेखकों के पास अच्छे शब्दकोशों का भी अभाव है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक तथा हिन्दी के कोशकार 'डॉ० हरदेव बाहरी' ने बातचीत में इस विषय पर ये विचार व्यक्त किये :—"अंग्रेजी भाषा में विभिन्न स्तरों के, विभिन्न आकार के तमाम अच्छे शब्दकोश उपलब्ध हैं तथा स्कूल के विभिन्न कक्षाओं के बच्चों के लिए सचित्र तथा सुगम छोटे-छोटे शब्दकोश भी हैं। इसके विपरीत हिन्दी में शब्दकोश का प्रयोग किया जाना आम बात नहीं है। मानक व बृहत् शब्दकोश तथा विश्वकोश तो हैं, परन्तु छात्रोपयोगी, विभिन्न विषयों के सचित्र, छोटे, अच्छे व सस्ते शब्दकोशों का प्रकाशन व प्रयोग बढ़ाने की बड़ी आवश्यकता है।"

असल बात तो यह है कि लेखन अपने आप में कोई स्वतन्त्र अलग-अलग कार्य नहीं है। लेखक जिस परिवेश, शिक्षण व्यवस्था, व्यावहारिक अपरिहार्यता में बड़ा होता है, उसी के अनुसार उसके जीवन मूल्य बनते हैं तथा शब्द-ज्ञान एवं भाषागत कुशलता या अकुशलता उत्पन्न होती है। अतः अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित सामान्य व्यक्ति का हिन्दी में लेखन सामान्य प्रक्रिया न होकर श्रम-पूर्ण किया गया कार्य तथा मानसिक स्तर पर अनुवाद होता है—इसे हम नकार नहीं सकते।

दुर्भाग्य से हिन्दी के अतिरिक्त अन्य किसी भारतीय भाषा का मुझे ज्ञान नहीं है। यह अपने आप में मेरे परिवेश, मेरी शिक्षा एवं मेरी मानसिकता का परिचायक है। इसके विपरीत मुझे बम्बई में एक बार एक हाई स्कूल का छात्र मिला जो बंगला (मातृभाषा), मराठी (प्रादेशिक भाषा), हिन्दी, अंग्रेजी तथा फ्रेंच का ज्ञान रखता था। उत्तर प्रदेश एवं

अन्य हिन्दी भाषी प्रदेशों में भाषाओं की शिक्षा अधिक उपेक्षित प्रतीत होती है—इस ओर शिक्षाविदों का ध्यान जाना आवश्यक है ।

यदि पूरे भारतवर्ष में संस्कृत की धातुओं पर आधारित तथा अन्य क्षेत्रीय/प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित, सुबोधगम्यता एवं उपयोगिता के आधार पर वैज्ञानिक शब्दावली को रूढ़ कर दिया जाय तथा पर्यायवाची शब्दों को अधिक प्रश्रय न दिया जाय तो एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद आदि का कार्य अधिक सुगम एवं प्रभावी हो सकेगा । वैज्ञानिक एवं अन्य विषयों के विभिन्न स्तरों के शब्दकोशों के निर्माण, प्रकाशन एवं उपयोग को बढ़ावा देना आवश्यक है तथा प्रकाशनों की शुद्धता, गुणवत्ता एवं आकर्षकता पर भी ध्यान देना होगा अन्यथा हमारे बृहत ग्रन्थ ग्रन्थालयों तक ही सीमित रह जायेंगे । एक और बात है—पाठकों की । आज पठन-पाठन केवल सांस्कृतिक विकास या सुसंस्कृत मानव बनाने के लिए न होकर धनोपार्जन के लिए अधिक किया जा रहा है । हर्ष का विषय है कि अब शनैः शनैः भारतीय तकनीकी संस्थानों आदि की प्रवेश परीक्षाओं में भी हिन्दी में लिखने का विकल्प दिया जा रहा है—यह आवश्यक व सराहनीय है । इससे हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विषयों को पढ़ने की रुचि बढ़ेगी तब प्रकाशित साहित्य का विक्रय भी होगा एवं लेखकों की माँग (डिमाण्ड) बढ़ेगी और तभी विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर सृजनात्मक लेखन अधिक मात्रा में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हो पायेगा । अर्थशास्त्र के मूल नियम—"माँग एवं पूर्ति" (Law of demand & supply) की अवहेलना नहीं की जा सकती ।

एक बात समाज के श्रेष्ठ जनों, राजनीतिज्ञों, शिक्षाविदों, नीति निर्धारण करने वाले महानुभावों के लिए । यद्यपि उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी के मांध्यम से हुई पुनश्च उन्हें राष्ट्रपिता 'महात्मा गाँधी' की तरह तथा गुरुदेव 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' की तरह भारतीय भाषाओं को अपने देश में सामाजिक श्रेष्ठता एवं सम्मान प्रदान करने में केवल फर्जअदायगी न करके मिशनरी भावना दिखानी होगी तभी हमारी भविष्य की पीढ़ियाँ अपनी भाषा में अध्ययन, अध्यापन, शोध, मनन, सृजन आदि करने को प्रेरित हो पायेगी और ऐसा करके गौरव का अनुभव कर पायेगी । मुझे जापान व दक्षिणी कोरिया के वैज्ञानिकों/विचारकों को सुनने का अवसर मिला, जो अंग्रेजी नहीं जानते थे तथा जिन्हें दुभाषिये (interpreter) की सहायता लेनी पड़ी, परन्तु इसमें उन्हें हीनता नहीं महसूस हुई । जबकि आज भी अधिकांश भारतीय, स्तरीय सभाओं/अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर (अंग्रेजी में ही लिख-बोल कर सन्तुष्ट हो पाते हैं । "इस मानसिकता को बदले बिना यह अपेक्षा करना कि सृजन, शोध, पत्रकारिता, व्यवहार, विज्ञान लेखन आदि में हिन्दी में प्रचुर तथा स्तरीय कार्य हो, एक मृगमरीचिका तथा कोरी आकांक्षा ही रह जायेगी ।" आज आवश्यकता है समन्वित एवं समेकित विचार, व्यवहार, प्रचार एवं प्रसार की । 'मनसा-वाचा कर्मणा' एकनिष्ठ हुए बिना यदि 'मनस्यन्यद् वचस्यन्यद्' पर आधारित आँख-मिचौनी

अधिक काल तक खेली गयी तो वस्तुस्थिति में आमूल परिवर्तन की कामना करना बेइमानी ही होगी।

किसी भी भाषा में उतना ही साहित्य सृजन हो सकेगा जितना सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना द्वारा अपेक्षित होगा। जो सुख, सुविधाओं, अनुदानों, नियमों, शिक्षा माध्यम, पाठ्यक्रमों, लेखन, प्रकाशन, पाठकों की अभिरुचि, गुणवत्ता आदि सम्बन्धित आयामों की समस्यायें है; वे वस्तुतः हमारी व्यक्तिगत एवं समष्टिगत चेतना, विचार एवं जीवन-मूल्यों से सम्बन्धित हैं। "रोग का वास्तविक निवारण उसके लक्षणों के उपचार मात्र से कभी न हो सका है, यह सत्य हमें राष्ट्रीय स्तर पर आत्मसात् करना ही होगा।" ऐसा होने के बाद स्वान्तःसुखाय विज्ञान शोध एवं लेखन, अध्यापन, प्रकाशन आदि स्वतः हिन्दी एवँ अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से होंगे। प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं विचारकों की शृंखला से आधुनिक दार्शनिक, गणितज्ञ, वैज्ञानिक, अपने को जुड़ा पाकर गौरवान्वित एवं अभिभूत पायेंगे। ऐसा आनन्द किसी भी पदक, डिग्री अथवा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति से नहीं मिल सकता। जहाँ 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' हमारा नारा है, वहीं 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' एक भावनात्मक तथ्य एवं वैज्ञानिक सत्य है। महात्मा गाँधी ने कहा है, "अहिंसा करने का दावा वही कर सकता है, जिसमें हिंसा की क्षमता विद्यमान हो, अन्यथा अक्षम व्यक्ति कायरता दिखा सकेगा, अहिंसा नहीं।" इसी कड़ी में जो देश, जाति, समाज अपनी भाषा एवं संस्कृति के अनुरूप चिन्तन, शोध, कार्य करेगा वह मूल एवं उच्चस्तरीय हो सकेगा—'नकल कभी भी मूल से आगे नहीं जा सकती।' इसलिए आज यह नितान्त आवश्यक है, समय तेजी से गुजरता जा रहा है कि मूल चिंतन एवं अद्भुत सृजन को अंकुरित करने के लिए 'हम भारतीय भाषाओं की गोद में पलें एवं पोषण प्राप्त करें।' इस ध्रुव सत्य को नकारना, बहाने करके इसे अनदेखा करना, भारतीय राष्ट्र के लिए आत्मघाती ही होगा। हमें जीवन जीना है, सृजन को साकार करना है, आत्महत्या हमारी सांस्कृतिक चेतना का अंग नहीं है, अतः भारतीय भाषाओं के प्रयोग अध्ययन, अनुशीलन में ही हमारी नियति तथा जीवन-गति है, यह हम अच्छी तरह समझ लें। हमें चाहिए कि हम भाषा समेकित सिद्धांत (unified language theory) के रूप में अंगीकृत करके इससे अपना वर्चस्व स्थापित करें।

□□

हिन्दी में विज्ञान लेखन--एक सुझाव

स्वामी आत्मानन्द परमहंस

सन् 1981 में केन्द्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक व उपनिदेशक, आधुनिक बीजगणित के परिभाषिक अंग्रेजी शब्दों के समानार्थक हिंदी-पदों की खोज में प्रयाग आये। उन दिनों इन पंक्तियों का लेखक मेहता गणित एवं गणितीय भौतिकी शोध संस्थान प्रयाग में था। आधुनिक बीजगणित के शोधकर्त्ता होने के कारण मुझे तथा एक और वैज्ञानिक को यह कार्य सौंपा गया। हम लोग तीन दिन तक इस कार्य में तल्लीन रहे। बताया गया था कि केवल डिक्शनरी नहीं बनानी है बल्कि हिन्दी भाषा में एक एन्साइक्लोपीडिया तैयार करना है जो कि हिन्दी भाषा में उपयुक्त समानार्थक विज्ञान विषयक पद दे सके। तीन दिनों बाद जब निदेशक जी चले गये तो हमारे एक अन्य वैज्ञानिक मित्र ने (जो उन दिनों उक्त मेहता संस्थान में ही थे, किन्तु जिन्होंने हिन्दी निदेशालय वाले कार्य में नहीं भाग लिया था) मुझसे एक व्यक्तिगत प्रश्न यह पूछा कि 'यह जो शब्दावली आप लोग तैयार कर रहे, उसे कितने लोग पढ़ेंगे और लाभान्वित होंगे अथवा यह आधुनिक बीजगणित के वर्तमान जिज्ञासुओं तथा अध्येताओं के लिए कितनी सहायक हो सकेगी ?' प्रश्न टेढ़ा था और हम लोग कुछ देर तक उत्तर-प्रत्युत्तर करते रहे। अन्त में एक सुझाव निकला जो वर्तमान संगोष्ठी के सन्दर्भ में बड़ा उपयोगी जान पड़ता है। किसी गूढ़ वैज्ञानिक विषय पर लिखते समय यदि सुपरिचित हिन्दीपदों में से कोई समानार्थक पारिभाषिक शब्द मिलता है तो उपयोग किया जाय। अन्यथा वर्तमान में सामान्य जन के लिए कठिन लगने वाली संस्कृत पदावली से युक्त पारिभाषिक शब्द प्रथम स्तर पर प्रयोग करने के बजाय अंग्रेजी में प्रचलित पारिभाषिक शब्द को ही हिन्दी लिपि में लिखकर उपयोग कर लिया जाय। कालान्तर में समुचित समानार्थक हिन्दीपद मिलने पर, हिन्दी में लिपिबद्ध अंग्रेजी शब्द की भी आव-

श्यकता नहीं रहेगी । यहाँ एक उदाहरण देकर यह बताया जा रहा है कि इसी विधि को अरबी तथा योरोपीय वैज्ञानिकों ने उस समय अपनाया था जबकि विज्ञान में अग्रणी प्राचीन भारत से बहुत सी विज्ञान की शाखाएँ पश्चिम ले जायी गयीं । आठवीं शताब्दी में उज्जैन का कंक नामक एक ज्योतिर्विद गणितवेत्ता बगदाद के दरबार में बुलाया गया । उससे अरबी विद्वानों ने आर्यभटीय पढ़ी तथा उसका अरबी में अनुवाद भी कंक की सहायता से किया जो उनके यहाँ 'आरजभर' अथवा 'आरजबहज' के नाम से अभिहित हुआ । नवीं शताब्दी में अल्खवारिज्मी नामक अरबी विद्वान यहाँ से बहुत सी विज्ञान की रचनाएं अरब ले गया । अब हम एक उदाहरण से यह देखेंगे कि कैसे भारतीय वैज्ञानिकों की 'ज्या' लैटिन में पहुँचते-पहुँचते 'साइन' (sine) बन गयी, जिसे कि आज पूरा विश्व ही ग्रहण किये हुए हैं । 'ज्या' का एक पर्यायवाची शब्द है जीवा । जब इसे अरबी गणितज्ञों ने पाया, इसका उच्चारण उन्होंने अपने अनुसार किया 'जीबा' । कालक्रम से बिगड़ते-बिगड़ते उनके यहाँ अब 'जैब' हुआ । अरबी में पहले से ही इसी के सदृश उच्चारण वाला किन्तु भिन्नार्थक एक दूसरा भी शब्द था जो 'बूज़्म' (वक्षस्थल) या 'बै' के लिए प्रयुक्त होता था और इन अर्थों का बोध कराने वाला एक लैटिन शब्द है 'साइनस' । अत: घेराडों आदि लैटिन अनुवादकों को सर्वप्रथम जब 'जैब' मिला तो उन्होंने भ्रमवश दूसरे शब्द वाला ही अर्थ ग्रहण किया और अपनी भाषा के अनुसार उसे 'साइनस' ही कह डाला जिसका संक्षिप्त रूप है 'साइन' । इस प्रकार भारत की 'ज्या' ने साइन का रूप ग्रहण कर लिया जो आज विश्वभर में प्रसिद्ध है । यही परिस्थिति 'कोटिज्या' अथवा संक्षेप में 'कोज्या' की है । संस्कृत वाङ्मय में यह प्रसिद्ध है कि कई पक्षों में एक पक्ष को कोटि कहते हैं । जैसे कि 'कमरे में प्रकाश है कि नहीं' इस कथन में एक कोटि है 'कमरे में प्रकाश है' तथा दूसरी कोटि है 'कमरे में प्रकाश नहीं है' । त्रिकोणमितीय सन्दर्भ में भाव यह हुआ कि 'नव्वे अंश के अन्दर किसी चाप का पूरक' । अत: तात्पर्य यह निकला कि

'कोटिज्या=पूरक चाप की ज्या'

इस प्रकार जब 'ज्या' पश्चिम में जाते-जाते साइन हो गयी तो 'कोज्या' भी स्वाभाविक रूप से 'कोसाइन' हो गयी। पश्चिम में जाकर और उसी का संक्षिप्त रूप है कॉस । यही परिस्थिति अन्य त्रिकोणमितीय पदों की हुई तथा अन्य वैज्ञानिक तथ्यों के साथ भी यह हुआ । अब अवसर है वैज्ञानिक तथ्यों को पश्चिमी भाषा से हिन्दी में लाने का । अत: उपर्युक्त विधि अपनाना कुछ समय के लिए अनुचित न होगा ।

आनुषंगिक एक सुझाव यहाँ यह भी है कि यदि प्रारम्भ से विज्ञान की शिक्षा हिन्दी अथवा भारत की किसी और भाषा में हो तथा वैज्ञानिक तथ्यों पर चिन्तन भारतीय भाषा के माध्यम से करने की आदत डाली जाय तो भविष्य में भारतीय भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक शोध लेख लिखने में आज की भाँति कठिनाई नहीं होगी एवं कुछ दिनों में भारतीय भाषाएँ किसी भी प्रकार के वैज्ञानिक भाव को व्यक्त करने में सक्षम हो सकती

हैं । हिन्दी के लिए तो यह विधि भलीभाँति सफल होगी क्योंकि उसे समृद्ध करने के लिए संस्कृत भाषा सन्नद्ध है । हाँ, यह आवश्यक है कि हिन्दी को भावाभिव्यक्ति में सक्षम और सशक्त बनाने के लिए कम से कम माध्यमिक स्तर तक संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य रूप से कराया जाना चाहिए ।

□□

विज्ञान की भाषा

गिरिराज किशोर

हर युग का एक मुख्य स्वर होता है। जिस युग का जब जो स्वर होता है वह उसी से निर्देशित होता है। इस शताब्दी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का स्वर सबसे ज्यादा प्रखर है। 17वीं शताब्दी के बाद यूरोपीय देशों ने विज्ञान के विकास में सर्वाधिक सहयोग दिया। यह बात अलग है कि सतरहवीं शताब्दी से पहले भारत, चीन, अरब आदि एशियाई देश विज्ञान के क्षेत्र में ज्यादा विकसित थे और यूरोपीय देश उनसे लाभान्वित होते रहे थे। लेकिन तब ज्ञान व्यवसाय नहीं था। विज्ञान को ज्ञान की धारा के रूप में लिया जाता था। अमेरिका के बारे में आज यह कहा जाता है कि वहाँ सामरिक प्रौद्योगिकी का इतना व्यवसायीकरण हो गया है कि यदि वह यह तय करे कि उसे बन्दूकें या अन्य सामरिक सामान नहीं बनाना है, तो उसके पास लोगों को वैकल्पिक रोजगार देने का कोई दूसरा रास्ता नहीं होगा। यहाँ तक कि अगर किसी राज्य में किन्हीं विशेष स्थितियों के कारण सामरिक सामान बनाने वाली एक भी फैक्ट्री बन्द करनी पड़े तो उस क्षेत्र के सीनेटर के लिए अगला चुनाव जीतना कठिन हो जाएगा। इन देशों की मजबूरी है कि वे प्रौद्योगिकी को उन्नत करते जायें और सामरिक सामग्री के उत्पादन में लगाते जायें। प्रौद्योगिकी आज विज्ञान का हिस्सा नहीं रही बल्कि उसकी राजनीतिक शक्ति बन गई है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी का यह पक्ष विकसित देशों तक के राजनीतिक रुझानों का निर्धारण कर रहा है। तीसरी दुनिया के देशों की स्थिति तो और भी शोचनीय है। उन्हें विकसित देशों के रुझानों से ही अपने भाग्य को जोड़ना पड़ता है। तीसरी दुनिया के लोगों के सामने यह मुख्य सवाल है कि विकसित देशों से उधार लेकर विज्ञान की चादर यथावत् ओढ़ लें या उसके बारे में अपनी जरूरत, क्षमता और वैचारिकता के आधार पर स्वतंत्र सोच विकसित करें।

सबसे पहले तो यह स्पष्ट होना चाहिये कि विज्ञान चाहे चिकित्सा के रूप में हो, या कृषि और खनिज के लिए, या स्वास्थ्य और पर्यावरण की दृष्टि से, या फिर सुरक्षा को देखते-हुए हरहालत में वह जीवन का अभिन्न अंग है। इसलिए सामान्य आदमी के लिए यह आवश्यक है कि वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में कम से कम इतना तो जाने कि उसके गुण और दोष क्या हैं या वह इन्सान की जिन्दगी को बेहतर बनाने में कितना योग देता है या बदतर बनाने में क्या भूमिका निभाता है। जब तक विज्ञान के साथ हमारा आत्मीय रिश्ता कायम न होगा तब तक वह सामान्य आदमी के लिए या तो एक जादुई-यथार्थ बना रहेगा या एक ऐसा हिंसक पशु हो जायेगा जिसके बारे में न तो हम कुछ जानते होंगे और न समझते होंगे। केवल उससे भय खाते रहेंगे।

दरअसल हमारे साथ इतिहास ने एक बड़ा धोखा किया। आजादी की लड़ाई के बाद स्वतंत्रता सेनानियों की जो यह तीसरी पीढ़ी सत्ता में आई, उसने अपनी भाषागत सुविधा को सर्वोच्च स्थान दिया और उसी के अनुसार ही शिक्षा संबंधी नीति का निर्धारण किया। अंग्रेजी के पास ही विज्ञान के सिमसिम की कुंजी है। उनके सामने प्रश्न दो बातों का था—(1) अंग्रेजी डेढ़ प्रतिशत लोगों की भाषा थी और वे श्रेष्ठता बनाये रखने के लिए उसे शिक्षा और कार्यविधि की भाषा बनाये रखना चाहते थे। भले ही परंपरागत जमींदारी खत्म कर दी गई हो परंतु अंग्रेजी को प्रभावी बनाये रखकर उन्होंने अपनी बौद्धिक-जमींदारी को बनाये रखा। (2) उन्हें यह लगा कि अगर अंग्रेजी को हिन्दी और भारतीय भाषाओं से बदल दिया गया तो उनका वर्चस्व समाप्त हो जायेगा और वे परनिर्भर हो जायेंगे। बे अपनी-अपनी मातृभाषाओं को अंग्रेजी के मुकाबले एक अ-संस्कारी भाषा समझते थे। उसे इस योग्य नहीं मानते थे कि उसके माध्यम से विज्ञान या प्रशासन का काम किया जाय। अतः अंग्रेजी को बरकरार रखा और अपने वर्चस्व को बनाये रखा। इस चाल ने देश को एक ऐसी अंधेरी गुफा में धकेल दिया जिसके बारे में यह अंदाज लगाना अब असंभव सा लगता है कि वह कब और कहाँ खत्म होगा। भारतीय भाषाओं के पक्ष में राजधानी में जो अनशन चल रहा है यह कोई क्षणिक आवेश का परिणाम नहीं बल्कि यह उसी तरह इतिहास का एक मोड़ है जैसा अंग्रेजों के शासन के बाद आजादी की लड़ाई का था। परिवर्तन की इस माँग को ज्यादा देर तक नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। आज साहित्य या दर्शन परिवर्तन का उतना बड़ा माध्यम नहीं जितना विज्ञान है।

इस लिए यह प्रश्न विज्ञान को संबोधित है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विदेशी भाषा में ही क्यों? देश के मेधावी छात्रों की पीढ़ी क्या अंग्रेजी का गुलाम बनकर ही वज्ञान प्राप्त कर सकती है? क्या वे विज्ञान अपनी भाषा के माध्यम से नहीं सीख और जान सकते? विज्ञान की जो द्विपक्षीय तिजारत चालू है उसे कैसे समझें? उसे समझने के लिए मजबूरन उन्हें अंग्रेजी की तरफ जाना पड़ता है। उसका नतीजा यह होगा कि जो

कुछ भी उनकी समझ में आयेगा वह समझाने वालों की स्थितियों और सुविधा के अनुसार होगा। उदाहरण के लिए अगर आप शब्दावली को ही लें तो प्रामाणिक शब्दावली उन्हीं की भाषा में है जिन्होंने उस क्षेत्र में काम किया है। यहाँ भी जो काम होता है उसकी शब्दावली भी वही रहती है। हमें उससे समझौता करना पड़ता है। शायद दूसरा कोई उपाय भी नहीं। हमने अपनी स्थितियों के हिसाब से काम किया होता तो हमारी शब्दावली में भी हमारे अनुभव की झलक होती। अब नहीं है तों नहीं है। हमें उसी शब्दावली को स्वीकार करके विज्ञान के क्षेत्र में अपना चिन्तन विकसित करना होगा। लेकिन एक कठिनाई है कि चिन्तन की भाषा हमेशा अपनी होती है। हम भले ही दूसरे की समृद्ध से समृद्ध भाषा ले लें पर हम उसे स्वतंत्र चिन्तन की भाषा के रूप में इस्तेमाल नहीं कर सकते। वह हमारे चिन्तन और आविष्कार की स्वतंत्रता पर अंकुश का काम करने लगती है और धीरे-धीरे उसी तरह पालतू बना लेती है, जैसे कि हम बने हुए हैं। हमारे शीर्षस्थ लोगों की एक अजब मान्यता हो गई। वे समझते हैं कि विज्ञान ओर प्रौद्योगिकी एक ऐसा जल है जो बाहर से ही आयात किया जा सकता है। लेकिन ताल तो हमारी धरती ही है। उसे उसी में इकट्ठा करना होगा। हाँ, अगर हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी की ओर से हमेशा के लिए संवेदनाविहीन बन जायें तो फिर भाषा विज्ञान, उसके प्रभाव, हमारे लिए कोई विशेष महत्व नहीं रखते। फिर तो चाहे जो भाषा हो, एक बँधुआ मजदूर की तरह उसे ढोयेंगे ही।

अंग्रेजी केवल दो से पाँच प्रतिशत लोगों की ''मुँहबोली'' मातृभाषा है। जनमानस में होने वाले परिवर्तनों को निकट से जानने का इस भाषा के पास कोई तरीका नहीं। स्वाभावतः मंडन मिश्र के तोते की तरह रटे हुए सूत्र ही विज्ञान का आधार बन जाते हैं। एक मिस्त्री और पढ़े लिखे टेक्नीशियन की तरह ही हम उनका प्रयोग कर पाते हैं। अपनी भाषा के अभाव में विज्ञान और प्रौद्योगिकी एक अलौकिक तत्व की तरह सामान्य आदमी को चकित करता है। सच पूछिये तो विज्ञान मूलतः एक रचनात्मक क्षेत्र है। परन्तु भाषा के अलगाव के कारण वह हमारे हाथ में मात्र एक उपकरण की तरह रह जाता है। इस रचनात्मकता को हम ऋण-वृत्ति से विकसित नहीं कर सकते। इसके लिए मौलिक संवेदना की आवश्यकता होगी। तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री श्री पी० वी० नर सिंह राव ने ''भाषा और प्रौद्योगिकी'' पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा है-''विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विदेशी भाषा से कोई राष्ट्र न तो मौलिक ढ़ंग से विकास कर सकता है, न ही अपनी विशिष्ट वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी पहचान बना सकता है। विदेशी भाषा से अनुवाद की बैसाखी का सहारा भी अधिक समय तक नहीं लिया जा सकता। इसलिए हिन्दी और भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मौलिक लेखन का अपना महत्व निर्विवाद है। ''सरकार में बैठे कुछ पढ़े-लिखे लोग जब निष्पक्ष होकर सोचते हैं तो वे ज्यादा तटस्थता से अपनी बात कहते हैं लेकिन जब वे नौकरशाही की दृष्टि से देखते हैं तो उनकी यह तटस्थता अप्रभावी हो जाती है। आज हमारे पास विज्ञान और प्रौद्योगिकी की अपनी

भाषा नहीं । न केन्द्र में और न प्रदेशों में । उसका नतीजा यह है कि विज्ञान की शिक्षा का व्यवसायिक महत्व होने के कारण अनपढ़ व्यक्ति भी अपने बच्चे को अंग्रेजी पढ़ाने की होड़ में ढकेल देते हैं । बाद में पता चलता है कि वह बच्चा न विज्ञान ही सीख पाता है और न ही अंग्रेजी । यदि विज्ञान को संवेदना का हिस्सा बनना है तो हमें भारतीय भाषाओं की तरफ लौटना होगा ।

1971 में आई० आई टी०, मद्रास के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर प्रो० एम० जी० के० मेनन ने कहा था-"इस देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास पूरी तरह अंग्रेजी पर निर्भर है । अंग्रेजी जानने वाले लोग गिनती के हैं-ऐसी स्थिति में अंग्रेजी न जानने वाले एक विशाल विज्ञानोन्मुख समुदाय का विकास कैसे हो सकता है और कैस देश में विज्ञान का वातावरण बन सकता है । इतने छोटे अंग्रेजी जानने वाले वर्ग के साथ हम विज्ञान का विकास नहीं कर सकते । विज्ञानी सामंतों ने उनके इस वक्तव्य का काफी विरोध किया था । विज्ञान के संदर्भ में हमारे पास दो मॉडल हैं । एक जर्मन मॉडल है जिसके अंतर्गत तकनीकी शब्दावली तक उनकी अपनी है । दूसरा जापान का मॉडल है-जहाँ चिन्तन और अभिव्यक्ति की भाषा जापानी है और तकनीकी शब्दावली अंग्रेजी । हमें चिन्तन और अभिव्तक्ति की भाषागत स्वतंत्रता के बारे में सोचना है । वह मातृभाषा ही हो सकती है । अगर हम उसे पूरी तरह विदेशी भाषा रखेंगे तो अभी जो विरोध उत्तर भारत में हो रहा है वह अन्य प्रदेशों में फैलेगा । क्योंकि कभी न कभी अंग्रेजी की हिन्दी और भारतीय भाषाओं को आपस में लड़ाने वाली कूटनीति का पर्दाफाश होगा । विदेशी भाषा के मोहजाल से मुक्त होकर लोग अपनी अस्मिता की खोज करेंगे । तब शायद स्थिति यह आये कि अंग्रेजी को पूरी तरह विदा करना पड़े ।

□□

तृतीय खण्ड

शब्दावली एवं अनुवाद

भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली : सिद्धान्त एवं व्यवहार

डॉ० हरिमोहन कृष्ण सक्सेना

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली पर चिन्तन-मनन पिछली शताब्दी में ही शुरू हो गया था। सन् 1871 में बंगाल सरकार ने एक समिति नियुक्त की जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं में उपयुक्त पुस्तकें तैयार करने के तरीकों पर विचार करना था। इस समिति के एक सदस्य राजेन्द्र लाल मिश्रा ने भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करने के विषय पर एक निबंध प्रस्तुत किया। इस निबंध का शीर्षक "A scheme for the Rendering of European Scie ntific Terms into the Vernaculars of India" है और ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण घटना है। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के संबंध में इसमें कई सिद्धांतों का विवेचन किया गया है।

सन् 1888 में गुजराती के क्षेत्र में प्रो० टी० के० गज्जर ने तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली की परम्परा 1898 से शुरू होती है जब काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अँग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पर्याय बनाने के लिए एक समिति की स्थापना की। अनेक विद्वानों के सहयोग से सन् 1906 में कई विषयों की शब्दावली प्रकाशित की गई। सभा के तत्वाधान में कुल मिलाकर लगभग 10,000 अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्यायों का निर्माण किया गया। पारिभाषिक शब्दावली के बारे में व्यक्तिगत प्रयासों में डॉ० रघुवीर का नाम बहुत ही महत्वपूर्ण है। सन् 1948-49 में डॉ० रघुवीर द्वारा सम्पादित एक वृहत् अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक कोश प्रकाशित हुआ। इससे पहले इतने व्यापक स्तर पर शब्दावली सम्बन्धी चिन्तन नहीं हुआ था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में शब्दावली निर्माण के कार्य में तेजी आई और

कई प्रांतों में अपनी-अपनी भाषाओं में शब्दावली निर्माण करने का कार्य शुरू किया गया। हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा विज्ञान परिषद्, प्रयाग ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने सन् 1950 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली मंडल की स्थापना की जिसने लगभग 10 वर्ष बाद एक आयोग का रूप ले लिया। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के तत्वाधान में उपलब्ध शब्दावली की समीक्षा करने के बाद कुछ सिद्धांत निर्धारित किए गए जिनमें से प्रमुख इस प्रकार है :

1. 'अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों' को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यन्तरण करना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के अन्तर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिये जा सकते हैं :

(क) तत्वों और यौगिकों के नाम, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन, कार्बन-डाइऑक्साइड आदि;

(ख) तौल और माप की इकाइयाँ और भौतिक परिमाण की इकाइयां, जैसे डाइन कैलोरी, ऐम्पियर आदि;

(ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाये गये हैं, जैसे फारेनहाइट के नाम पर फारेनहाइट तापक्रम, वोल्टा के नाम पर वोल्टामीटर और ऐम्पियर के नाम पर ऐम्पियर आदि;

(घ) वनस्पति विज्ञान. प्राणि विज्ञान, भू विज्ञान आदि की द्विपदी नामावली।

2. हिन्दी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार विरोधी और विशुद्धिवादी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

3. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासम्भव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो :

(क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों; और

(ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

4. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग में वैज्ञानिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं। जैसे telegraph/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, atom के लिए परमाणु आदि। ये सब इसी रूप में व्यवहार किए जाने चाहिए।

इन सिद्धांतों के आधार पर शब्दावली आयोग द्वारा लगभग 4 लाख से अधिक पारिभाषिक शब्दों को अन्तिम रूप दिया जा चुका है और विभिन्न शब्द संग्रहों के रूप में अधिकांश शब्दावली प्रकाशित की जा चुकी है।

अधिकांश भारतीय भाषाओं की शब्दावली में संस्कृत शब्दों की प्रधानता है। प्राचीनकाल में अपना देश आयुर्विज्ञान, ज्योतिष, दर्शन, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, गणित आदि विषयों को दृष्टि से अग्रणी था। इसलिए संस्कृत भाषा में इन विषयों से सम्बन्धित पर्याप्त शब्दावली उपलब्ध है। इन शास्त्रों से सम्बन्धित ग्रन्थ अनेक भारतीय भाषाओं में समय-समय पर लिखे गये और संस्कृतमूलक शब्दावली भी काफी हद तक अन्य भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होती रही है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है :

'मिल्की वे' के लिए 'आकाश गंगा', 'मास' के लिए 'मंगल', 'लंग' के लिए फुफ्फुस (हिन्दी में फेफड़ा), 'किडनी' के लिए 'वृक्क' (कुछ भारतीय भाषाओं में गुर्दा या मूत्र पिंड); 'क्लॉउड' के लिए अधिकांश भारतीय भाषाओं में 'बादल' की जगह 'मेघ' और 'ऑटम' के लिए 'पतझड़' के स्थान पर 'शरद्' शब्द का प्रयोग होता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि अखिल भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली पर विचार करते समय संस्कृतमूलक शब्दावली का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है। जो लोग संस्कृतनिष्ठ शब्दों पर आपत्ति करते हैं वे प्राय: इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते कि अंग्रेजी में हजारों शब्द लेटिन और ग्रीक भाषाओं के लिए गये हैं। विश्व की अनेक भाषाएँ अपने शब्द भंडार के विकास के लिए क्लासिकल भाषाओं पर निर्भर रही है।

इसमें संदेह नहीं कि व्याख्यात्मक शब्द अपेक्षाकृत अधिक सरल और सुबोध होते हैं और जहाँ असुविधा या कठिनाई न हो वहाँ इन्हें अपनाने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। किन्तु ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ व्याख्यात्मक शब्दों से भी अर्थ स्पष्ट नहीं होता। उनकी व्याख्या और परिभाषा देखने पर ही वांछित अर्थ समझ में आता है। अंग्रेजी 'मिलकी वे' या 'आकाश गंगा', 'लाइट इयर' या 'प्रकाश वर्ष','हायर प्लान्ट' या 'उच्चतर पादप', 'थर्मोफिल' या 'तापरागी', 'फोटोसिन्थेसिस' या प्रकाश संश्लेषण आदि अनेक उदाहरण गिनाये जा सकते हैं, जो व्याख्यात्मक होते हुए भी तकनीकी अर्थ को स्पष्ट नहीं करते। जब तक हमें इनकी व्याख्या या परिभाषा न पता हो तब तक हमें इनके वैज्ञानिक अर्थ का बोध नहीं होता। कहीं-कहीं पर व्याख्यात्मक शब्दों के साथ संक्षिप्त संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग भी ठीक रहता है—जैसे अंग्रेजी के 'मेन्टीनेन्स' शब्द के लिए हिन्दी में 'रख-रखाव' और 'अनुरक्षण' दोनों शब्द चलते हैं। अंग्रेजी 'फर्टीलाइजर' के लिए पहले 'रासायनिक खाद' का व्यापक रूप से प्रयोग होता था। लेकिन धीरे-धीरे 'उर्वरक' शब्द आगे बढ़ता गया और अब रासायनिक खाद शब्द बहुत हो कम देखने-सुनने में आता है। इस उदाहरण से एक बिन्दु सामने आता है कि केवल अर्थ-बोध या सुबोधता के आधार पर ही शब्दों का मूल्यांकन करना तर्कसंगत नहीं होता। 'उर्वरक' उतना सुबोध

नहीं है जितना कि रासायनिक खाद। लेकिन इसके प्रयोग में सुविधा है। संक्षिप्त होने के कारण इससे व्युत्पन्न शब्द गढ़े जा सकते हैं। इसके अलावा इसमें और भी गुण हैं, इसमें नये विचारों का समावेश किया जा सकता है। आजकल एक नया शब्द 'बायोफर्टीलाइजर' काफी प्रयोग किया जा रहा है। इसके लिए हिन्दी पर्याय बनाते समय 'जैव उर्वरक' के प्रयोग में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती, जबकि 'रासायनिक खाद' के साथ जैव शब्द जोड़ने से दो परस्पर विरोधी तत्व साथ-साथ आ जाते हैं और पारिभाषिक शब्द वाक्यांश का रूप धारण कर लेता है।

भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दावली पर विचार करते समय संस्कृत की उपयोगिता की अनदेखी नहीं की जा सकती। अधिकांश भारतीय भाषाओं की शास्त्रीय शब्दावली संस्कृत पर ही आधारित है। अगर वैज्ञानिक शब्दावली को अखिल भारतीय स्वरूप देना है तो संस्कृत का आधार लेना ही पड़ेगा। हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में हमारे सामने एक विरोधाभास की स्थिति दिखाई देती है। एक तरफ हम यह चाहते हैं कि हिन्दी की शब्दावली सरल हो अर्थात् ऐसे शब्दों का यथासम्भव प्रयोग किया जाए जिन्हें आम आदमी समझ सके। लेकिन दूसरी ओर हम अखिल भारतीय शब्दावली की भी बात करते हैं और इस दृष्टि से संस्कृतनिष्ठ शब्दावलीं को अपनाने को बढ़ावा देते हैं। वैज्ञानिक शब्दावली आयोग ने कुछ समय पहले 'अखिल भारतीय शब्दावली' की एक योजना शुरू की थी। इसके अन्तर्गत विभिन्न वैज्ञानिक तथा मानविकी विषयों में लगभग 20,000 अंग्रेजी शब्दों के ऐसे पर्याय छाँटे गये हैं जिनका उपयोग कई भारतीय भाषाओं में हो सकता है। इस अखिल भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली में निम्न तीन वर्गों के शब्दों का समावेश है :

1. अंग्रेजी से आगत शब्द जिनके लिए भारतीय भाषाओं में अन्य पर्याय नहीं प्रयुक्त हो रहे हैं। जैसे, विटामिन, प्रोटीन, ऑक्सीजन, हार्मोन, गैस आदि।

2. अंग्रेजी आगत शब्द के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में भी पर्याय उपलब्ध हैं। जैसे बैक्टीरिया और जीवाणु, ऐटलस और मानचित्रावली या भू–चित्रावली आदि।

3. संस्कृत शब्दों के साथ-साथ सामान्य भाषा के पर्याय या क्षेत्रीय शब्द भी प्रयुक्त हो रहे हैं। जैसे, वृक्क और गुर्दा या मूत्रपिण्ड, फुप्फुस और फेफड़ा, कशेरुक-दण्ड और रीढ़ की हड्डी, शारीर और शरीर रचना विज्ञान, मेघ और बादल आदि।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संस्कृतनिष्ठ शब्दावली अन्य भारतीय भाषाओं में भी काफी हद तक स्वीकृत हो सकती है। संस्कृत शब्दों के बारे में सबसे ज्यादा शोर या विरोध हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही होता है, हालांकि अनेक संस्कृतिनिष्ठ शब्द अब आम बोलचाल में प्रयुक्त हो रहे हैं। आकाशवाणी, दूरदर्शन, छायांकन आदि अनेक शब्द हैं जो शुरू-शुरू में बहुत ही अजीब या अटपटे लगते थे लेकिन आज आम

व्यवहार में आ रहे हैं। जो लोग 'आकाशवाणी' शब्द पर टीका-टिप्पणी करते हैं उनसे पूछा जाए कि 'रेडियो' का क्या अर्थ है? रेडियो शब्द के तीन अर्थ हैं और इस तरह इसके प्रयोग में काफी भ्रांति हो सकती हैं जबकि आकाशवाणी में इस तरह की भ्रांति की सम्भावना कम है। हमारी शब्दावली सम्बन्धी बहस प्रायः पारिभाषिक शब्दों के सही-गलत या सरल-कठिन तक ही सीमित रह जाती है। हम शब्दावली को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास नहीं करते और इस तरह व्यर्थ की उलझन में फँस जाते हैं। पारिभाषिक शब्दों पर टीका-टिप्पणी करने वाले अधिकांश लोग यह जानने का भी प्रयास नहीं करते कि पारिभाषिक शब्द किसे कहते हैं, उसकी क्या विशेषताएँ हैं? वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली पर किसी प्रकार विचार-विमर्श करने से पहले हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि पारिभाषिक शब्द से हमारा क्या अभिप्राय है। एक कोशकार ने पारिभाषिक शब्द (Technical Term) की व्याख्या इस प्रकार की है :

'पारिभाषिक शब्द वह शब्द या अभिव्यक्ति है जो मनुष्य की विशिष्ट गतिविधियों या मानव प्रकृति के किसी विशेष पहलू से सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान की शाखा के विद्वान के लिए विशेष महत्व रखता है। पारिभाषिक शब्द वास्तव में विशेषज्ञों द्वारा अपने विचारों को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए गृहीत-अनुकूलित या आविष्कृत प्रतीक हैं। प्रत्येक शब्द या अभिव्यक्ति किसी विशेष विचार संकल्पना को व्यक्त करने की संक्षिप्त विधि है। इसे केवल तदर्थ शब्द समझना चाहिए और इसके अर्थ का सही-सही अन्दाज नहीं लगाया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पारिभाषिक शब्द भाषा के वे शब्द हैं जो ज्ञान-विज्ञान के किसी क्षेत्र में विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। पारिभाषिक शब्दों के अर्थ-तत्व को स्पष्ट करने के लिए परिभाषा या व्याख्या पर समुचित ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। ऐसे बहुत कम शब्द हैं जो इतने व्याख्यात्मक होते हैं कि उनका अर्थ अपने आप ही समझ में आ जाए। अधिकांश पारिभाषिक शब्दों को समझने के लिए हमें उनकी टीका या व्याख्या करने की जरूरत पड़ती है। शब्दों का एक ऐसा वर्ग भी है जो पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होता हैं और सामान्य अर्थों में भी। ऐसे शब्दों के कई अर्थ होते हैं। ऐसे असंख्य अनेकार्थक शब्द अंग्रेजी और हिन्दी या संस्कृत में प्रयुक्त हो रहे हैं।

प्रकरण या सन्दर्भ, लोक-प्रयोग या आचार्यों द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार वे भिन्न-भिन्न अर्थों को व्यक्त करते हैं।

पारिभाषिक शब्दों का एक ऐसा वर्ग भी है जिन्हें आम बोलचाल में हम पर्याय-वाची मानकर चलते हैं। किन्तु जब हम किसी विषय की गहराई में जाते हैं तो हम देखते हैं कि ऐसे शब्दों में सूक्ष्म अर्थ-भेद होता है। अंग्रेजी भाषा के एक विद्वान फॉउलर ने अपनी मशहूर पुस्कत 'माडर्न इंग्लिश यूसेज' में इस तरह के अर्थ-भेद का अच्छा विवेचन

किया है। शब्दावली आयोग को भी अनेक स्थलों पर इस पद्धति का सहारा लेना पड़ा है। अंग्रेजी के दो मिलते-जुलते अर्थों वाले शब्द हैं ,स्टीम' और 'वेपर'। इसके लिए क्रमशः 'माप' और 'वाष्प' शब्दों को निर्धारित कर दिया गया है। इसी तरह प्राचीन आयुर्वेद में फेफड़े के अर्थ में दो शब्द मिलते हैं—'फुप्फुस' और 'क्लोम'। अंग्रेजी 'लंग' शब्द के लिए 'फुप्फुस' शब्द स्थिर कर दिया गया है। मछलियों तथा कुछ अन्य जानवरों में साँस लेने के अंगों के लिए अंग्रेजी में 'गिल' शब्द का प्रयोग होता है। इसके लिए हिन्दी में 'क्लोम' शब्द निश्चित कर दिया गया है। अर्थ-भेद के ऐसे अनेक उदाहरण अंग्रेजी, हिन्दी या संस्कृत में मिलते हैं। शेक्सपियर ने अपने एक नाटक **'किंग लियर'** में एक जगह लिखा है :

"Rats, mice and such small deer"

इससे संकेत मिलता हैं कि कम से कम शेक्सपियर के काल तक अंग्रेजी भाषा में 'डियर' शब्द सभी जानवरों के लिए प्रयुक्त होता था और बाद में यह विशेषार्थक बन गया। अब इससे केवल एक प्रकार के जानवर का ही बोध होता है। संस्कृत के 'मृग' शब्द पर भी यही बात लागू होती है। संस्कृत साहित्य में मृगेन्द्र, शाखामृग, पर्णमृग आदि शब्द मिलते हैं जिनसे इस बात का बोध होता है कि प्राचीन काल में भी 'मृग' शब्द सभी जानवरों के लिए प्रयुक्त होता था।

शब्दावली के बारे में एक और प्रकार से भी टीका-टिप्पणी होती है। कुछ लोग यह कहते हैं कि अमुक शब्द से वांछित अर्थ तो निकलता ही नहीं। शब्द और अर्थ की दृष्टि से तकनीकी शब्दों को दो मोटे वर्गों में रखा जा सकता है—पारदर्शी और अपारदर्शी या रूढ़। थर्मामीटर (तापमापी), टेलीविजन (दूरदर्शन), बायोग्राफी (जीवनी) आदि शब्द पारदर्शी है अर्थात् शब्द देखकर इनके तकनीकी अर्थ के बारे में कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है। इसके विपरीत रेडियो, वोल्ट, वाट, सैंडविच, अमोनिया आदि शब्द अपारदर्शी कहे जायेंगे क्योंकि इनकी व्याख्या या परिभाषा देखे बिना इनके तकनीकी अर्थ के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता।

वैज्ञानिक शब्दावली की दृष्टि से विश्व के तीन महानतम् वैज्ञानिकों-लावाजिये, माइकेल फैराडे और लिनिअस—ने दोनों प्रकार के शब्दों का निर्माण किया है। फ्रांसीसी रसायनज्ञ लावाजिये ने कई रासायनिक तत्वों और यौगिकों का नामकरण किया है। हाइड्रोजन, ऑक्सीजन आदि शब्द इस बात के प्रमाण हैं कि उन्होंने पारदर्शी शब्दों पर अधिक जोर देने का प्रयास किया है। उनका मत था कि किसी वैज्ञानिक संकल्पना के लिए ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाए जिनसे उस संकल्पना के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी मिल सके। उन्होंने सार्थकता के साथ-साथ संक्षिप्तता पर भी यथोचित ध्यान दिया। इसके विपरीत ब्रिटिश वैज्ञानिक माइकल फैराडे का विचार लावाजिये से कुछ भिन्न था। उनका मत था कि वैज्ञानिक शब्दों में अर्थ की स्पष्टता होने से कभी-कभी भ्रामक स्थिति उत्पन्न

हो सकती है। शुरू-शुरू में किसी वैज्ञानिक खोज, नये पदार्थ या नये सिद्धांत के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती। उस समय उपलब्ध ज्ञान के आधार पर गढ़ा हुआ सार्थक शब्द बाद में भ्रामक या गलत सिद्ध हो सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया, जो या तो अर्थ शून्य थे या उनसे पर्याप्त अर्थ-बोध नहीं होता था। एनोड, कैथोड, आयन, कैटायन, इलेक्ट्रोलाइट आदि शब्द फैराडे की ही देन हैं।

जीवविज्ञानी लिनियस ने पौधे तथा प्राणियों के नामों को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया और जीव-विज्ञान की द्विपद नामावली को व्यापक आधार प्रदान किया। उनके द्वारा गढ़े हुए शब्दों में उपर्युक्त दोनों विचारों का अच्छा समन्वय देखने को मिलता है। उनके कुछ शब्द ऐसे हैं जो लावाजिये की तरह अर्थ की दृष्टि से स्वतः स्पष्ट हैं। जैसे, डिप्टेरा, लेपीडोप्टेरा, राइनोसेरस आदि। लेकिन 'प्राइमेट्स' जैसे कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो अर्थ की दृष्टि से इतने सुस्पष्ट नहीं हैं।

इन वैज्ञानिकों के अतिरिक्त समय-समय पर अनेक वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक शब्दावली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं का मिला-जुला प्रयोग ही वैज्ञानिक शब्दावली का वास्तविक स्वरूप कहा जा सकता है। अर्थ के अलावा वैज्ञानिक शब्द में और भी कई गुण अपेक्षित हैं। एक ओर तो संक्षिप्तता या लाघव, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। दूसरा यह कि ऐसे शब्दों को प्रधानता दी जानी चाहिए जिनसे आवश्यकता पड़ने पर व्युत्पन्न शब्द गढ़े जा सकें। इस दृष्टि से अंग्रेजी के विटामिन और ऑक्सीजन शब्द सही न होते हुए भी उपयोगी हैं। तीसरी यह बात भी महत्वपूर्ण है कि वैज्ञानिक शब्दों में विकसित होने की क्षमता होनी चाहिए। अर्थात् ज्ञान-विज्ञान के विकास के साथ-साथ शब्दों में नये विचारों को समाविष्ट करने की क्षमता होनी चाहिए।

शब्दावली के बारे में एकमत शायद सम्भव नहीं है। बहुमत यही है कि यथासंभव सरल शब्दों का प्रयोग किया जाये किन्तु जहाँ सरल शब्दों से काम न चले वहाँ संस्कृतनिष्ठ शब्द अपनाएं जाएं। अखिल भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली के विकास के सन्दर्भ में संस्कृत-मूलक शब्दों का अपना महत्व है। जरूरत इस बात की है कि पारिभाषिक शब्दावली को सही परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने का प्रयास किया जाए और एकांगी दृष्टिकोण की जगह समन्वित दृष्टिकोण से शब्दावली पर विचार किया जाए। भाषा बहुआयामी व्यवस्था है। इसके अनेक पहलू हैं और केवल सरलता या सुबोधता के आधार पर तकनीकी शब्दावली का मूल्यांकन करना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता।

□□

शब्दावली, साहित्य-निर्माण और शब्दावली आयोग

प्रेमानन्द चन्दोला

शब्दों अथवा शब्दावली से ही भाषा बनती है और विचार-विनिमय का साधन भाषा ही है। भाषा के बल पर ही पुस्तकों और साहित्य का निर्माण होता है। भाषा का अस्तित्व सामान्य या बोलचाल की शब्दावली, तकनीकी अथवा पारिभाषिक शब्दावली और इनके बीच की अर्ध पारिभाषिक शब्दावली से है। समुदाय विशेष की भाषा में शब्दावली के जब ये तीनों रूप विद्यमान होते हैं तभी वह प्रगतिशील, उन्नत और सफल भाषा कही जा सकती है। भाषा में शब्दावली के दो रूप तो सामान्यतया विद्यमान रहते हैं किन्तु तकनीकी शब्दावली वाले रूप का अभाव होता है, लेकिन जब वह शनैः शनैः तकनीकी शब्दावली को भी अपने में आत्मसात कर लेती है तो वह पूर्ण परिपक्व बनकर हर प्रकार के सम्प्रेषण का सहज माध्यम बन जाती है। भाषा जब विदेशी तथा अन्य स्वदेशी भाषाओं व बोलियों के शब्दों को अपना लेती है तो वह धनी तथा लोकप्रिय बन जाती है। हमारी आधुनिक भारतीय भाषाएं तकनीकी शब्दावली को अपना रही है और वैज्ञानिक प्रगति के सोपानों की ओर अग्रसर हैं। इस दिशा में हमारी भाषाओं का यह एक हर्षद आयाम है।

भाषा भले ही मानव जाति के लिए संचार का सबसे महत्वपूर्ण और अनूठा साधन है लेकिन सुविधा-असुविधा के अनुसार यह वरदान भी है और बाधा भी। आज इक्कीसवीं सदी की ओर अग्रसर होते हुए चूंकि देशों के बीच की दूरियां कम होती जा रही हैं, इसलिए जीवन के विविध क्षेत्रों में पहले की अपेक्षा अब अधिक सफल और तीव्रगति वाले संचार-साधनों की आवश्यकता है, विशेषकर विज्ञान और टेक्नोलॉजी के क्षेत्रों में 1 और संचार और सम्प्रेषण की एकमात्र वाहिका भाषा ही है।

प्राचीन काल से ही हमारा भारत मूलभूत विज्ञानों के क्षेत्र में अग्रणी रहा है और उसकी सभ्यता निश्चित रूप से वैज्ञानिक तन्त्र पर आधारित रही हैं। इसके परिणामस्वरूप हमारे यहाँ अनेक विषयो में पारिभाषिक शब्दावली विकसित होती रही, जिसका प्रयोग तत्व मीमांसा से लेकर भौतिक विज्ञानों और आयुर्विज्ञान तक सफलतापूर्वक होता रहा। आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा ने भारतीय उपमहाद्वीप को जिस एकता के सूत्र में बाँधा था, कालांतर में उसका स्थान अनेक भाषाओं ने ले लिया। फिर ऐसा समय आया जब इसमें से प्रत्येक भाषा का शनैः शनैः अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व और संचार प्रणाली विकसित हो गई। इन सबके मिले-जुले प्रयासों का परिणाम था भारतीय साहित्य और मानव विज्ञानों की श्रीवृद्धि। उस सुदूर अतीत में, भाषाओं की बहुलता के उस दौर में भी एक अखिल भारतीय शब्दावली का अस्तित्व था, जिससे विचार-विनिमय और संचार-प्रक्रिया अबाध रूप से सुगमतापूर्वक चलती थी।

उन्नीसवीं सदी में विज्ञान की दुनिया में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, विशेषकर पश्चिमी देशों की वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों के परिणामस्वरूप। इनके कारण नई संकल्पनाओं का प्रकाश में आना और नई शब्दावली का प्रचलन स्वभाविक था। इस तरह अनेक ऐसे नये शब्द अस्तित्व में आये, जिनके लिए प्राचीन तथा मध्ययुगीन विज्ञान में कोई पर्याय नहीं थे। इसी कारण भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माण के लिए प्रयास करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी उद्देश्य को लेकर भारत सरकार ने 1950 में एक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की और फिर 1961 में इसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का रूप दे दिया।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने आरम्भ से ही ऐसी शब्दावली के निर्माण पर बल दिया जो थोड़े बहुत संशोधन के बाद हमारी विभिन्न भारतीय भाषाओं की प्रगति के अनुरूप ढाली जा सके और अखिल भारतीय स्तर पर व्यवहार में लाई जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त आयोग ने विभिन्न विषयों की शब्दावली को अंतिम रूप देने के लिए विशेष सलाहकार समितियों का गठन करते समय इस बात का ध्यान रखा कि इनमें देश के सभी क्षेत्रों के विषय विशेषज्ञों, अध्यापकों, शिक्षाविदों और भाषाविदों का प्रतिनिधित्व रहे।

सभी सम्बद्ध उपायों का मूल प्रयोजन यही था कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए समान वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली विकसित हो सके। लेकिन दुर्भाग्य से इस उद्देश्य की पूर्ति पूरी तरह से न हो सकी, जैसा कि पिछले दशकों के दौरान विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित वैज्ञानिक तथा तकनीकी शव्दावली के सिंहावलोकन से पता चलता है। इसका एक प्रत्यक्ष कारण तो यह था कि आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली को अपनाने उसका अनुकूलन करने और व्यापक प्रचार करने के लिए राज्य स्तर पर एजेंसियाँ समय से स्थापित नहीं हो पाई। इसके परिणामस्वरूप शब्दावली के मामले में लेखकों और

अनुवादकों को कोई प्रमाणिक स्रोत सामग्री उपलब्ध न हो सकी। ऐसी स्थिति में जो भी तकनीकी साहित्य उनके हाथ लगा, उन्होंने उसी में से पारिभाषिक शब्द ले लिए, भले ही वह साहित्य स्तरीय था अथवा नहीं। इससे भी बुरी एक और बात हुई कि कुछ लेखकों ने कोश विज्ञान के मान्य सिद्धांतों को नजरअन्दाज करके कई नए शब्द खुद ही गढ़ लिए। इसका नतीजा यह है कि आज हर भाषा में एक ही संकल्पना के लिए अनेक पर्याय प्रचलन में हैं। लेकिन अब इस अराजकता को समाप्त करके एकरूपता लाई जा रही है।

इसी बात को ध्यान में रखते हुए शब्दावली आयोग ने आधारभूत वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों के लिए अखिल भारतीय पर्यायों की पहचान और निर्माण की परियोजना हाथ में ली। यह परियोजना विभिन्न राज्यों के पाठ्यपुस्तक मण्डलों के सक्रिय सहयोग से संचालित की जा रही है। इसके अन्तर्गत राज्य मण्डलों से अपनी-अपनी भाषाओं की अच्छी जानकारी रखने वाले विशेषज्ञों को मनोनीत करने का अनुरोध किया जाता है, जो आयोग द्वारा चुने गए आधारभूत पारिभाषिक शब्दों के क्षेत्रीय भाषाई पर्याय एकत्र करके देते हैं। फिर इन भाषावार पर्यायों को क्रमबद्ध करके अखिल भारतीय संगोष्ठियों में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है। इन संगोष्ठियों में उपयुक्त विषय विशेषज्ञों तथा कुछ भाषाविदों को भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। विशेषज्ञों की सहायता से ऐसे शब्दों की पहचान व निर्माण किया जाता है जो सभी एवं अधिकांश भारतीय भाषाओं द्वारा मान्य हो सकें। यदि कोई प्रचलित शब्द सर्वमान्यता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता तो ऐसी स्थिति में भाषाविद् उपयुक्त अखिल भारतीय शब्द के निर्माण में विशेषज्ञों की सहायता करते हैं। उद्देश्य यही है कि समान शब्दावली से देश में एकता और अखंडता का वातावरण व्याप्त रहे और शब्दावली सम्बन्धी अनेकरूपता का निराकरण हो।

इस परियोजना के अन्तर्गत अनेक विषयों की आधारभूत अखिल भारतीय शब्दावली प्रकाशित हो चुकी है और अन्य विषयों की शब्दावली प्रकाशन के विभिन्न चरणों में हैं। इस प्रसंग में विचार-विमर्श के दौरान जो महत्वपूर्ण पहलू उजागर हुए हैं वे इस प्रकार हैं— (1) अन्तर्राष्ट्रीय शब्द सभी को मान्य हैं और उन्हें लिप्यन्तरित रूप में अपना लिया जाता है, (2) अधिकांश संस्कृत शब्द अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकार कर लिए जाते हैं, (3) पहले से प्रचलित अरबी-फारसी से उद्धृत शब्द अधिकांश भारतीय भाषाओं द्वारा मान्य हैं, (4) यदि कोई शब्द किसी एक भी भाषा में अनादर सूचक अथवा अश्लील अर्थ का बोधक है तो उसे एकदम अस्वीकार कर दिया जाता है, (5) यदि किसी भाषा को कोई विशेष शब्द इसलिए मान्य नहीं है कि उसके स्थान पर पहले से कोई क्षेत्रीय शब्द इतना प्रचलित है कि उसे बदलना सम्भव नहीं है तो ऐसी स्थिति में अपवाद स्वरूप उस भाषा को अपने ही पूर्व प्रचलित शब्द का इस्तेमाल करते रहने की छूट दे दी जाती है।

शब्दावली आयोग की भूमिका

तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (सम्प्रति मानव संसाधन विकास मंत्रालय), भारत सरकार द्वारा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना भारतीय संविधान के

अनुच्छेद 351 और राष्ट्रपति के 8 अप्रैल, 1960 के आदेश के अनुसार अक्टूबर, 1961 में हुई थी। आयोग को प्राथमिक रूप से ये कार्य सौंपे गये--(1) भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का निर्माण, (2) हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में शब्दावली के समन्वय, अनुकूलन और विकास का कार्य, (3) भारतीय भाषाओं की विशिष्टता के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों के अनुकूलन। स्वीकारने से सम्बन्धित सिद्धांतों का निरूपण, तथा (4) विभिन्न विषयों में शब्द-संग्रहों, मानक पुस्तकों, संदर्भ-ग्रंथों, अनूदित पुस्तकों का निर्माण जो कि उच्चतर शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में माध्यम परिवर्तन के आवश्यक साधन हैं।

नई शिक्षा नीति (1986) के व्यावहारिक कार्यक्रम के तहत 'विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम परिवर्तन' के सन्दर्भ में शब्दावली आयोग को अतिरिक्त जिम्मेदारी सौंपी गई है और इस दिशा में निम्नलिखित चार कार्यक्रमों का निर्धारण किया गया है :

(क) भारतीय भाषाओं में अब तक किये गये कार्य की तुलना में अब और बड़े पैमाने पर आधुनिक भारतीय भाषाओं में पाठ्यपुस्तकीय सामग्री। संदर्भ-ग्रन्थों, सम्पूरक साहित्य का निर्माण और प्रकाशन।

(ख) विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास।

(ग) अँग्रेजी से भारतीय भाषाओं में पाठ्यपुस्तकों, सन्दर्भ-ग्रन्थों, तथा सम्पूरक साहित्य का अनुवाद, और

(घ) इन शैक्षिक कार्यक्रमों का नियमित पुनरीक्षण तथा मौनीटरन।

शब्दावली निर्माण

आयोग द्वारा विज्ञानों से लेकर मानविकी और सामाजिक विज्ञानों के सभी विषयों से सम्बन्धित 5 लाख से अधिक तकनीकी शब्दों का निर्माण कर उन्हें अलग-अलग विषय सम्बन्धी शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकाशित कर दिया गया है। प्रशासनिक, रेल, डाक-तार, खेल-कूद शब्दावली से लेकर अन्तरिक्ष शब्दावली तक प्रकाश में आ चुकी है। विज्ञानों, मानविकी, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी, कृषि आदि के अँग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्द-संग्रहों के अलावा सुविधा के लिए इनके हिन्दी-अँग्रेजी संस्करण भी देश के प्रबुद्ध वर्ग के लिए मुहैया कर दिये गये हैं। आज वैज्ञानिक प्रगति का संकेतक कम्प्यूटर है और इस तरह कम्प्यूटर शब्दावली का प्रकाशन शब्दावली आयोग की हाल की उपलब्धि है। आयोग विभिन्न विषयों में एक ही संकल्पना के लिए प्रचलित अलग-अलग पर्यायों के समन्वय और सरलीकरण की परियोजना में भी कार्यरत है। चूंकि पूर्व प्रकाशित शब्द-संग्रह समाप्त हो हो गये हैं इसलिए इनके संशोधित नये संस्करण भी कम्प्यूटर प्रणालो पर आधारित मुद्रण-तकनीकों द्वारा शीघ्र प्रकाशित किये जा रहे हैं।

परिभाषा-कोश, पत्रिका आदि सम्पूरक साहित्य

विषयगत परिभाषा-कोश, पत्रिकाएँ, पाठमालाएँ, डाइजेस्ट आदि का निर्माण वस्तुतः शब्दावली-निर्माण की प्रक्रिया का ही तार्किक विस्तार है क्योंकि तकनीकी शब्दों को उनकी परिभाषाओं, व्याख्याओं तथा उपयुक्त प्रयोगों के माध्यम से ही भली भाँति समझा जा सकता है। इन्हीं के माध्यम से शब्दावली का व्यापक प्रचलन और प्रसार होता है। भाषा में शब्दावली की बानगी और लोकप्रियता के ये उपयुक्त साधन हैं। अब तक विभिन्न विषयों में 35 परिभाषा-कोश, 20 पाठमालाएँ और 12 डाइजेस्ट आयोग द्वारा प्रकाशित किये जा चुके हैं। आयोग से प्रकाशित होने वाली 'आयुर्विज्ञान पत्रिका' और 'विज्ञान गरिमा सिंधु', पत्रिकाओं का प्रकाशन इसी उद्देश्य से किया जा रहा है। निकट भविष्य में उपयुक्त समय पर मानविकी तथा सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित 'ज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका की भी शुरुआत की जायेगी। आठवीं योजना के अन्तर्गत देश की विभिन्न भाषाओं की स्तरीय तथा नियमित पत्रिकाओं के प्रकाशन और अनुवाद के लिए भारत सरकार द्वारा अनुदान दिए जाने का प्रावधान किया जा रहा है।

विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकों का निर्माण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में यह व्यवस्था किये जाने के बाद कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ होनी चाहिए, पुस्तक-निर्माण कार्यक्रम को पूरी तेजी से आगे बढ़ाया गया। शिक्षा माध्मम विषयक नीति को लागू करने के लिए यह आवश्यक था कि भारतीय भाषाओं में यथेष्ट वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य का निर्माण किया जाए, जिससे कि अध्यापकों और विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति हो सके। इस बात को ध्यान में रखकर देश के विभिन्न राज्यों में ग्रन्थ अकादमियों। पाठ्यपुस्तक मंडलों की स्थापना की गई और केन्द्रीय सरकार ने पुस्तक निर्माण की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परिक्रामी निधि की स्थापना के उद्देश्य से प्रत्येक राज्य सरकार को एक-एक करोड़ रुपये का अनुदान दिया। चूंकि हिन्दी की पुस्तकों का निर्माण हिन्दी भाषी राज्यों में स्थापित पाँच ग्रन्थ अकादमियाँ कर रही थीं, इसलिए उनके कार्य-कलापों के बीच समन्वय स्थापित करने का काम शब्दावली आयोग को सौंपा गया, जो केन्द्रीय एजेन्सी की भूमिका निभाता है। शब्दावली आयोग ने राज्य स्तर की एजेन्सियों के लिए विदेशों में प्रकाशित पुस्तकों के अनुवाद-अधिकार प्राप्त करने का काम भी अपने जिम्मे लिया। इंजीनियरी, कृषि, आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, पशु-चिकित्सा विज्ञान और वानिकी में हिन्दी ग्रन्थ निर्माण कार्य स्वयं शब्दावली आयोग कर रहा है।

शब्दावली आयोग/ग्रन्थ अकादमियों/पुस्तक-निर्माण मंडलों/विश्वविद्यालय एककों द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं में तैयार की गई पुस्तकों की अद्यतन स्थिति निम्नलिखित प्रकार से है और विषयों की शाखा विशेष से सम्बन्धित रिक्तियों को भरने-पूरने की कोशिश जारी है :

क्रम संख्या	भाषा	प्रकाशित पुस्तकों की संख्या
1.	हिन्दी	1786
2.	तेलुगु	614
3.	असमिया	609
4.	गुजराती	784
5.	मलयालम	1009
6.	कन्नड़	785
7.	मराठी	322
8.	उड़िया	376
9.	पंजाबी	177
10.	बंगाली	282
11.	तमिल	910
	कुल	7654

शिक्षा माध्यम के रूप में भारतीय भाषायें

भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दावली तथा प्रचुर संख्या में तकनीकी साहित्य उपलब्ध होने पर विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ बनें, इस उद्देश्य से आयोग ने 29 नवम्बर, 1983 को राष्ट्रीय म्यूजियम, दिल्ली में 'भारतीय भाषाएँ और शिक्षा माध्यम' विषय पर एक अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन किया था। इसका उद्घाटन तत्कालीन राष्ट्रपति जी ने किया था और जिसमें देश के हिन्दी-अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के विद्वानों, वैज्ञानिकों, अध्यापकों, शिक्षाविदों, व समाज विज्ञानियों ने भाग लिया था। आरम्भिक तथा परिचर्चासत्रों में विद्वानों द्वारा विशेष निबन्ध पढ़े गये और विचार प्रकट किए गए। सभी का विचार था कि भारतीय भाषाएँ शिक्षा माध्यम के रूप में सक्षम हैं और इन्हें विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन के लिए अपनाया जा सकता है। लेकिन इस दिशा में अनुकूल मानसिक वातावरण बनाने की महती आवश्यकता है, तभी माध्यम परिवर्तन का कार्यक्रम सफल हो सकता है। रूस, जापान आदि अनेक उन्नत देशों में मातृभाषा के द्वारा ही उच्च शिक्षा दी जाती है। मातृभाषा में तोता रटंत की जरूरत नहीं पड़ती और शिक्षण प्रक्रिया सहज और स्वाभाविक रूप से चलती है। इस प्रकार आयोग इस सन्दर्भ में भारतीय भाषाओं तथा उनसे सम्बन्धित साहित्य के विकास, प्रचार व प्रसार के राष्ट्रीय महत्व के कार्य के लिए कृतसंकल्प है।

नई शिक्षा नीति में यह प्रावधान रखा गया है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में भारतीय भाषाओं को शिक्षा माध्यम के रूप में प्रोत्साहित करने के लिए एक मौनीटरन एकक की स्थापना की जायेगी और हर विश्वविद्यालय में एक छोटा मौनीटरन एकक रहेगा । इस कार्यक्रम में शब्दावली आयोग सलाहकार संस्था के रूप में योगदान देगा ताकि शिक्षा माध्यम के रूप में अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं को बिना किसी कठिनाई के प्रतिष्ठित किया जा सके ।

इस योजना के कार्यान्वयन के लिए हिन्दी भाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में आयोग द्वारा अध्यापकों के लिए विभिन्न विषयों में शब्दावली कार्यशाला कार्यक्रम शुरू किया गया है । इसके तहत अनेक विश्वविद्यालयों में कार्यशालाएँ सफलतापूर्वक आयोजित की जाती हैं, जिनमें शब्दावली के युक्तिसंगत प्रयोग का गहरा अभ्यास कराने के लिए शब्दावली सम्बन्धी व्याख्यान तथा हिन्दी माध्यम से अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए ऐसे विद्वानों द्वारा आदर्श व्याख्यान दिलाए जाते हैं जो अपने-अपने विषयों के प्रतिष्ठित विद्वान होने के साथ-साथ पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग में भी निष्णात होते हैं ।

इन सब प्रयोजनों के लिए आयोग एक 'राष्ट्रीय शब्दावली बैंक' की स्थापना भी कर रहा है और भारतीय भाषाओं में लेखन तथा अनुवाद की सुविधा के लिए 'लेखकों तथा अनुवादकों का राष्ट्रीय रजिस्टर' भी तैयार कर रहा है । शैक्षिक संस्थाएँ इसकी आधारी सहायता से हर भाषा के लेखकों तथा अनुवादकों से सम्पर्क साधकर अपने कार्यक्रमों को तेजी से आगे बढ़ा सकती हैं ।

इस प्रकार देश की उच्च अकादमिक संस्था के रूप में शब्दावली आयोग शब्द ब्रह्म और भारतीय भाषाओं में तकनीकी साहित्य के विकास की साधना में लीन है और वह देश के सभी विद्वानों, विशेषज्ञों, अध्यापकों, शिक्षाविदों, लेखकों, प्रशासकों तथा नीति निर्धारकों के सहयोग की अपेक्षा रखता है । इस परिप्रेक्ष्य में आयोग के निष्ठावान, परिश्रमी और ऊर्जावान नये अध्यक्ष प्रो० सूरजभान सिंह विशेष अभिरुचि और उत्साह दिखलाते हुए मनोयोग से कार्यरत हैं ।

□□

वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद की समस्या

प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

हिन्दी के विज्ञान साहित्य के इतिहास पर नजर डालिये तो आप पायेंगे कि आज से 60-70 वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों में एक मिशनरी भावना मौजूद थी, अतः उन्होंने मनोयोग पूर्वक, निःस्वार्थ भाव से इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया था। नागरी प्रचारणी सभा काशी ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का कार्य हाथ में लिया। इस सन्दर्भ में स्व० डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० निहाल करण सेठी, श्यामसुन्दर दास, डॉ० फूलदेव सहाय वर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उन दिनों ऐसे कार्य के लिए शासन से प्रोत्साहन मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता था। तथापि इन मनीषियों ने अपने सत्प्रयास और लगन से विज्ञान साहित्य की सुदृढ़ नींव स्थापित की। इसके परिणामस्वरूप गणित, ज्योतिर्विज्ञान, भौतिकी तथा रसायनशास्त्र आदि पर हाई स्कूल स्तर की अनेक पाठ्यपुस्तकें तैयार की गयीं।

इसी अवधि में विज्ञान के कई प्रामाणिक ग्रन्थों की भी रचना हुई। इनमें डॉ० त्रिलोकीनाथ की पुस्तक 'हमारे शरीर की रचना', डॉ० गोरख प्रसाद का 'सौर परिवार' तथा हिन्दुस्तानी अकादमी से प्रकाशित 'जन्तु जगत्' विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के स्वीकार किये जाने की पेशकश के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य के उन्नयन के लिए शासकीय सहायता प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुई। इसी सिलसिले में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना हुई—इस प्रकार हिन्दी के विज्ञान साहित्य के प्रणयन का मार्ग प्रशस्त हुआ। तभी अंग्रेजी के प्रामाणिक वैज्ञानिक ग्रन्थों के अनुवाद की योजना बनी। इसी

सिलसिले में लगभग 20 वर्ष पूर्व विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद के लिए केन्द्र ने हिन्दी भाषी राज्यों में प्रत्येक को एक-एक करोड़ रुपयों का अनुदान उपलब्ध कराया। इस कार्य के निष्पादन के लिये इन राज्यों में हिन्दी ग्रन्थ अकादमियाँ स्थापित की गयीं ताकि उनके तत्वावधान में यह योजना त्वरित गति से कार्यान्वित की जा सके। किन्तु लालफीताशाही के कारण कार्य इतनी मन्थरगति से चला कि 5 वर्ष की नियत अवधि बीत जाने पर स्थिति यह रही कि अनुदान का 50 प्रतिशत भी खर्च नहीं हो पाया। ढेर सारी ऐसी पुस्तकें अनुवाद के लिए चुनी गयी थीं, जिन्हें एक निश्चित अवधि के अन्दर प्रकाशित किया जाना था। किन्तु उस अवधि के अन्दर कतिपय कारणों से ये पुस्तकें मुद्रित न हो सकी और पाण्डुलिपियाँ आलमारियों में ही पड़ी रह गयीं, क्योंकि इनके प्रकाशन का अधिकार अकादमी खो चुकी थी, जबकि अनुवादकों को पारिश्रमिक अदा किया जा चुका था।

इन अकादमियों को कार्य पद्धति में अन्य खामियाँ भी मौजूद थीं। उदाहरण के लिए अनुवाद के लिए पुस्तकों के आवंटन में पूरी सावधानी नहीं बरती गयी थी—प्रायः अनुवाद का कार्य विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्षों के सुपुर्द कर दिया गया था और तब इन विभागाध्यक्षों में से कई लोगों ने अपने कनिष्ठ सहयोगियों से यह कार्य पूरा करा लिया। नतीजा यह हुआ कि इन पुस्तकों का अनुवाद घटिया किस्म का ही रहा तथा उनमें भाषा प्रवाह की भी कमी रह गयी। फलतः ये महाविद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों का स्थान नहीं प्राप्त कर सकीं।

अनुवाद की समस्याएँ

स्पष्ट है कि उच्च स्तर की वैज्ञानिक पुस्तकों का अनुवाद सक्षम रूप से करने के लिये अनुवादक को सम्बद्ध विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा जिस भाषा से वह अनुवाद कर रहा है और जिस भाषा में अनुवाद किया जा रहा है, उन दोनों ही भाषाओं का उसे सर्वांगीण ज्ञान होना चाहिए। उन दोनों भाषाओं के व्याकरण, उनकी सूक्ष्मताओं, प्रवाह, शैली, मुहावरों, प्रकृति तथा वाक्य-विन्यास आदि की अच्छी जानकारी उसे होनी चाहिए।

दुर्भाग्यवश स्थिति यह है कि जिन विद्वानों को विषय की अच्छी जानकारी है और अंग्रेजी भी वे अच्छी जानते हैं, वे प्रायः अच्छी हिन्दी लिख नहीं पाते। ऐसे लोगों द्वारा अनूदित पुस्तकों में प्रायः भाषा-प्रवाह का नितान्त अभाव देखने को मिलता है, साथ ही शब्द स्तर पर, वाक्यांश स्तर पर, तथा वाक्य के अन्तर्वर्ती स्तर पर, भाषा के अनेक दोष ऐसे अनुवादों में पाये जाते हैं।

मूल पाठ में दिये गये शब्दों के परिशुद्ध अर्थ को यदि अनुवादक पकड़ने में असमर्थ है, तो निश्चय ही उसका किया हुआ अनुवाद भ्रान्तिमूलक होगा। जैसे 'डिस्कवरी' के लिये

'आविष्कार' शब्द का प्रयोग करना या अंग्रेजी के 'स्नो' शब्द के लिए 'बर्फ' का उपयोग करना, जबकि इनके लिये सही पारिभाषिक शब्द हैं क्रमशः 'खोज' तथा 'तुहिन'। इसी प्रकार मिलते-जुलते अर्थ वाले अंग्रेजी शब्दों के सूक्ष्मान्तर का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होगा जैसे apparatus, appliances, equipment तथा implement आदि। इनमें से प्रत्येक के लिए हिन्दी से अलग-अलग पारिभाषिक शब्द परिनिश्चित किये गये हैं।

इस सन्दर्भ में यह स्मरण रखना होगा कि पारिभाषिक शब्द इस तरह प्रयुक्त किये जायँ कि अनुवाद की भाषा में वे पूर्णतः आत्मसात् हो जायँ तथा प्रवाह में इस तरह घुल-मिल जायँ कि अलग से थोपे गये न जान पड़ें। प्रायः मूल का अक्षरशः अनुवाद ऐसे रूप में कर दिया जाता है जो हिन्दी भाषा की प्रकृति से मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिये निक्षिप्त (पैरेंथेटिकल) उपवाक्यों का अविकल अनुवाद यदि हिन्दी में उसी प्रकार कर दिया जाय तो वाक्य-रचना हिन्दी की प्रकृति के प्रतिकूल पड़ती है तथा मूल आशय को ठीक-ठीक समझ पाने में कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में श्रेयस्कर यही होगा कि अनुवाद करते समय वाक्य-रचना ही बदल दी जाय।

अंग्रेजी का वाक्य-विन्यास हिन्दी की तुलना में अधिक जटिल तथा लम्बा होता है। हिन्दी में छोटे-छोटे स्वतन्त्र वाक्य ही अधिकतर प्रयुक्त होते हैं। फिर हिन्दी की प्रकृति प्रायः कर्तृवाच्य होती है जबकि अंग्रेजी में कर्मवाच्य के वाक्य अधिकांश प्रयुक्त होते हैं, अतः यह आवश्यक नहीं कि कर्मवाच्य के अंग्रेजी वाक्य हिन्दी में कर्मवाच्य वाक्यों में ही अनूदित किये जायँ।

इसी प्रकार अनुवाद कभी भी वाक्यांश दर वाक्यांश नहीं किया जाना चाहिये। किन्तु इसका आशय यह नहीं कि मूल वाक्यों का क्रम अव्यवस्थित कर दिया जाय— अवश्य अनुवाद की भाषा की प्रकृति के अनुकूल वाक्यांशों के क्रम में थोड़ा बहुत हेरफेर करना वांछनीय होता है, फिर भी यह ध्यान में रखना होगा कि मूल पाठ का कोई भी अंश अनुवाद करने में छूट न जाय।

अनुवाद की स्पष्टता और भाषा-प्रवाह की दृष्टि से यदि जरूरी हो तो मूल वाक्य को परिवर्द्धित एवं खंडित किया जा सकता है। आशय यह है कि अनूदित कृति को पढ़ने पर अनुवाद का आभास न हो, बल्कि वह मूल लेखन जैसी आकर्षक तथा प्रभावकारी प्रतीत हो।

यह भी ध्यान में रखना होगा कि हिन्दी अनुवाद की व्यंजना शैली अंग्रेजी-निष्ठ न होने पाये। हिन्दी की व्याकरणानुमोदित व्यंजना शैली की स्वस्थ परम्परा का निर्वाह अवश्य होना चाहिये।

इन सावधानियों की उपेक्षा करने से अनुवाद की भाषा बोझिल और दुरूह हो जाती है। इस प्रकार के भाषा दोष वाले अनुवाद के कतिपय अंश नीचे दिये जा रहे हैं। ये

ऐसे अनूदित ग्रन्थों से लिये गये हैं जो राज्य शासन या केन्द्रीय शासन द्वारा परिचालित संस्थाओं द्वारा प्रकाशित हुए हैं।

"स्वर्ण के किसी मणिभ पर निक्षिप्त चाँदी की एक पतली तह से प्राप्त प्रारूप सार्वरूप से वही आया जो चाँदी के गुटके से।"

पृ० 65 'इलेक्ट्रॉन विवर्तन' (हिन्दी समिति, उ० प्र0)

'इस सिद्धान्त के व्यावहारिक अनुप्रयोग के लिए कुछ जटिल गणनाएँ करनी होती हैं, यद्यपि यह कार्य उससे अधिक नहीं है जो मणिभ अवस्था में अणुओं में परमाणुओं की स्थिति ब्रैग की X-किरण विधि से निर्धारित **करने में करना** होता है।'

पृ० **46** इलेक्ट्रॉन विवर्तन

'यह यन्त्र ऊष्मा के **वैज्ञानिक** अध्ययन में इतना उपयोगी सिद्ध हुआ कि इसका **वर्णन पूरी तौर पर यहाँ नहीं किया जा सकता।'**

—'ऊष्मा' (बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी)

इसी पुस्तक के कतिपय अंश नीचे और भी उधृत हैं :

'इससे रम्फर्ड ने यह निष्कर्ष निकाला कि ऊष्मा के उत्पन्न होने **की जुड़ बर्मी** के चलाने की शक्ति या ऊर्जा थी और ऊष्मा स्वयं कोई भौतिक पदार्थ नहीं हो सकता।'

उ० प्र० हिन्दी समिति की पुस्तक 'दूरवीक्षण के सिद्धान्त' के कतिपय अंश नीचे उधृत हैं :

पृ० 1 : 'ऐसे चलते फिरते चित्र चित्रित दृश्यों की वास्तविकता को बढ़ाने में सहायक होंगे तथा **कल्पना के लिए बहुत कम स्थान रह जायगा।'**

पृ० 230 : 'इस पद्धति का अवगुण यह है कि अंतिन वेष्ठन समायोजित नहीं होता तो सब स्विच स्थितियों के उस बिन्दु से अनुच्च आवृत्ति बिन्दु **तक समायोजन में गलत हो जाती है।'**

पृ० **283** : 'गणनाएँ और **नापें** दिखा चुकी हैं कि यदि दोष और असमानताएं दोनों पद्धतियों में तुलनात्मक परिमाण में हैं, तो 410 लाइनों की विभक्तता की तुल्यता के साथ प्रमाणित प्रयोगात्मक टेलीविजन पद्धति गुणता में व्यापारिक 35 मि० मि० चलचित्र के तुल्य प्रतिबिम्व प्राप्त करने की विशिष्ट रीति के अनुसार **योग्यता रखती है।'**

हिन्दी समिति की एक अन्य पुस्तक 'औद्योगिक इलेक्ट्रानिकी के सिद्धान्त और प्रयोग' के भी कुछ अंश नीचे उधृत हैं :

पृ० 152 : 'वन्द फन्दा नियामक सिद्धान्तों में पर्याप्त प्रशिक्षण के भाव से एक नया इंजीनियर, इलेक्ट्रानिकी चालकों में खोज समस्या का हल, प्रवर्धक तथा नियन्त्रण परिपथ में कहीं बड़ा संधारित्र लगा कर करने का प्रयत्न करता है।'

उ० प्र० हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'दैनिक जीवन में जीव विज्ञान' से उद्धृत निम्नलिखित वाक्य पर भी ध्यान दीजिए :

पृ० 132 : 'वृद्धावस्था कोशिकीय प्रयोगशाला के उपस्कर जिसे हम यदि कहना किसी को अधिक वैज्ञानिक लगे तो आन्तरकोशी **कलित्र ढाँचा कह सकते हैं हम इसको** आन्तरिक कोशिक **पूर्णतः जीर्णोद्धार होने वाली कठिनाइयों के कारण होती है।'**

स्पष्ट है कि ऐसीं दुरूह और भ्रष्ट वाक्य-रचना वाली कृतियों के प्रति पाठक की रुचि कदापि नहीं हो सकती, इसीलिए ऐसे ग्रन्थ हिन्दी भाषी प्रदेशों में सर्वप्रिय नहीं हो पा रहे हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि वैज्ञानिक और तकनीकी ग्रन्थों के लिए भी भाषा-सौष्ठव उतना ही महत्वपूर्ण है जितना मानविकी के ग्रन्थों के खिए।

मुहावरों के अनुवाद में अत्यधिक सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। वास्तव में अंग्रेजी मुहावरों का शाब्दिक अनुवाद किया ही नहीं जाना चाहिये। वांछनीय यह होगा कि एक भाषा के मुहावरे का आशय ग्रहण करके उसे दूसरी भाषा के उचित शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाय। मुहावरों के गलत अनुवाद के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :

'सूर्य के रश्मि चित्रपट का मुकाबला पृथ्वी पर मिलने वाले तत्वों के रश्मिचित्र से करने से सूर्य के फोटोस्फियर तथा क्रोमोस्फियर की रचना निर्धारित करने का **दरवाजा खुल गया।'**

—सूर्य तथा अन्तर्ग्रही आंतरिक्ष, सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद।

उसी पुस्तक का एक और अंश देखिए—

'स्पेक्ट्रम यानी रश्मिचित्र का विस्तारपूर्वक पर्यवेक्षण न केवल अनुसंधान किये जाने वाले भाग के तापमान का मूल्यांकन **करने की आज्ञा देता है** ——,

'अग्नि की प्रगट एवं गुप्त रसायन' नाम की पुस्तक (सरस्वती प्रकाशन) से लिए गये दो और उदाहरण नीचे उधृत हैं :

'एशिया के विशाल वनीय प्रान्तों एवं स्टेपी मैदानों से योग्य और रूस में प्राचीन काल में भयंकर संक्रामक रोग—कालरा—**रेंग आता था।'**

'पर इसके बावजूद गेम्बाइन को संतोष नहीं हुआ, **संदेह उसे कष्ट दे रहे थे।'**

पुनः उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत पुस्तक 'रसायन तत्वों के देश में भ्रमण', सरस्वती प्रकाशन इलाहाबाद के निम्नलिखित अंशों पर ध्यान दीजिए :

पृ० 121 : 'नया तत्व तेजी से क्षय ले रहा था और वस्तुतः रेडियो रसायनिक प्रयोगों की प्रामाणिकता के लिए किसी **मास्टर तकनीक की मांग कर रहा था।'**

पृ० 133 : 'प्रकटतः तत्वसंख्या 104 का संश्लेषण भी **पहाड़ों के पार नहीं है।'**

कभी-कभी द्वयर्थक शब्दों का अपेक्षित अर्थ समझने में अनुवादक से भूल हो जाने पर अनर्थ हो जाता है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की पुस्तक असामान्य विज्ञान (Abnormal Psychology) के हिन्दी अनुवाद के पुनरीक्षण के दौरान इसी किस्म की भूल देखने को मिली थी। अंग्रेजी का वाक्य था—"She saw a handsome youngman who was a six footer." हिन्दी अनुवाद इस प्रकार था, 'उसने एक सुन्दर नवयुवक को देखा जो **षटपद था।'** एक अन्य स्थल पर अंग्रेजी वाक्य था—'She got up and walked against the wall.' इसका अनुवाद किया था—'वह उठी और **दीवार के खिलाफ चल पड़ी।'**

स्पष्ट है कि अनुवाद की उत्तम श्रेणी की कृति तभी सम्भव है जब अनुवादक पूर्ण दक्षता, परिशुद्धता एवं अध्यवसाय के साथ अपना कार्य पूरा करे। इसी प्रकार परिनिरीक्षण कार्यं के लिए भी कर्त्तव्यनिष्ठ विद्वानों को चुनना चाहिए ताकि पाण्डुलिपियों का वे भली-भाँति परिमार्जन कर सकें। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि 500 पृष्ठों की पाण्डुलिपि का परिनिरीक्षण आठ-दस दिनों के अन्दर लोग औने-पौने पूरा कर लेते हैं—यह एक तरह से अपने दायित्व के प्रति विश्वासघात है।

अन्त में इस बात पर बल देना चाहूँगा कि पाश्चात्य देशों के समृद्ध विज्ञान साहित्य को अनुवाद द्वारा हिन्दी में लाकर मातृभाषा की श्रीवृद्धि करना जरूरी है—अवश्य ये अनुवाद निर्दोष एवं स्तरीय होने चाहिए। आशा है कि लेख में दिये गये सुझाव इस अनुष्ठान की पूर्ति में विशेषरूप से सहायक होंगे।

□□
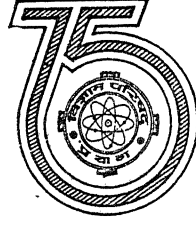
हिन्दी अनुवाद सम्बन्धी कठिनाइयाँ एवं कुछ सुझाव

नारायण नरहर भिसे

कोई भी अनुवाद करने से पहले अनुवादक के लिये यह जानना अत्यावश्यक हो जाता है कि अनुवाद की आवश्यकता किन स्थितियों में पड़ रही है ? उसके अनुवाद का पाठक किस श्रेणी का है ? यदि अनुवाद किसी सुशिक्षित के लिये है, जो उसी विषय का विद्यार्थी हो, या ज्ञाता हो, तो उसमें उचित पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाएगा। लक्ष्य यह होगा कि विषय के साथ-साथ पाठक अपनी भाषा के सही पारिभाषिक शब्द भी ग्रहण करें। परन्तु दूसरी तरफ, अगर यह अनुवाद किसी सामान्य व्यक्ति को या जनसमुदाय को कोई विज्ञान-विषयक प्रमेय या सिद्धांत समझाने के लिये किया गया हो, तो उसकी भाषा सरल होगी (चाहे स्थानीय बोली वाली भाषा ही क्यों न हो) एवं उसमें वैज्ञानिक शब्दों की जगह उनका भावार्थ रूप होगा। वैसे भी यदि हम शब्दकोश खोलकर देख लें तो अनुवाद शब्द के मुख्य तीन अर्थ मिलेंगे (अ) भाषान्तर, (ब) पुनरुक्ति (क) किसी विधि प्राप्त आशय को दूसरे शब्दों में दोहराना। निश्चय ही हमारे संदर्भ में अनुवाद शब्द का अंतिम अर्थ अधिक सही है। अनुवाद का एक ही लक्ष्य है, अपने कथ्य को इच्छित पाठक के लिये ग्राह्य बनाना। जब एक पक्ष की बात दूसरे पक्ष की समझ में नहीं आती तभी अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। यदि वार्ता तथाकथित एक ही भाषा में हो रही हो, परन्तु संप्रेषक द्वारा प्रयुक्त शब्द दूसरे पक्ष के शब्दकोश में न हो, तो बात का सही आशय समझाने हेतु भाषा को आकलनशील बनाना भी एक प्रकार का अनुवाद ही है। जैसे एक डॉक्टर जब मरीज की पर्ची पर "पायरेक्सिया" लिखता है तो मरीज़ के चेहरे पर प्रश्नचिन्ह उभरता है। जब डॉक्टर कहता है आपको "फीवर हुआ है" तो मरीज़ एक दम समझ जाता है। चिकित्सक ने अपनी बात को मरीज़ के शब्दकोश के प्रयोग के साथ दोहराया। दोनों शब्द आंग्ल भाषा के हैं, फिर भी यह अनुवाद ही तो हुआ।

पारिभाषिक शब्दों का रूप एवं प्रयोग

अनुवाद की भाषा कितनी सरल या क्लिष्ट है यह तो विषयवस्तु पर निर्भर करेगा फिर भी, प्रयत्न यह होना चाहिये कि अनुवाद में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द अर्थवाही हों। अटपटे या व्याकरण की दृष्टि से गलत शब्द ध्यानपूर्वक टाले जाएँ। जैसे "अनूदित" शब्द का प्रयोग उत्तर प्रदेश में किया जाता है। जबकि अनुवाद से बना हुआ सही शब्द है अनुवादित"। हिन्दी कार्यालय सहायिका में भी ऐसे अटपटे शब्दों की भरमार है। "रीव्यू" के लिये हिन्दी शब्द दिया गया है "पुनरीक्षण"। संधिविग्रह करने की कोशिश में पता चलता है कि शब्द के गठन में ही त्रुटि है। पुनः+निरीक्षण से सही शब्द बनता है पुर्ननिरीक्षण। वैसे पुर्ननिरीक्षण से अधिक सरल शब्द है समीक्षा या समीक्षण। सही चयन संदर्भ से ही होगा।

"इकॉलॉजी के लिये आजकल प्रयोग में आने वाला पारिभाषिक हिन्दी शब्द है "पारिस्थिकि" या "पारिस्थिकी"। परिस्थ (परि+स्थ) से बना पारिस्थिकि शब्द शायद व्याकरण की दृष्टि से त्रुटिहीन हो सकता है, परन्तु उससे इकॉलॉजी का सही अर्थ स्पष्ट नहीं होता। दूसरे, इस शब्द को कई लोग परिस्थितिकी या पारिस्थितिकी भी लिखते या बोलते हैं ऐसे शब्दों के लिए अर्थवाही सरल शब्द या शब्द समुच्चय बनाये जाएँ या ढूंढे जाएँ। संदर्भ के अनुसार प्रकृतिशास्त्र, प्रकृतिविज्ञान या निसर्गशास्त्र, जैसे शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं। 'प्रकृति' में समस्त जीवाजीव एवं पृथ्वी का वायुमंडल भी आता है। 'इकॉलॉजिकल बैलेन्स' के लिये तो 'प्राकृतिक संतुलन' या 'निसर्ग-संतुलन' है ही। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि पारिभाषिक शब्दावली के लिये संस्कृत मूल के शब्दों का चयन अधिक योग्य रहेगा, क्योंकि संस्कृत में अर्थवाही शब्दों का भण्डार तो है ही उसके साथ-साथ नवीन शब्द बनाने की सामर्थ्य भी है। सामान्य संस्कृत के ज्ञान से ही अनुवादक तथा पाठक दोनों को इसमें सुविधा होगी। इतना ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत होने के कारण संस्कृत मूल के शब्द सभी भारतीय भाषा-भाषियों को स्वीकार्य होंगे।

फिर भी यावनी या फिरंगी भाषाओं से आए हुए जो शब्द भारत के गाँव-गाँव की जनता की बोली में रचे बसे हैं, उन्हें स्वीकार करना श्रेयस्कर रहेगा। परन्तु ऐसे "अ-संस्कृत" मूल के शब्द जो केवल किसी खास भाषा के विद्वान ही समझ सकें, पारिभाषिक शब्दावली से बाहर ही रखे जाएँ।

थोड़ी सी लेनदेन

सभी भारतीय भाषाभाषियों के लिये हिन्दी भाषा में किये गए एवं देवनागरी में लिखे गये अनुवाद यदि स्वीकार्य बनाने हों तो हिन्दी का कुछ सरलीकरण भी आवश्यक है। हिन्दी में कुछ "नुक्तों" वाले अक्षर जैसे ड़, ढ़, हैं। उर्दू से आए हुए क़, ख़, ग़, ज़,

आदि का लगभग उच्चाटन हुआ है, वैसे ही हिन्दीतर भाषाभाषियों की उच्चारण सुविधा के लिये ड़, ढ़, को ड, ढ ही लिखा जाय। उच्चारण आप चाहे जैसा कीजिए। चूँकि भाषा संदर्भ से ही समझी जाती है, इसमें अर्थहानि का कोई भय नहीं है। वैसे भी ड़ ढ़ का मूल देवनागरी के व्यंजनों में कहीं स्थान नहीं है। अनुवादक यह बात ध्यान में रखे तो हिन्दीतर भाषाभाषियों द्वारा अनुवाद अधिक स्वीकार्य होगा। इसी प्रकार अनुनासिक वर्णों के प्रयोग में, जब तक उच्चारण में भेद नहीं होता है, छूट हो। उदाहरणार्थ हिन्दी शब्द हिन्दी या हिंदी लिखा जाए तो भी उच्चारण वही रहेगा। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के शब्दों को किसी विशेष प्रकार से लिखे जाने का आग्रह न हो।

देवनागरी में अर्धचंद्र (चाँद-बिंदी) का प्रावधान भी नहीं है। अतः इसका त्याग करना भी हिन्दीतर भाषा-भाषियों की दृष्टि से अधिक व्यवहार्य होगा।

इस विवेचन से एक बात सामने उभरकर आती है कि अनुवाद की लिपि शुद्ध देवनागरी हो एवं पारिभाषिक शब्द यथासंभव संस्कृत मूल के ही हों।

शब्दकोश एवं पारिभाषिक शब्दावली

वैज्ञानिक अनुवाद करते समय तथा अनुवाद पढ़ते समय शब्दकोश की आवश्यकता पड़ना स्वाभाविक ही है। अगर आप के पास सही शब्दकोश न हों तो अनुवाद भी कामचलाऊ होगा और पाठक भी लेखक के कथ्य का आशय नहीं समझ पायेगा। दुर्भाग्य से हिन्दी शब्दकोश (विशेषकर वैज्ञानिक शब्दकोश या शब्दावली) का प्रयोग करना हमारे स्वभाव का अंग अब तक नहीं बन पाया है। हिन्दी प्रचारकार्यों में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खर्च होते होंगे। एक वर्ष यह व्यय केवल शब्दकोश एवं पारिभाषिक शब्दावलियों पर किया जाय। ये शब्दकोश विभिन्न राज्यों के सरकारी-गैरसरकारी कार्यालयों में बिना मूल्य या नाममात्र मूल्य पर वितरित किये जाएँ। ये शब्दकोश त्रिभाषी हों—अंग्रेजी-गुजराती-हिन्दी, अंग्रेजी-कन्नड़-हिन्दी आदि। इससे सबसे बड़ा फायदा यह होगा कि संस्कृत मूल के पारिभाषिक शब्द प्रांन्तीय भाषाओं को अपनी मातृभाषा के बहुत करीब लगेंगे। मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा के बीच की खाई अपने आप पट जायेगी।

उपसंहार

1. अनुवादक के लिये यह अत्यावश्क है कि वह अटपटा, शब्दशः भाषांतर न करें। कथ्य को अर्थवाही शब्दों या शब्दसमुच्चयों की सहायता से आकलनशील बनाना ही सही अनुवाद है। अनुवाद करते समय इच्छित पाठक के शब्दभंडार को ध्यान में रखना भी उतना ही जरूरी है। तकनीकी हिन्दी में लिखे किसी गूढ़ वैज्ञानिक सिद्धान्त को जनसामान्य की बोली हिन्दी में परिवर्तित करना भी अनुवाद है।

2. पारिभाषिक शब्दों का गठन संस्कृत मूल के शब्दों के आधार पर हो। ऐसे शब्द सभी भारतीय भाषाभाषियों को स्वीकार्य होंगे। यावनी या फिरंगी भाषाओं से आकर यहाँ जनसामान्य की बोली में रचे बसे शब्दों को छेड़ा न जाए।

3. त्रुटिपूर्ण या अटपटे शब्दों को शब्दकोशों या पारिभाषिक शब्दावलियों से निकाला जाए।

4. भावार्थ संदर्भ से बनता है। अतः शब्दावलियों में हमेशा सभी संभाव्य अर्थ दिये जाएँ। 'एक शब्द-एक अर्थ की नीति सही नही होगी।

5. हिन्दी में प्रयुक्त ड़ ढ़ जैसे व्यंजनों को हटाया जाये। इनके हटाने से भाषा का कोई नुकसान नहीं होगा।

6. हिन्दी प्रचार का एक वर्ष का अर्थ संकल्प त्रिभाषी शब्दकोशों पर खर्च किया जाए। ये शब्दकोश सभी राज्यों में उचित स्थानों-व्यक्तियों के लिये बिना मूल्य दिये जाएँ।

7. हिन्दी अनुवाद के लिये किये गये ये प्रयास अप्रत्यक्ष रूप से अन्य भारतीय भाषाओं के अनुवाद के लिये भी बहुत काम आएँगे।

□□

तकनीकी अनुवाद : समस्या और समाधान

विष्णु दत्त शर्मा

एक समय था जब हिन्दी को केवल साहित्य की माध्यम भाषा के रूप में माना जाता था। आज हिन्दी साहित्य विश्व की किसी भी उन्नत भाषा के साहित्य से विविधता, व्यापकता एवं गरिमा की दृष्टि से कम नहीं है। स्वाधीनता आंदोलन के समय में हिन्दी की एकतामयी भूमिका को दृष्टि में रखते हुए तथा इसके सम्पर्क भाषा के सर्वगुणों से सम्पन्न होने के कारण संविधान निर्माताओं ने इसे भारत संघ की राजभाषा के रूप में विकसित करने का संकल्प किया। तदनुसार इसे शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, राजकाज आदि विभिन्न प्रकार्यों के माध्यम के रूप में विकसित करने के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तरों पर विभिन्न भाषा नियोजन एवं आधुनिकीकरण सम्बंधी प्रयास किए गए।

हिन्दी के साहित्यिक, सांस्कृतिक स्वरूप से हम सब परिचित हैं, सम्पर्क भाषा के रूप में भी यह शताब्दियों से कार्य करती रही है परन्तु प्रशासनिक तथा तकनीकी हिन्दी का विकास तथा उसका प्रयोग विगत पचास वर्षों में ही हुआ है। हिन्दी जब से भारत संघ की राजभाषा बनी है तब से यह और भी आवश्यक हो गया है कि प्रशासन तथा तकनीक के क्षेत्र में हिन्दी का कार्यान्वयन सुनियोजित ढंग से किया जाए जिससे जनसामान्य को लोकतंत्र, आधुनिक तकनीक तथा विज्ञान का लाभ मिल सके।

यह तो निर्विवाद है कि अपनी भाषा के समुचित उपयोग के बिना कोई भी देश ठीक प्रकार से उन्नति नहीं कर सकता। शिक्षा तथा अनुसंधान भी इसके अपवाद नहीं हैं। इसी प्रकार यह भी निर्विवाद ही है कि हिन्दी में सभी प्रकार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारों को प्रदर्शित करने की क्षमता है और यह आधुनिक काल के विचार प्रेषण का श्रेष्ठ

संवाहक हो सकती है । इसमें अन्य विषयों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक तथा इंजीनियरी विषयों का सम्प्रेषण भी सम्मिलित हैं ।

भारतीय समाज को आविष्कारोन्मुखी बनाने में लोक भाषा हिन्दी के माध्यम से विज्ञान-शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध आदि की अत्यन्त आवश्यकता है । हिन्दी के दो पक्ष अब स्पष्ट हैं—साहित्यिक एवं तकनीकी पक्ष । तकनीकी हिन्दी के समन्वित विकास के लिए वैज्ञानिकों को एक मंच पर आकर अनेक परियोजनाओं पर कार्य करना है—जैसे तकनीकी संगोष्ठी, लेखन प्रोत्साहन, लेखन में कार्यशाला, मानक पुस्तकें, शोध प्रकाशन, तकनीकी विकास आदि । शोध प्रकाशन के क्षेत्र में लेखक ने एक शोध-प्रकाशन अकादमी की स्थापना भी की है जिसका पंजीकरण किया जा रहा है । साहित्यिक पक्ष उत्तरोत्तर सबल होता रहा है जिससे हिन्दी सांस्कृतिक सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति में सक्षम बन गई है किन्तु तकनीकी पक्ष जिसके माध्यम से विज्ञान और टेक्नोलॉजी के तथ्यों को आसानी से स्पष्टऔर अभिव्यक्त किया जा सकता है अभी सबल नहीं बन सका है । हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा आयोजित इस वर्ष 'हिन्दी दिवस' के अवसर पर बोलते हुए हिन्दी कवि श्री बालस्वरूप 'राही' ने व्यंग्य किया कि आज भारतीय राष्ट्रीय नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय होते जा रहे हैं क्योंकि उनका शिक्षण-माध्यम अंग्रेजी है । यही कारण है कि जनता को विज्ञान की उपलब्धियों की सही जानकारी से वंचित रहना पड़ता है । जन-सामान्य की भाषा में विज्ञान सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध हो सके और शोध वैज्ञानिक जन-सामान्य से तालमेल रखकर लोकोपयुक्त टेक्नोलॉजी का विकास कर सके, इसके लिए हिन्दी के माध्यम से शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध आदि की व्यवस्था करना होगी । यह तभी सम्भव है जब अन्य भाषाओं से अनुवाद की भूमिका को समझा जाय ।

हिन्दी में तकनीकी पुस्तकों की उपलब्धता, विज्ञान की उच्चस्तरीय शिक्षा तथा अनुसंधान में मुख्य बाधक तत्व मानसिकता का अभाव ही रहा है । आज के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रगतिशील युग में विज्ञान और उपयुक्त प्रौद्योगिकी के ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाने का कार्य कितना महत्वपूर्ण है, इसको दुहराने की आवश्यकता नहीं है । प्रायः उच्चस्तर पर विज्ञान की शिक्षा अपनी मातृभाषा में हो, इसके विरोध में यह तर्क दिया जाता है कि उच्चतम ज्ञान का भण्डार अंग्रेजी में सबसे ज्यादा तेजी से बढ़ रहा है और अपनी मातृभाषा में शिक्षित विद्यार्थी इस ज्ञान से पूरा लाभ न उठा सकेंगे । जब रूसी, चीनी, जापानी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि अपनी भाषाओं में विज्ञान की शिक्षा, उच्चतम अनुसंधान और सभी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक कार्य कर सकते हैं तो भारतीय भाषाओं में विशेष-कर हिन्दी में ऐसा क्यों नहीं हो सकता, यह बात समझ में नहीं आती । आपको यह जान-कर आश्चर्य होगा कि जर्मनी में विज्ञान की प्रगति का कारण भारत के प्राचीन संस्कृत-ग्रंथ हैं । जर्मनी में शायद ही ऐसा कोई कॉलेज होगा जहाँ पर संस्कृत साहित्य का शिक्षण तथा अध्ययन न होता हो । संस्कृत-ग्रन्थों के अधिकतर अनुवाद जर्मनी के विद्वानों द्वारा किए

गए हैं। इस प्रकार संस्कृत साहित्य का अनुवाद जर्मन में, जर्मन से अंग्रेजी में और अंग्रेजी से वही विज्ञान हमारे वैज्ञानिकों तक पहुँचा है। उदाहरण के तौर पर 'तकनीक' शब्द की व्युत्पत्ति में गहराई से जाएँ तो एक बहुत ही दिलचस्प तथ्य हमारे सामने आता है। 'तकनीक' शब्द अंग्रेजी के 'टेक्नीक' शब्द का हिन्दीकरण है। अंग्रेजी में यह शब्द रोमनकुल की भाषाओं के माध्यम से होता हुआ यूनानी भाषा से आया। यूनानी भाषा में एक शब्द है–"टैखटोन" इसका अर्थ है "शिल्प", यूनानी भाषा से यह शब्द फ्रांसीसी भाषा में गया। यहाँ इसके लिए "टेक्ने" प्रयुक्त होता है, "टेक्ने" से टेकनीक, टेक्नोलॉजी आदि शब्द बने। अब भारतीय भाषाओं की आद्य जननी संस्कृत के "तक्ष्ण" शब्द को देखिए। तक्ष्ण का अर्थ है शिल्पकारी। यूनानी के "टैखटोन" और "तक्ष्ण" शब्द कितने निकट हैं इसके लिए विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि "ताक्षणिक" शब्द तकनीक शब्द का निकटतम समानार्थी शब्द है जो किसी अन्य शबद से उत्पन्न न होकर स्वतः परिवर्तित होता हुआ हम तक पहुँचा है।

भारत में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की दिशा में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में ही कार्य प्रारंभ हो गया था तथा हिन्दी भाषा में ऐसा प्रयास सन् 1898 ई० में नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रारंभ किया था। ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व "निघंटु" नाम से एक शब्दावली बनाई गई थी। कणाद् मुनि ने अपनी पुस्तक "वैशेषिका" में अनेक शब्दों को सम्मिलित किया है तथा उनकी व्याख्या भी की है। विद्वानों का अनुमान है कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान प्रायः 600 शाखाओं में विभक्त है तथा उनमें प्रयुक्त शब्दों की संख्या लगभग बीस-बाईस लाख है।

पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में कभी-कभी उचित शब्दों के चयन का प्रश्न भी उपस्थित होता है। शब्द चयन करते हुए हमें सरलता तथा यथार्थता की ओर ध्यान देना होगा। पारिभाषिक शब्द भले ही बनें पर जब तक उनका ज्ञान-विज्ञान साहित्य में प्रयोग नहीं होता तब तक वे भाषा के अंग नहीं बन सकते। अतः नई शब्दावली का निर्माण ही मुख्य कार्य नहीं है अपितु प्रमुख कार्य है उसका उपयोग। नए लेखक, अनुवादक, विद्वान तथा साहित्यकार जितनी तत्परता से पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करेंगे, हिन्दी उतनी जल्दी विकसित होगी और तकनीकी-साहित्य उतना ही उत्कृष्ट होगा। कोई भी भाषा तब तक सक्षम नहीं बन सकती, जब तक उसे व्यवहार एवं प्रयोग में न लाया जाय। ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेषता है, अपनी भाषा है, अपनी शब्दावली है, और साथ में कुछ समस्याएँ भी हैं। वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में स्तर के अनुसार वैज्ञानिक शब्दावली के पर्यायों के उपयोग का बड़ा महत्व है। यह अनुवादक के विवेक पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त देश में अनुवाद के कार्य का नियमन करने के लिए प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक शब्दावली की एकरूपता की दृष्टि से बृहत पारिभाषिक शब्द-संग्रह भारत सरकार ने प्रकाशित किया है अतः अनुवादक को यथासंभव इसी का उपयोग करना वांछित माना

जाता है। इसी कारण इतनी सीमाओं में बंधकर तकनीकी साहित्य के अनुवादक को कार्य करना होता है।

तकनीकी साहित्य के अनुवाद करने वाले को स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा के साथ-साथ विज्ञान की मूलभूत जानकारी होनी आवश्यक है। इस देश का और हिन्दी-विज्ञान साहित्य का यह दुर्भाग्य है कि कुछ वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं एवं संस्थानों में ऐसे अनुवादक भर्ती किए हैं जिनको स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनों का ही ज्ञान नहीं है। और इस प्रकार विज्ञान की मूलभूत जानकारी का प्रश्न ही नहीं उठता। उदाहरण के तौर पर ऐसे एक अनुवादक का अंश प्रस्तुत है–beam of light का हिन्दी अनुवाद "प्रकाश दंड" तथा noise pollution का हिन्दी अनुवाद "रव-प्रदूषण", जो दोनों गलत हैं। रव-प्रदूषण पर मैं कुछ स्पष्टीकरण देना चाहूँगा, क्योंकि 'शोर' और 'रव' पर्याय हैं और सम्भव है आप में से कुछ इस पर मुझसे सहमत भी न हों। कारण कि हिन्दी साहित्य के आधार पर 'रव' वह शोर है जो कानों को प्रिय लगे और इसकी तीव्रता 40-50 डेसीबल से अधिक न हो जबकि 'शोर' की तीव्रता 80 डेसीबल से ऊपर होगी तथा हमारी मानसिक तंत्रिकाओं को कुप्रभावित करेगी। अतः अनुवाद करते समय शब्दों पर न जाकर वास्तविक स्थिति को समझना आवश्यक होता है। और यह तभी सम्भव है जब अनुवादक को विज्ञान का मौलिक ज्ञान हो। कभी-कभी शाब्दिक अनुवाद के चक्कर में पड़कर अनुवाद मूल सामग्री से पाठक को दूर कर देता है। ऐसी अवस्था उन अनुवादकों के साथ होती है, जिन्हें पृष्ठ भूमि का बिल्कुल ज्ञान नहीं होता और वे कोश खोलकर अनुवाद करते हैं। अतः संस्थाओं में अनुवादक की भर्ती के लिए विज्ञान के अंश ही परीक्षा में दिए जाएँ कारण कि कला-संकाय का छात्र तकनीकी अनुवाद नहीं कर सकता जबकि विज्ञान-संकाय का छात्र तकनीकी एवं प्रशासनिक दोनों ही प्रकार की सामग्री का अनुवाद करने में सक्षम होता है। इस प्रकार मूल वैज्ञानिक विचारों की रक्षा भी हो सकेगी।

हिन्दी में अनुवादित साहित्य से अपेक्षा की जाती है कि वह सरल भाषा में हो, किन्तु दूसरी ओर वैज्ञानिक साहित्य की अपेक्षा होती है कि वह अपने आप में सुनिश्चित अर्थ देने वाला हो। हिन्दी के जो शब्द प्रयोग किए गए हों वे उसी अर्थ को अभिव्यक्त करें जैसा कि स्रोत भाषा में है। ऐसी अवस्था में भाषा में कुछ क्लिष्टता का होना स्वाभाविका है, क्योंकि निर्धारित एवं सुनिश्चित अर्थ वाले पारिभाषिक शब्दों का इस्तेमाल करना होत है और लेखक की संकपल्ना की भी रक्षा करनी होती है।

अनुवादित साहित्य से अपेक्षा की जाती है कि उसमें मूल साहित्य जैसा प्रवाह हो, स्पष्टता हो, कहीं भ्रम की गुंजाइश न हो। अनुवाद करते समय तथ्यों की स्पष्टता वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वैज्ञानिक शब्दावली अपने आप में बहुत स्पष्ट होती है अतः उसका अनुवाद भी स्पष्ट एवं सुनिश्चित अर्थ

वाला होना चाहिए। अनुवाद करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठक वर्ग किस श्रेणी का है। यदि विज्ञान की जानकारी छोटी कक्षा के विद्यार्थी या जन-साधारण को देनी है तो भाषा को सरल रखते हुए विषय को समझना होगा किन्तु विशेषज्ञों से सम्बंधित अनुवाद साधारण बोल-चाल में नहीं होगा।

शब्द पर शब्द बैठाने अर्थात् शब्दानुवाद से भाषा नहीं बनती। प्रत्येक भाषा का अपना-अपना ढंग होता है। अतः अनुवाद के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम लाभकारी होगा। अनुवाद का कार्य विषय विशेषज्ञों को ही देना होगा अन्यथा अनर्थ होगा, क्योंकि अंग्रेजी का एक ही शब्द विभिन्न विज्ञानों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है।

यदि हम विज्ञान और तकनीकी जानकारी सम्प्रेषण के लिए अपनी भाषा का प्रयोग करने लगें तो आज वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र में जो हमारी उपलब्धियाँ हैं शायद उनका एक और अन्य ही उज्जवल एवं भव्य रूप विश्व के समक्ष प्रस्तुत हो। आज हिन्दी जानने वाले वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों का दायित्व है कि वे हिन्दी अनुवाद की तकनीकियों को समझें तथा प्रगत तकनीकी जानकारी को जनता तक पहुँचाएँ।

□□

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की समस्यायें

डॉ० अशोक कुमार गुप्ता

विज्ञान, तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पिछले दो सौ वर्षों में अत्यधिक प्रगति हुई है। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में विज्ञान की प्रगति ने विभिन्न देशों की सभ्यताओं पर बहुत प्रभाव डाला है। प्रायः सभी देश विज्ञान के सहारे ही अपना अस्तित्व बनाये हुये हैं। उद्योगों के बल पर प्रगति करने वाले देश उच्चस्तरीय शोधों के प्रति जागरूक हैं। प्रगति कहीं भी हुई हो, किसी भी भाषा में हो, वैज्ञानिक उपलब्धियों को अपनाने में वे हिचकते नहीं। वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्यिों से सम्बन्धित साहित्य का अपनी भाषा में अनुवाद कर लेते हैं, जिससे उनके देश में उसका भरपूर लाभ लिया जा सके।

विज्ञान की अपनी भाषा होती है। इस भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक, तथ्यों तथा गूढ़ रहस्यों को, विभिन्न तकनीकी शब्दों के सहारे व्यक्त करता है। किन्तु इसे ग्राह्य भाषा के रूप में रूपान्तरित करने या अनुवाद करने में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं। मूल भाषा से अनुवाद करने में सबसे बड़ी बाधा उस मूल भाषा की विशिष्ट शैली होती है। उस शैली के सरलीकरण में तकनीकी शब्दों की भरमार के कारण अधिक वाक्य बनाने पड़ते हैं या नये शब्दों को गढ़ कर उसके भाव को स्पष्ट करना पड़ता है। ऐसे में कहीं-कहीं उपयुक्त शब्द न मिलने से कठिनाई होती है। अधिकांश वैज्ञानिक साहित्य अंग्रेज़ी भाषा में ही उपलब्ध है। अंग्रेजी भाषा तथ्य प्रधान होती है। उन तथ्यों को यथावत् दूसरी भाषा में प्रस्तुत करने में भाषा एवं शब्दावली का व्यापक उपयोग होता है। अंग्रेजी भाषा ने मूल वैज्ञानिक शोधों के तकनीकी शब्दों को यथावत् अपना लिया है इसीलिये ग्रीक, लैटिन, जर्मन, रूसी शब्द अंग्रेजी भाषा के वैज्ञानिक साहित्य में आ गये हैं। अब जब अंग्रेजी से

हम हिन्दी में अनुवाद करते हैं, तो अनुवाद में हमारी अपनी शब्दावली का अभाव खटकता है। इस कारण अनुवादक प्रायः स्वयं भ्रम में पड़ जाता है और पाठकों को भी भ्रम में डाल देता है। ऐसे में अनुवादक येन केन प्रकारेण मूल भाषा के सरलीकरण द्वारा अर्थ-बोध तो करा देता है, पर मूल अर्थ थोड़ा बहुत भिन्न हो जाता है।

आधुनिक विज्ञान, तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के ग्रन्थों में अनुवाद में अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों और प्रतीकों के अनुवाद की समस्या उठती है, जो पुनर्मूल्यांकन से हल हो सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय तकनीकी शब्दों का पूर्णतः भारतीयकरण वांछनीय नहीं है। देखा गया है कि संसार की प्रमुख भाषायें अब नित नये-नये आविष्कार व सिद्धान्त निर्धारण के बाद उसमें उद्भावित एवं गठित नये तकनीकी शब्दों को भी स्वीकार कर लेती है। अतः हिन्दी में भी इन्हीं शब्दों को यथावत् रख लेने में कोई कठिनाई नहीं होगी। पर जो शब्द परिकल्पना प्रधान हैं और भाषाओं के अभिन्न अंग है, उनका तो हमें अनुवाद करना ही होगा।

भारत में गणित, खगोल विज्ञान, आयुर्विज्ञान, राजनीति आदि विषयों में तो कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि ये विज्ञान प्राचीन भारत में शिखर पर थे और संस्कृत साहित्य में इसके स्पष्ट प्रमाण भी मिलते हैं। इन विषयों को व्याख्यायित करने में संस्कृत भाषा पूर्णरूपेण सक्षम थी। सभी भारतीय भाषाओं का मूल स्रोत देववाणी संस्कृत है। इसलिए तकनीकी शब्द हमें संस्कृत से लेने चाहिये। इससे हमारा वैज्ञानिक साहित्य समृद्ध होगा, उसी प्रकार जिस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा में ग्रीक व लैटिन से बड़ी संख्या में तकनीकी शब्दों को ले लिया गया है।

वैसे तो लोकप्रिय अनुवाद तथा स्वतन्त्र अनुवाद मूल अनुवाद से भिन्न होता है, पर दोनों में तकनीकी शब्दों के प्रयोग की एक ही कठिनाई होती है। स्वतन्त्र अनुवाद में अनुवादक अपने विचारों से समझे गये तथ्यों को अपनी भाषा के अनुरूप पढ़ता है, पर मूल अनुवाद में भाषा की क्लिष्टता अनुवादक के सामने रोड़े अटकाती है। अंग्रेजी के लम्बे वाक्यों तथा तकनीकी शब्दों के जाल में सरलता भले ही न हो, पर थोड़े में बहुत कुछ व्यक्त करने की क्षमता अवश्य रहती है। इसी से सरलीकरण में अनुवादक अक्सर धोखा खा जाता है।

अनुवाद में मूल शैली का रूपान्तरण अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इसका कारण यह है कि इसके लिये अनुवादक को लेखक का मन्तव्य केवल आत्मसात् ही नहीं करना पड़ता वरन् अपनी कुशल लेखनी द्वारा मूल शैलीगत विशेषताओं को भी रूपान्तरित करना होता है। योग्य भाषान्तरकार में मूल लेखक की शैलीगत विशेषताओं को समझ लेने की पूरी क्षमता होनी चाहिये। उसे लेखक की शैली से पूर्णतः अवगत होने के बाद ही भाषान्तर का कार्य आरम्भ करना चाहिये।

विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्यपुस्तकों का यथावत् हिन्दी अनुवाद दुष्कर कार्य है। कई भारतीय लेखकों ने परिश्रम कर कुछ पुस्तकों का अनुवाद किया है, पर उन पुस्तकों की भाषा सरल न होने से छात्रों को समझने में बहुधा कठिनाई होती है। नवीन खोजों एवं शोधों का भारतीय भाषाओं में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध न होने से विज्ञान की उच्चस्तरीय शिक्षा प्रभावित होती है।

विज्ञान के क्षेत्र में देश का बहुमुखी विकास तभी संभव है जब विज्ञान के गूढ़ विषयों से सम्बन्धित साहित्य सरल एवं सुबोध भाषा में उपलब्ध हो। वैज्ञानिक विषय जटिल होते हैं। किसी जटिल विषय को समझने के लिए सबसे उपयुक्त मातृभाषा होती है। अतएव यह मेरा निश्चित मत है कि अपने देश में विज्ञान को अच्छी तरह समझने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हिन्दी व भारतीय भाषायें हैं इन्हीं के माध्यम से विज्ञान जन-जन में लोकप्रिय एवं ग्राह्य हो सकता है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि न केवल लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य वरन् उच्चस्तरीय शोध सामग्री का भी अधिक से अधिक हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो। यही नहीं, समीक्षात्मक सामग्री का भी रूपान्तरण देशी भाषाओं में होना चाहिए मौलिक साहित्य के साथ-साथ अनुवादित साहित्य भी अत्यन्त आवश्यक है।

चतुर्थ खण्ड

भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथाएँ
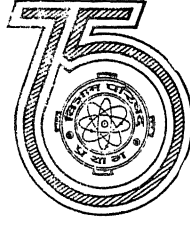
कन्नड़ में विज्ञान कथा लेखन : मेरे लेखकीय अनुभव और विचार

राजशेखर भूसनूरमठ

प्रस्तुत आलेख में लेखक ने विज्ञान कथा लेखन से संबंधित अपने लेखकीय अनुभव के आधार पर कन्नड़ साहित्य में विज्ञान कथा लेखन के इतिहास और मुख्य प्रवृत्तियों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। विज्ञान कथा साहित्य की विभिन्न विधाओं-लघु कथाएँ, कथाएँ, उपन्यास आदि के जन्म और विकास के साथ ही रूसी, अमेरिकी और ब्रिटिश विज्ञान कथा साहित्य की चर्चा करते हुए विज्ञान कथा साहित्य का वर्गीकरण भी किया है। 1960 के पूर्व और उसके बाद के अपने स्वयं के प्रयासों की भी चर्चा की है और बाल विज्ञान कथा साहित्य पर भी प्रकाश डाला है। अपने सारगर्भित और सूचनाप्रद आलेख में लेखक ने कन्नड़ भाषा में विज्ञान कथा रचनाधर्मियों को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उसका उल्लेख करते हुए सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं। लेखक के अनुसार विदेशी स्तरीय विज्ञान कथाओं के अनुवाद और मौलिक लेखन-दोनों की आवश्यकता है। कन्नड़ विज्ञान कथा का भविष्य उज्जवल है।

Science Fiction Writing : My Experiences & Views

Rajshekhar Bhoosnurmath

"The year is 1995. I am enjoying myself. After all I have really earned this year-end vacation. No, I don't want to be away from home. I would rather relax, laze and loaf if possible, all the twenty-four hours of each day at my disposal. Nothing else makes sense to me right now or perhaps forever . . . ."

"Lucky that I am supposed to be a futuristic artist. How else could I get associated with that funny business of sending messages to distant worlds or rather to any possible aliens inhabiting those worlds ?"

Thus opens my science fiction story 'A message for other Galaxies', which I wrote about a decade ago. The story was inspired by a fantastic news item which appeared in March 1972. NASA had then proposed to send (and later sent) a pictorial message plaque on an interstellar journey—destination unknown.'—which, it hoped. would be eventually intercepted by intelligent beings inhabiting distant worlds.

To satisfy the reader's curiosity I might add that the hero of my story gets involved into a series of adventures—or misadventures if you prefer—because of an encounter of the T-kind, I mean aliens on hearing from us decide to check where and who we are and travel back in time and contact the poor futuristic artist just to say 'THANKS.' what a macabre experience to our unsuspecting hero who does not want to be disturbed in the least!

I have opened my paper with this sample to illustrate the unusual nature of S.F. It alwaye stands as the odd man out. Before embarking upon a general discussion of SF, I would like to point out several basic features of SF which are its generic aspects.

The most striking one is that *SF is not science* not even applied science. It is literature, pure and simple,—because it is a creative effort. Look how a simple news item let my imagination run away to explore the possibilities NASA had in mind.

Another feature is also worthnoting. The extrapolation from science facts to invent a story. Though not as a rule, but very often SF of today is the science fact of tomorrow.

The third aspect is that science material, especially scientific marvels, mysteries, paradoxes and such mind-boggling facts and figures, provide the key or control theme to SF stories or novels. The rest of the homework is left to the SF writer. He borrows a science idea and then develops his plot, introducing suitable characters, painting the right background atmosphere etc. like any other good creative writer. Of course he must tell a very good story to keep his readers absorbed.

The fourth aspect is unique to SF. It is that the canvas of SF transcends nationalities, creeds and even barriers of space-time.

I have outlined some features of SF to bring home the point that the experiences and problems of SF writers, either English or Indian, are unlike those of other creative writers. Their problem becomes more acute if and when they attempt writing SF in Indian languages, as I shall amply prove in this paper.

A Brief Survey of SF Origins and Types

To enable me to assess the position of SF in Kannada, I must necessarily give here some glimpses of the origins of SF, themewise and nationwise. I have purposely classified SF nationwise because I have to convince that SF in Indian languages has not yet emerged fully to give it a national status. (I have more to say on this important point in 5).

A Greek writer named Lucian is credited to have written, the first ever SF—'Vera Historica' in the year A.D. 160. It is a story of moon travel! The Arabian Nights Stories, or our Panchatantra or even our

great epics Ramayana and Mahabharata are considered by some as forerunners of modern SF. Science Fiction is sometimes put under Fantasy. And Fantasy has thus four broad divisions—Mythology, the Occult, Fairy Tale and SF. For example, Gulliver's Travels' is dubbed by some critics as the greatest SF ever written and by some others as a pure allegory of the fairy tale type. But there can be no two opinions about Lucian's story, which is genuine SF. As a matter of fact our fair neighbour Luna has inspired innumerable SF writers to spin yarns of moon-travel, to the delight of their readers.

My studies of SF spread over a period of nearly three decades, have made me come to a very neat and simple conclusion : SF literature of international class shows sharp national divisions. The division is neither artificial nor conventional, but it is total and fundamental. Since we have to touch upon Kannada (or Indian) SF in relation to world SF, we should not overlook this point.

Russian SF, British SF and American SF are the three schools of SF I have in mind. Comparatively, European or Australian or even Canadian SF have not drawn international attention in their own right (with some notable exceptions like Lem who form a class by themselves). I have yet to come across Asian SF of world class and this is not meant to be uncharitable to Indian SF.

Russian SF is purely academic and technical. It is almost like speculative science or popular science. By contrast American SF is written for the man on the street. It reflects full-blooded American Life and is completely escapist. One feels that American SF is the science writer's version of American crime and detective fiction. But British SF follows the golden mean. It is academically excellent (like Russian SF) but it is also pure creative literature beating the Americans. I have no space here to elaborate these sweeping statements. I must also hasten to add that the above classification is purely my own, subject to correction, though I feel certain that SF-fans would largely agree with my approach.

Limitations of space force me to omit the details about types of SF. I must just mention while passing that stories of space travel, of strange inventions, of future worlds, of Utopias, of computers and robots, of UFO's etc. form the main types of SF.

The most popular literary form in which SF is published is the short story. SF novel letter or novellas are more popular than novels. Lengthy novels probably do not sustain the average reader's interest since his imagination might be strained if taken for a very long ride in an alien world with out-of-the-world-beings. SF plays are rare, for obvious reasons. A play holds the reader's attention because of its human dialogues and interactions. There is practically no action or adventure in a play.

Luckily SF literature for children is a very popular form—next only to comics. Comics of science fantasy type prove this point.

SF in Kannada

I have broadly assumed in this paper that what is ture about Kannada SF is almost true about Indian SF, since Kannada can be taken as a representative example for Indian languages. I want to apologise if the following reads almost like items from a literary autobiography. It just happens that I am recognised as the pioneer writer of SF (Stories, novels, plays, etc.) in Kannada since 1960's. Unfortnnately no other writer in Kannada has published good SF so continuously and consistently. Of course, there are about half a dozen good writers who write SF, but only infrequently.

As I have hinted earlier, any exercise to locate the roots of SF in Indian Myths and Legends is futile. The vimanas or the devas/rakshasas might provide excellent stuff for the Indian SF writer But they were not *meant* to be SF. Or, at least they are not SF in the western sense of the term. This leaves us with a very tempting offer to define and delineate our indigenous SF and to rewrite our classic myths and legends from a scientist's point-of-view. I hope there are some takers of this tantalising offer.

This digression apart, what is the position of Kannada SF today ? One of my very senior friends—Dr. Sadanand Nayak—seems to have published a heart transplant story (with a humorous romantic twist no doubt !) more than half a century ago. But by and large SF in Kannada was unheard of until the mid-sixties. Interestingly, my first venture in SF (around 1955) was a satirical play and it was a fantasy named 'Adhunika Amaravati'. A spaceship from Karnataka lands on a planet called Indraloka, where our heroes meet face-to-face the mythological

character Indra. Then follows a very embarassing dialogue between our astronauts and the Devas. The climax (or rather an anti-climax for the Devas) comes when the Earthmen have to leave in a hurry because of their disillusionment. Gods, then are mere supermen on other planets.

The circumstance which catapulted me as a pioneer SF writer in Kannada is worth recapitulation here because it has several highlights of relevance to the present seminar. 'Sunha', now a leading Kannada weekly, was to start publication on a grand scale. So the editors-in-charge did some spade-work and identified some prospective writers. 'Sudha' wanted to start a regular column on science. I was one of the few commissioned to write science articles (not SF). I did write some.

But soon it dawned upon me almost as a revelation that not even 1% of 'Sudha' readers might be reaching our popular science articles. It was both an insult and a challenge. I decided to change tactics and started writing spicy articles like, 'Is there Life on other planets ?' Even then I had a nagging doubt that anything published as a science feature was allergic to our poor readers.

Simultaneously I wrote some good original SF for 'Sudha'. Even the Kannada equivalent for SF, viz. 'Vaijanika Kathe' was coined by me and was accepted by the public. Surprisingly SF worked like sugar-coated pill and I even managed to get a large fan-following. Students and housewives started discussing my latest stories and serialised novels as if they were discussing the latest movie hits ! This exhilirating phenomenon encouraged me to write stories and novels at an unprecedented rate. I had 'arrived'. Within a decade I had enough material for a dozen SF books. When I published ten books simultaneously, it became a definite land-mark in the history of Kannada SF. (Probably no other Indian writer might have undertaken such a risky venture of publishing 10 of his SF books simultaneously).

From then on I have never looked back.

My next phase of development as an SF writer began around 1975. Since I was already an established writer, I decided to become more responsible and more academic. I became choosy and wrote much less. But all my works in this post-1975 phase are meant to be classics (at least, I hope so). I tried such difficult subjects like lost continents, utopias and robotics. A noteworthy achievement is my special contribution to children's literature.

My novelties for children have proved to be very popular (even among adults !) and I am even trying my hand in doing comics features for children.

As I have already noted earlier, I am almost single-handed in the sense that other writers, especially the younger ones, have not taken this task seriously. Kannada magazines do publish SF and there is demand from readers. But the writers have to come forth.

The Writing of SF in Kannada

Let me ask the crucial question "Why is it difficult to write first rate SF in Kannada (or in any Indian language) ?"

The answer to this question is rather complicated but not difficult to comprehend. The first and foremost reason is that our scientists, science professionals (doctors, engineers etc.) and even science writers somehow feel diffident to venture out as creative writers. There seems to be some prejudice working against SF writers.

When I started writing SF 25 years ago, some 'highbrows' tried to condemn me by saying that 'oh ! that story writer, he must better come back to science'. Even the famous Marathi SF writer Dr. Jayant Narlikar was facing a similar dilemma. He confided to me that his scientific prestige is sometimes tarnished because he writes SF. that too in Marathi ! Such an attitude is most damaging and is fatal to Indian SF.

Secondly, an SF writer must be good in science. A few of my friends—who have no basic training in science but are very good creative writers—have very sincerely tried to write SF but have failed miserably. A few scientists, who have succeeded in writing popular science articles, have tried writing SF. But they are non-starters. They just are not story-tellers. SF writing demands double qualification : ability to tell a story and the unusual ability to put some science element in your story.

The third reason is very peculiar and is hard to digest. Like science, SF is also completely an alien activity to us. The Indian writers and readers have yet to assimilate this 'foreign' field into our mainstream literature.

The fourth reason is also unusual. Though translations and adaptations of English classics are published and read abundantly, the same is not true of SF classics. When any potential writer comes to me seek-

ing my advice as how to write SF, I always advise him to do some translations as a warming up exercise. But none of them wants to be a translator and everyone wants to become a big writer overnight. This must be discouraged. Let us have as many translated classics as possible, both from English and from other languages.

Council of SF Authors of India (COSFAI)

This brings me to COSFAI, our latest effort to bring together SF writers in Indian languages. I am very happy and proud to announce that an All India Body of SF authors has recently come into existence. Dr. Jayant Narlikar is its President and Dr. Phondke, former Editor of Science Today, is the Vice President. I am functioning as the Secretary.

COSFAI has several practical aims and objectives. We hope to get together to see what can be done to give Indian SF a definite direction and an International status in the foreseeable future. To begin with we have planned to bring out a quarterly on Indian SF. We are also planning to publish a Directory of Indian SF writers. By encouraging the formation of regional chapters of COSFAI, we intend to make SF an acceptable form of literature. We also want to provide a common platform to Indian SF writers to air their views and opinions and to discuss their experiences.

Of course, all this needs a lot of determination and labour but it is high time we begin somewhere, somehow.

I have mentioned COSFAI in this paper for a very special reason. I look upon COSFAI as a part of my development as an Indian writer of SF (in Kannada). COSFAI is the brainchild of a few eminent SF writers and I humbly record here that I initiated the idea. I am really optimistic that SF-writers from all parts of our great country will join us in this noble cause.

Conclusion

What then should we do to produce Indian SF of world class in abundance ? I have quite a few suggestions to make :

(1) An SF magazine should be published. *Translated* SF stories by Indian writers, originally written in their mother tongues, should be published. I think COSFAI can do that provided it gets support from Sahitya Academies and similar literary organisations at All India level.

(2) Anthologies and translations of SF written by leading SF writers must be published in all Indian languages, including English and Hindi.

(3) SF items should be included in our nationalised text-books published by various state Governments.

(4) SF writers should be honoured annually by giving awards, prizes etc.

(5) Language departments of our Universities should open wings for SF literature. Universities should organise seminars, workshops etc. and perhaps start Diploma courses in SF-writing.

(6) SF writers/Readers Associations should be formed all over the country. Chapters of COSFAI might be started at key places. Such clubs can hold annual conventions or conferences to bring together SF writers in India.

(7) Our film-makers should take a look at SF. The success of 'Starwars' series and 'Close Encounters' should encourage them.

(8) Our popular science writers should take a hint from Russian writers and try to write good science using SF techniques. The prejudice that SF is bad science or merely fiction is unfounded.

(9) Translations and adaptations of SF classics of the West must be published in all the Indian languages. Every school-boy must be able to read Wells or Verne in his mother tongue.

(10) Lastly, every effort must be done to persuade our critics and scholars that SF is very much part and parcel of main-stream literature in Indian languages and that they should take a healthy interest in it. Very often these august personages ignore SF simply because they are afraid that the science element in this genre might go above their heads.

Acknowledgement

I am indebted to the organisers of this All India Seminar, especially to Dr. S. G. Mishra, for having given me an opportunity to present my views and experiences as an SF writer. I thank my friend and well-wisher Prof. G. T. Narayana Rao of Mysore who suggested my name to the organisers. Finally, I must thank all those valient writers of SF in Indian languages who are knocking at the Gates of literary Heaven to let them in. SF writers, alas ! are literary outcases and I should be able to thank all our scholars, critics, publishers, readers, et al once they welcome us just as you have done so kindly today. □□

भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथा साहित्य

डॉ० ज्योत्सना पटनायक

प्रस्तुत आलेख में लेखिका का ऐसा मानना है कि यूरोपीय और रूसी विज्ञान कथा साहित्य की तुलना में भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथा लेखन कम विकसित है। भूमिका के रूप में लेखिका ने एच० जी० वेल्स, जूल वर्न, फ्रांसिस गुडविन, ए० केपलर, विलियम थामसन, आदि चर्चित विदेशी विज्ञान कथाकारों की रचनाओं का उल्लेख किया है।

लेखिका के अनुसार उड़िया भाषा में विज्ञान कथा लेखन तब प्रारंभ हुआ जब अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथा लेखन प्रारंभ नहीं हुआ था। उड़िया विज्ञान कथाकार डॉ० गोकुलानन्द महापात्र को लेखिका उड़िया भाषा कथा लेखन का जनक मानती हैं। उड़िया भाषा में पहलो विज्ञान कथा पुस्तक 'मैन बियॉण्ड द अर्थ' का प्रकाशन 1952 में हुआ जिसके लेखक डॉ० गोकुलानन्द महापात्र हैं। इसे 1954 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। बाद में 'आर्टिफीशियल सेटेलाइट' 'द डेथ ऑव द मून' 'डेथ ऑव मदरहुड,' 'डार्कनेस ऑव द मून (उपन्यास)' 'अर्थ स्टैण्डस स्टिल' आदि पुस्तकें लिखी गईं। इसके अतिरिक्त डॉ० महापात्र ने कई विज्ञान कथा पुस्तकें भी लिखी हैं। पर दुर्भाग्यवश डॉ० महापात्र के अच्छे कार्य को बढ़ाने वाला कोई अन्य उड़िया विज्ञान कथाकार नहीं हुआ।

Science Fiction in Indian Languages

Dr. Jyotshna Patnaik

Science fiction in Indian languages is not so developed as we see in European or Russian languages. Science fiction, the forerunner of scientific invention enjoyed a prestigious position in English and French Literature nearly a century back. *Jules Verne and H.G. Wells* are rightly called the founders of Science fiction age though *Francis Gudwin, Sirano-de-Bujereu* of France, *A. Kepler* of Germany, *Baron Mun Chen Sen, William Thomson, Edgar Allen Poe*, of England had initiated their writing in Science fiction in various western languages. Jules Verne in the nineteenth century astonished the Western world by his beautiful Science fantasy, which opened up a new era in French Literature. His book "*From Earth to the moon*" is a wonderful creation. It resembles the modern voyage to the moon by our astronauts. Jules Verne though a man of France chose the moon Voyage in his fiction not from his own country but from florida of U.S.A. which became the moon Voyage centre of the modern world. Jules Verne's imaginary spaceship had a velocity of 25,000 miles per hour. It is very near the actual speed of the moonship. Moonship's weight was 1200 pounds which compares well with the weight of the present spaceship. Verne's spaceship was set to space by a Rocket, and it returned to earth in pacific ocean. The present day spaceship did the same even a century after. H.G. Wells's Science fiction—"The shape of things to come" had some imaginary invention which became real after half a century or more. These are the few evidences which confirm my first saying that the Science fiction is the forerunner of modern invention.

A lot of Science fiction writing on moon Voyage in the last few centuries augumented the researches in this direction and landing on moon became a reality.

In Orissa, Science fiction writing began when other Indian languages had not began writing in this direction. Original Science fiction writing began in Orissa half a century ago, when other Indian languages had only a few translations of Science fiction books of the Western World. The first Science fiction book in Orissa is "*Man Beyond the Earth*" published in 1952 by *Dr. Gokulnanda Mahapatra.* It had a story that how a Scientist of America and his student went to Mars with the help of an Atomic Rocket run by Bakelium and stayed in Mars to see their Scientific Civilization which is much more advanced than that of earth and is full of wonders. This book was nominated in 1954 for '*Sahītya Academy Award,*' but due to some internal trouble in Orissa, it could not get the award.

The next Science fiction is "*Artificial Satellite*" by the same author, published in 1957, before the Russians went to space. This is a spaceship which serves as a space station and goes around the earth with a crew of more than 100 Scientists and the spaceship has all the privileges of a modern city in space.

The third science fiction "*The death of the Moon*" is also by the same author. It was published in 1964, after the author returned from America after completing his post doctorate assignment in U.S.A. It deals with an advanced human civilisation in moon and how and why it vanished five thousand years ago.

His recent fiction is "*Death of Motherhood*" which deals with change of sex and preserving the dead for future treatment and how a patient came back to life after half a century of his death.

The same author's novel "*Darkness of the Moon*" deals with the unscrupulous Scientists, who utilise Science for exploitation of moon for the sake of capitalists.

Besides these, there are also other Science fiction works by the same author. His recent Science fiction "*Earth Stands Still*" is now under print.

Dr. Gokulananda Mahapatra is also well versed in Scientific stories. Three of his Science fiction story books have earned immense reputation

for him. These three books—*'The flying Saucer'* published in 1954, *'The Fourth Dimension'* published in 1955, and *'The Crack of Time'* published in 1980 are highly popular in the State.

He has published Science fictions which contain the description of various Scientific discoveries and inventions in a lucid manner for common man in the garb of a Social fiction. He writes stories on Scientific inventions and discoveries for common man and students. The *'Sputnik' 'Bigyan Bichitra'* are a few such examples. Dr. Mahapatra has written more than 50 popular Science books besides fiction which have earned him 'Sahitya Academy Award' of the State and awards from various Government and Private Institutions.

Dr. Mahapatra has also written Scientific poems, Scientific Dramas on modern topics like Test-tube baby, Brain transplantation, Uranium fission etc.

All his books are highly popular and have undergone various editions. He is writing on Science for more than forty-five years and is the author of more than 70 books on Science. For his Science fiction writings, he is popularly known as the "*H.G. Wells of Orissa*". There is no other Science fictien writer in Orissa.

□□

A lot of Science fiction writing on moon Voyage in the last few centuries augumented the researches in this direction and landing on moon became a reality.

In Orissa, Science fiction writing began when other Indian languages had not began writing in this direction. Original Science fiction writing began in Orissa half a century ago, when other Indian languages had only a few translations of Science fiction books of the Western World. The first Science fiction book in Orissa is "*Man Beyond the Earth*" published in 1952 by *Dr. Gokulnanda Mahapatra*. It had a story that how a Scientist of America and his student went to Mars with the help of an Atomic Rocket run by Bakelium and stayed in Mars to see their Scientific Civilization which is much more advanced than that of earth and is full of wonders. This book was nominated in 1954 for '*Sahitya Academy Award,*' but due to some internal trouble in Orissa, it could not get the award.

The next Science fiction is "*Artificial Satellite*" by the same author, published in 1957, before the Russians went to space. This is a spaceship which serves as a space station and goes around the earth with a crew of more than 100 Scientists and the spaceship has all the privileges of a modern city in space.

The third science fiction "*The death of the Moon*" is also by the same author. It was published in 1964, after the author returned from America after completing his post doctorate assignment in U.S.A. It deals with an advanced human civilisation in moon and how and why it vanished five thousand years ago.

His recent fiction is "*Death of Motherhood*" which deals with change of sex and preserving the dead for future treatment and how a patient came back to life after half a century of his death.

The same author's novel "*Darkness of the Moon*" deals with the unscrupulous Scientists, who utilise Science for exploitation of moon for the sake of capitalists.

Besides these, there are also other Science fiction works by the same author. His recent Science fiction "*Earth Stands Still*" is now under print.

Dr. Gokulananda Mahapatra is also well versed in Scientific stories. Three of his Science fiction story books have earned immense reputation

for him. These three books—'*The flying Saucer*' published in 1954, '*The Fourth Dimension*' published in 1955, and '*The Crack of Time*' published in 1980 are highly popular in the State.

He has published Science fictions which contain the description of various Scientific discoveries and inventions in a lucid manner for common man in the garb of a Social fiction. He writes stories on Scientific inventions and discoveries for common man and students. The '*Sputnik*' '*Bigyan Bichitra*' are a few such examples. Dr. Mahapatra has written more than 50 popular Science books besides fiction which have earned him 'Sahitya Academy Award' of the State and awards from various Government and Private Institutions.

Dr. Mahapatra has also written Scientific poems, Scientific Dramas on modern topics like Test-tube baby, Brain transplantation, Uranium fission etc.

All his books are highly popular and have undergone various editions. He is writing on Science for more than forty-five years and is the author of more than 70 books on Science. For his Science fiction writings, he is popularly known as the "*H.G. Wells of Orissa*". There is no other Science ficticn writer in Orissa.

□□

तेलुगु भाषा में विज्ञान कथा लेखन : संक्षिप्त टिप्पणी

पी० रंगनाथ

आंध्र प्रदेश में विज्ञान कथा लेखन की शुरूआत उन्नीसवीं शती के अंतिम दशक से मानी जा सकती है। 'स्वर्गीय टेकुमल्ला राजगोपाल राव' का तेलुगु भाषा में लिखा गया उपन्यास 'विहंगयानम' जो चंद्र यात्रा पर आधारित है, अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। अन्य चर्चित नामों में 'विस्स अप्पाराव, बसंतराव वेंकटराव, नन्दुरि राम मोहन राव, के० हनुमन्त राव, सी० वी० सर्वेश्वर शर्मा, महीधर नलिनी मोहन, पी० रंगनाथ, जे० कोनेटी राव हैं।

'यान्दामुरि वीरेन्द्र नाथ' ने 'जेनेटिक इंजीनियरी' पर आधारित एक उपन्यास लिखा। प्रस्तुत आलेख में लेखक ने अपने प्रयासों की चर्चा करते हुए अन्य विज्ञान कथाकारों की रचनाओं का भी उल्लेख किया है।

A brief note on Science Fiction in Telugu

P. Ranganath

In our Andhra Pradesh since a long time i.e. even from the last decades of the 19th century, so many science books both fiction and non-fiction were in offing. There is a novel in our Telugu namely 'Vihangayanam' (Journey to the sky), which depicted the moon voyage by human beings written by a great writer namely Late *Tekumalla Rajagopala Rao*.

Here it is necessary to give the names of some great people like *Vissa Appa Rao*, *Vasantarao Venkatrao*, *Nanduri Rammohan Rao*, *K. Hanumantha Rao*, *C.V. Sarveswara Sarma*, *Mahidhar Nalini Mohan*, *Puranapanda Ranganath*, *Jammi Koneti Rao*, who contributed and have been contributing for the cause of science and science fiction and to propagate scientific outlook among the public in our State.

Here is a brief account of science fiction in Telugu.

We are having a handful of writers who contribute science fiction novels. Among them are *Sri Yandamuri Veerendranath* who wrote a novel on genetic engineering and space. *Sri Malladi Venkatakrishna Murty* wrote two novels, one on the Giant Snails and another on a new disease like aids. *Sri Mynampati Bhaskar* wrote on extra terrestrial life and on genetics. *Sri Prafulla Chandra's* novel dealt with the problems of bio-technology.

Sri Puranapanda Ranganath wrote on cloning, on tachyons, on pollution problems, on comets and on brain transplantation issues.

It is a brief account of science writing in Telugu.

A unique feature of Telugu science writing is that here some science clubs are performing science plays for children. For example a playlet called 'Ro. Po. da' (Rogulu pogatte doctor) on the disease progeria i.e. aging disease was staged with a robot doctor. Another playlet namely 'Tomorrow' was enacted by children which dealt with the advancements in modern science and technology. Our All India Radio, Vijaywada Station is doing a lot for the propagation of Science and Scientific work. In its programmes a little time is given to the Science writings also.

Recently I produced a play on the adversities of 'frog leg export', which received good attention among public.

Our Science club namely 'GIGNASA' conducted a series of lectures on Halley's comet and encouraging students in Science writing and conducting Science oriented programmes.

This is a brief account of Science fiction and Science club activities in our State.

□□
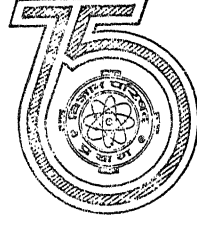
हिन्दी विज्ञान कथा लेखन-कुछ सुझाव

अनिल कुमार शुक्ल

विज्ञान कथा का क्षेत्र हिन्दी बिज्ञान साहित्य का सबसे उपेक्षित पक्ष है। यह हिन्दी विज्ञान साहित्य की वह विधा है, जिसकी ओर रचनाकारों ने ध्यान नहीं दिया। जहाँ-तहाँ इक्के-दुक्के प्रयासों को छोड़कर किसी भी लेखक, पत्रिका या संस्था ने हिन्दी में विज्ञान कथा साहित्य—मौलिक या अनूदित—उपलब्ध कराने का बीड़ा नहीं उठाया। हिन्दी में संभवतः पहली बार जब बच्चों की पत्रिका 'पराग' ने **विज्ञान कथा अंक** (दिसम्बर 1975) निकाला तब लगा था कि, देर से ही सही, इस विधा के प्रति 'हिन्दी वालों' की रुचि बढ़ी। पर, यह दुराशा ही सिद्ध हुई। विज्ञान परिषद्, प्रयाग ने जब अपनी मासिक पत्रिका 'विज्ञान' का **विज्ञान कथा विशेषांक** निकाला तो उसके संपादकीय [नवम्बर 1984-जनवरी 1985] में 'विज्ञान कथा' नाम की एक द्वैमासिक पत्रिका निकालने की योजना का संकेत दिया गया। पर न तो वह पत्रिका अस्तित्व में आई और न ही 'विज्ञान' या किसी अन्य हिन्दी विज्ञान पत्रिका ने विज्ञान कथा विशेषांक निकालने का साहस किया! क्यों हुआ ऐसा? यदि पाठकों को शिकायत है कि उन्हें पढ़ने को विज्ञान कथाएँ नहीं मिलती तो विज्ञान परिषद् जैसी सस्थाओं को शिकायत है कि साधनों की कमी और स्तरीय विज्ञान कथाओं के अभाव के कारण पाठकों में हिन्दी विज्ञान कथाओं की माँग ही नहीं है! फिर ही प्रश्न कि आखिर ऐसा क्यों है?

इस 'क्यों' का जवाब देने से पूर्व हमें यानी हिन्दी विज्ञान लेखकों को यह सच्चाई खुले दिल से स्वीकार कर लेनी चाहिए कि हम विज्ञान कथाएँ लिखने से घबराते हैं। या हम विज्ञान कथाएँ लिखना ही नहीं जानते, या फिर अस्वीकृति के डर से लिखने का साहस ही नहीं करते! कारण चाहे जो भी हो, परिणाम

हमारे सामने है कि हम हिन्दी वाले विज्ञान कथाओं के क्षेत्र में 'क्षेत्रीय' कही जाने वाली मराठी और बंगला जैसी भाषाओं से भी बहुत पिछड़ गये हैं । इतने बड़े हिन्दी भाषी क्षेत्र से हम एक भी समर्थ विज्ञान कथाकार इस देश को न दे सके । **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** ने अकेले हिन्दी में साहित्य सृजन की लहर चला दी, पर पूरे देश में आज एक भी ऐसा विज्ञान कथाकार नहीं, जिससे प्रेरणा लेकर हिन्दी में विज्ञान कथाओं का एक दौर शुरू हो सके ।

जो नहीं है, उस पर आँसू बहाना मनस्वी जनों का काम नहीं है । बहुत दिनों तक हिन्दी में विज्ञान कथाओं के अभाव पर हमने 'घड़ियाली आँसू' बहाये, पर अब समय आ गया है हम इस अभाव की पूर्ति के लिए कुछ करें । अभाव की पूर्ति का एक ही उपाय है- हिन्दी में विज्ञान कथाओं का निरन्तर सृजन ! प्रश्न उठ सकता है कि हिन्दी में विज्ञान कथाओं के सृजन पर इतना जोर क्यों दिया जा रहा है ? फिर वही प्रश्न 'क्यों' ?

हिन्दी में ही 'क्यों' लिखें ?

आइए पहले इसी 'क्यों' का उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश करें । अपनी पुस्तक 'आसिमोव ऑन साइन्स फिक्शन' (Asimov On Science Fiction) में आइज़क आसिमोव लिखते हैं कि ''प्रत्येक सच्चे बुद्धिजीवी को, जिसने ज्ञान की किसी शाखा में विशेषता हासिल कर ली है, चाहिए कि वह अपना ज्ञान यथासंभव हर व्यक्ति तक पहुँचाये न कि केवल चन्द विशेषज्ञों तक ही सीमित रखे ।'' स्वभावतः हर व्यक्ति तक ज्ञान तभी पहुँच सकता है जबकि वह अपरिचित भाषा के बजाय उसकी अपनी भाषा में हो । जनता की अपनी भाषा, भारतवर्ष में हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषायें हैं, न कि अंग्रेजी । हाँ दुर्भाग्य से अंग्रेजी अभी भी इस देश में विशेषज्ञों की भाषा बनी हुई है । पर आसिमोव की दृष्टि में सच्चे बुद्धिजीवी को अपना ज्ञान विशेषज्ञों तक (यानी अंग्रेजी में) सीमित रखने के बजाय यथासंभव हर व्यक्ति तक (यानी हिन्दी में) पहुँचाना चाहिए । आसिमोव की दृष्टि में, ऐसे हर विशेषज्ञ के कुछ विशेष दायित्व हो जाते हैं जिन्हें उसे पूरा करना ही चाहिए । क्योंकि —

1. विज्ञान का सीधा सम्बन्ध जनता के भविष्य से है, क्योंकि विज्ञान के क्षेत्र में हुई हर प्रगति, जाने-अनजाने समाज को मिटा या बचा सकती है ।

2. यदि जनता वैज्ञानिक शोधों के लिये कर देती है तो उसे यह जानने का भी हक है कि उसके द्वारा दिया गया कर (टैक्स) उसके विनाश के लिये लगाया जा रहा है या विकास के लिए ।

3. आजकल किये जा रहे सभी वैज्ञानिक शोध जनता की जेब से लिये गये पैसे से किये जाते हैं, अतः अब विज्ञान, ब्रह्मांड की गुत्थी सुलझाने में लगे किसी अकेले व्यक्ति की बपौती नहीं है ।

4· आज के युग में, वैज्ञानिक शोध अब कुछ समर्पित स्वयंसेवी प्रकृति के लोगों के वश की चीज नहीं है। वैज्ञानिक शोधों की निरन्तरता और गति को बनाये रखने के लिए बड़ी संख्या में वैज्ञानिक अभिरुचि-सम्पन्न प्रशिक्षित लोगों की आवश्यकता है।

और, यह सब केवल तभी संभव है जबकि विज्ञान का ज्ञान लोक मानस में प्रतिष्ठित हो। विज्ञान की यह प्रतिष्ठा, भारत में, केवल हिन्दी (और अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ) ही दिला सकती है। हर वैज्ञानिक खुद भी 'आम जनता' का ही एक अंश है, वह भी (वैज्ञानिक शोधों के लिए) कर का भुगतान करता है, अतः उसके लिए भी विज्ञान को 'लोकप्रिय' बनाना आवश्यक है---ताकि उसके द्वारा किये जा रहे अनुसंधान को समझने और आगे बढ़ाने के लिये अधिकाधिक योग्य 'शिष्य' उपलब्ध हो सकें।

इस तथ्य को पढ़, सुन ओर समझ सकने के बावजूद यदि कोई भारतीय वैज्ञानिक हिन्दी (व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं) में वैज्ञानिक साहित्य सृजन को मूर्खतापूर्ण, या अनावश्यक कृत्य समझता या कहता है तो आसिमोव की दृष्टि में वह एक 'गधा' है—एक खतरनाक गधा !

विज्ञान कथा ही 'क्यों' लिखें ?

यदि हम आसिमोव की दृष्टि में 'गधा' नहीं बनना चाहते तो निश्चय ही हमें विज्ञान को लोकप्रिय वनाने के लिए कमर कस लेनी चाहिए। पर, आप पूछ सकते हैं कि विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए 'विज्ञान कथा' ही 'क्यों' लिखी जाय ? क्या विज्ञान कथाओं की कोई उपयोगिता भी है ? इस प्रश्न पर विचार करते हुए ह्यूगो गर्न्सबैक (Hugo Gernsback) द्वारा संपादित विश्व की पहली विज्ञान कथा पत्रिका 'अमेजिंग स्टोरीज़' (Amazing Stories) के संदर्भ में आसिमोव अपने बचपन की याद करते हैं। आसिमोव के अनुसार, उनके पिता ने उस पत्रिका को पढ़ने की छूट केवल इस कारण दे रखी थी कि उसमें छपी 'कथा' में केवल कहानी ही नहीं 'विज्ञान' भी रहता था। विज्ञान कथा में अपनी बढ़ती हुई रुचि का श्रेय, आसिमोव उस पत्रिका में छपने वाली उस 'क्विज़' को देते हैं, जिसके प्रश्नों का उत्तर ढूंढते हुए उन्हें 'अरुचिकर' विज्ञान कथाओं को भी कई बार पढ़ना पड़ता था।

बार-बार अभ्यास करने पर अरुचिकर चीज़ भी जब रुचिकर लगने लगती है, तब विज्ञान कथाओं में भला रुचि कैसे न पैदा होगी ? यही बात हम 'हिन्दी वालों' को गाँठ बाँध लेनी चाहिए—यदि हिन्दी के पाठकों में विज्ञान कथाओं की माँग नहीं है या उनमें विज्ञान कथाओं के प्रति रुचि नहीं है, तो भी हमें विज्ञान कथाएँ लिखनी ही चाहिए, क्योंकि 'विज्ञान कथा' साहित्य की एक ऐसी विधा जो विज्ञान के पाठकों को तो आकृष्ट करेगी ही, विज्ञान न जानने वालों को भी अपना दीवाना बना देगी।

पर विज्ञान कथा की सबसे बड़ी उपयोगिता 'लर्निंग डिवाइस' (Learning Device) के रूप में है। पूर्वमाध्यमिक स्तर (कक्षा 6 से 10) के बच्चों को यदि पाठ्य सहायक कार्य के रूप में कोई विज्ञान कथा पढ़ने को दी जाय तथा अगले दिन यदि कक्षा में विज्ञान की पढ़ाई उस विज्ञान कथा का सन्दर्भ देते हुए ही शुरू की जाय तो निश्चय ही बच्चे पूरी लगन व तन्मयता से पूरा व्याख्यान भी सुनेंगे और बीच-बीच में अपनी जिज्ञासाएँ भी पूछ-पूछ कर शान्त करेंगे। उदाहरण के लिए पचास के दशक में छपी आसिमोव की दो विज्ञान कथाएँ 'लकी स्टार' व 'ओशन्स ऑव वीनस' (Lucky Star & Oceans of Venus) को शुक्र ग्रह पर व्याख्यान देने से पहले बच्चों को पढ़ने हेतु दिया जा सकता है। पचास के दशक में, जब ये विज्ञान कथाएँ लिखी गईं, उपलब्ध ज्ञान के अनुसार शुक्र एक गर्म पर जल-आप्लावित ग्रह था, जिसमें पृथ्वी के 'डायनासोर युग' के प्राणियों के रहने की कल्पना की गई थी पर अब यह एक स्वीकृत तथ्य है कि शुक्र ज़हरीले बादलों से आवृत्त एक लाल तप्त ग्रह है, जिस पर जीवन तो क्या एक बूंद पानी भी सम्भव नहीं है! अब यदि यह विज्ञान कथा बच्चों को पढ़ने को दी जाय तथा अगले दिन कक्षा में (या घर पर ही) उन्हीं से पूछा जाय कि क्या शुक्र पर समुद्र है? सम्भव है, बच्चों का उत्तर 'हाँ' में हो। अब बच्चों को यह बताया जा सकता है कि वैज्ञानिकों के अनुसार इस समय शुक्र पर 600 डिग्री फारेनहाइट (600°F) ताप है! क्या इतने ताप पर भी आसिमेव की विज्ञान कथा में वर्णित सागर में पानी सम्भव है? ऐसे ही अनेक रोचक प्रश्न किये जा सकते हैं और प्राप्त उत्तरों को ध्यान में रखते हुए विषय से सम्बन्धित नई वैज्ञानिक जानकारियाँ दी जा सकती हैं।

स्पष्टतः सामान्य वैज्ञानिक लेखों की अपेक्षा विज्ञान कथाओं के ज़रिए वैज्ञानिक तथ्यों को अधिक रोचक और ग्राह्य बनाया जा सकता है—यानी अब यह स्पष्ट हो ही गया होगा कि विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए विज्ञान कथाएँ ही क्यों लिखी जायँ।

विज्ञान कथा 'क्या' है?

विज्ञान कथाओं की उपयोगिता समझ लेने के बाद, स्वभावतः विज्ञान कथा के बारे में 'कुछ' जानने की जिज्ञासा प्रबल हो उठती है। वस्तुतः विज्ञान कथा क्या है? इसमें और सामान्य कथाओं में अन्तर क्या है। क्या विज्ञान कथा की अपनी कुछ अलग विशिष्टता या पहचान है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर जाने बिना न तो विज्ञान कथा लिखी जा सकती है और न विज्ञान कथा के अच्छी-बुरी होने का निर्णय ही किया जा सकता है। अतः इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर भी थोड़ा विस्तार से विचार किया जाना आवश्यक लगता हैं।

विज्ञान कथा को परिभाषित करते हुए आसिमोव लिखते हैं, "विज्ञान कथा, साहित्य की वह विधा है जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी में सम्भावित परिवर्तनों के प्रति मानवीय प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति देती है।" इस परिभाषा से ही यह बात स्पष्ट है कि विज्ञान

कथा में कथानक (यानी कहानी का मूल विषय) विज्ञान अथवा प्रौद्यौगिकी की अवस्था या स्तर में सम्भावित परिवर्तन से सम्बद्ध होना चाहिए तथा कथानक का विकास इस प्रकार होना चाहिए कि उन परिवर्तनों के प्रति वर्तमान समाज की भावनाएँ व प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट हो सकें। दरअसल, यह विज्ञान कथा का ही प्रभाव है कि हम जीवन-प्रक्रिया और रहन-सहन में 'प्रौद्योगिकी के द्वारा परिवर्तन' की अवधारणा को हृदयंगम कर सकें। आज यह अवधारणा हमारी निर्णय प्रक्रिया का इतना अभिन्न अंग बन चुकी है कि हम इस तथ्य को 'अलग' से समझ ही नहीं पाते। कोई भी दीर्घकालीन निर्णय करते समय यदि हम भविष्य की सम्भावित प्रोद्यौगिक उन्नति को ध्यान में नहीं रखते तो निश्चय ही हमारा निर्णय बुद्धि-मत्तापूर्ण नहीं माना जा सकता। यही कारण है कि हर राजनेता, व्यवसायी और आम जनता को 'विज्ञान कथा की दृष्टि से' सोचने की सलाह आसिमोव देते हैं।

जहाँ तक विज्ञान कथा और अन्य कथा-कहानियों में मूल अन्तर की बात है, आसि-मोव कथाओं को दो वर्गों में विभाजित करते हैं-यथार्थवादी (Realistic) कथाएँ और अति-यथार्थवादी (Surrealistic) कथाएँ। यथार्थ कथाओं का कथानक हमारे वर्तमान या अतीत के ज्ञात परिवेश के इर्द-गिर्द विकसित होता है जबकि अतियथार्थवादी कथाओं में ऐसे अज्ञात परिवेश की घटनाएँ वर्णित होती हैं जिनके बारे में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित या न के बराबर होता है। इन कथाओं को भी दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है—फैंटेसी (Fantasy) व विज्ञान कथा (SF)। फैंटेसी शब्द जिस ग्रीक मूल से व्युत्पन्न है उसका अर्थ है कल्पता। अतः आज जब हम किसी कथा को 'फैंटेसी' कहते हैं तो हमारा मतलब प्रायः ऐसी कथाओं से होता है जो विज्ञान के नियमों से सीमाबद्ध न होकर पूर्णतः कथाकार की स्वच्छन्द कल्पना का ही सृजन होती हैं। यहीं यह बात भी स्पष्ट तौर पर समझ लेनी चाहिए कि फैंटेसी के कथानक में अतियथार्थ परिस्थितियों के सृजन में वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक प्रगतिवादी की कोई भूमिका नहीं होती। पर 'विज्ञान कथा' में ऐसी घटनाओं व परि-स्थितियों का सृजन इसकी भूमिका ही महत्वपूर्ण होती है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के स्तर के अन्तर को दिखाने के लिए मंगल या किसी अन्य ग्रह-उपग्रह पर सभ्यता के विकास की कल्पना की जा सकती है या विभिन्न आकाशीय पिंडों से प्राप्त संकेतों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है अथवा किसी नाभिकीय या पर्यावरणीय ध्वंस के कारण वर्तमान प्रौद्योगिक सभ्यता का विनाश दिखाया जा सकता है। भविष्य में वैज्ञानिक-प्रौद्यौगिक सफलताओं की कल्पना के कला-यंत्र, प्रकाश से अधिक वेग, सर्वभाषा-भाषी यंत्र मानव (रोबोट) आदि समाहित किये जा सकते हैं।

अब तक तो हमने अवधारणा (Concept) की दृष्टि से मूलभूत तकनीकी अन्तरों की चर्चा की। पर आइए, अब यह देखें कि विज्ञान कथाएँ सामान्य कथाओं से अचानक कब और कैसे भिन्न हो जाती हैं। मंगल और चाँद की बात कौन कहे अपने देश में तो सशरीर स्वर्ग जाने और इच्छानुसार वेश बनाकर कहीं भी, कभी भी पहुँच जाने की ढेरों

कथाएँ रची गई है। इन यात्रा कथाओं और विश्व के पहले सफल व्यवसायिक विज्ञान कथाकार जुले वर्न की यात्रा कथाओं में क्या अन्तर है ? इन कथाओं व जुले वर्न की 'विज्ञान कथाओं' में मूल अन्तर यह है कि वर्न ने यात्रा के लिए वैज्ञानिक सिद्धान्तों का ही खींच-तानकर ऐसा उपयोग किया था जिनका तब तक के वास्तविक जीवन में प्रयोग ही नहीं हुआ था। उदाहरण के लिए हमारे पौराणिक साहित्य में 'पुष्पक विमान' की कल्पना तो की गई, पर उसे आकाश मार्ग में उड़ाने के लिए किसी नये यन्त्र या प्रक्रिया की कल्पना नहीं की गई। उसमें तो सदियों से 'ज्ञात' तथ्य कि हंस (व अन्य पक्षी) उडते हैं, तो (घोड़ों के बजाय) यान में हंस जोत दिए गये। स्पष्टतः 'पुष्पक विमान' की कल्पना में न तो कोई वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक उन्नति दृष्टिगोचर होती है और न ही किसी 'अज्ञात' परिवेश का ज्ञान हमें हो पाता है।अतः 'पुष्पक विमान' या इच्छानुसार आकाश मार्ग से भ्रमण को 'विज्ञान कथा' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। हाँ, यदि आप चाहें तो उन्हें फैंटेसी' अवश्य कह सकते हैं। आधुनिक युग में भी, पश्चिमी देशों में जुले वर्न की यात्रा कथाओं को पढ़कर अन्य लोगों ने मंगल व अन्य ग्रहों पर जाने के लिए बेसिर-पैर की कल्पनाएं कीं पर स्मिथ (E. E. Smith) ने 1928 ई० में 'जड़त्वहीन ड्राइव' की कल्पना करके जब 'द स्काईलार्क ऑव स्पेस' (The Skylark of Space) की रचना की तो उसे ही 'विज्ञान कथा' माना गया।

विज्ञान कथा : कुछ विशिष्टताएँ

जिस प्रकार विज्ञान की विविध शाखाओं में कुछ विशिष्ट तकनीकी पारिभाषिक शब्द होते हैं, ठीक वैसे ही विज्ञान कथाओं की भी अपनी शब्द संपदा है। विज्ञान कथाओं की यह शब्दावली विशिष्ट इस मामले में है कि जब कभी भी ये शब्द 'विज्ञान कथा' में प्रयुक्त होंगे तो सामान्य भाषा में प्रचलित अपने अर्थ को छोड़ 'विशिष्ट' अर्थ (जो केवल विज्ञान कथाओं में लिया जाता है) ग्रहण कर लेते हैं। दुर्भाग्य से हिन्दी में विज्ञान कथाओं की पारिभाषिक शब्दावली अभी नहीं बन सकी है। इस ओर हमें विशेषकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग को ध्यान देना चाहिए। पर तब तक इस लेख के लिए आसिमोव द्वारा उद्धृत कतिपय अंग्रेजी शब्दों से ही काम चलाया जाय। इन उदाहरणों से इस बात का कुछ अंदाजा लग सकेगा कि विज्ञान कथाकार अपनी आवश्यकता के लिए 'विशिष्ट' शब्द किस प्रकार बना लेते हैं।

ग्रीक मूल Andros से व्युत्पन्न Android शब्द का मूल अर्थ है—'नर' की तरह का तथा ग्रीक मूल Anthropos से व्युत्पन्न शब्द Anthropoid का मूल अर्थ है 'मानव' जैसा। अतः 'मानव' जैसे रूप व आकार वाले किसी कृत्रिम यन्त्र के लिए विज्ञान कथाकारों को Anthropoid शब्द चुनना चाहिए था, पर इस शब्द में न जाने कैसे उन्हें 'बन्दर की गंध' आने लगी और उन्होंने Android शब्द का (केवल 'नर' के बजाय 'नर-मादा' दोनों के लिए) अर्थ विस्तार कर दिया। उचित तो शायद यह होता कि उस कृत्रिम यन्त्र

को 'मादा' की पहचान देने के लिए Gynoid शब्द रच लिया जाता, पर भाषाई व्युत्पत्ति के इस 'औचित्य' पर विचार करने की फुर्सत कहाँ है विज्ञान कथाकारों को । एक बार जो शब्द बन गया और चल गया तो भाषा को स्वीकारना ही पड़ेगा । लेकिन मानव जैसे रूप-आकार वाले कृत्रिम यंत्र के लिए तो Android शब्द बन गया, पर अगर विज्ञान कथाकार ने मानवीय रूप-आकार के किसी जीवित प्राणी (जैसे किसी अन्यग्रह निवासी) की कल्पना तो उसे क्या कहेंगे ? लीजिए Human शब्द में हमने वही ग्रीक प्रत्यय—oid (जैसा) लगा दिया और बन गया हमारा शब्द Human-oid, परन्तु कुछ-कुछ इसी अर्थ में एक शब्द और हम प्रयोग करते हैं Robot—तो यह कहाँ से आया ? यह शब्द पहली बार चेकोस्लवाकिया के विज्ञान कथाकार कैरेल कैपेक की चेक विज्ञान कथा Rossum's Univesal Robots में प्रयुक्त है और दर असल चेक शब्द Robota के अंग्रेजी अनुवाद सम्बन्धी एक छोटी-सी कठिनाई का वरदान है । अपनी मूल भाषा में Robota 'गुलाम' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, पर चूँकि अंग्रेजी में Slave यानी 'गुलाम' मनुष्यों की एक 'जाति' का सूचक था, अतः गुलामों यानी स्वामी की इच्छानुसार काम करने वाली कृत्रिम प्रजाति को सूचित करने के लिए चेक शब्द Robota अंग्रेजी का Robot बन गया । पर इससे एक कठिनाई पैदा हो गई कि Android व Robot दोनों एक ही अर्थ प्रकट करते जान पड़े । तो विज्ञान कथाकारों ने कल्पना की एक और उड़ान भरी तथा यह स्पष्ट किया कि अधिकांशतः या पूर्णतः धातु से निर्मित कृत्रिम मानवों को Robot कहा जायगा जबकि मानवीय ऊतकों से मिलते-जुलते पदार्थों से निर्मित कृत्रिम मनुष्य Android कहलाएगा !

ऐसे ही अनेक शब्द हैं, जिन्हें हम—यानी हिन्दी के भावी विज्ञान कथाकारों को जानना पड़ेगा और हिन्दी में शब्द गढ़ते समय उनके बीच व्याप्त सूक्ष्म अंतरों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा ।

यह तो हुई विज्ञानकथा की पहली विशिष्टता । एक अन्य विशिष्टता, या बेहतर हो कि इसे हम कमी कहें, यह है कि विज्ञान कथाओं में पात्रों का चारित्रिक विकास नहीं हो पाता । दूसरे शब्दों में, हम यों कह सकते हैं कि विज्ञान कथा में कथानक और कथोपकथन के सिवा और कुछ नहीं होता । ऐसा लगता है विज्ञान कथाकारों को पात्रों के चरित्र-चित्रण का अवसर ही नहीं मिल पाता ! बात कुछ हद तक सही भी है । खुद आसिमोव यह स्वीकार करते हैं कि विज्ञान कथा का अधिकांश कथानक तो उस अपरिचित परिवेश से पाठकों का तादात्म्य (परिचय) स्थापित करने में ही खर्च हो जाता है । विज्ञान कथा एक ऐसे परिवेश को परिस्थितियों और घटनाओं का वर्णन करती है, जिसके बारे में पाठकों का ज्ञान अबोध शिशु के ही सदृश होता है । यही कारण है कि विज्ञान कथा में पात्रों का चारित्रिक विकास दर्शाने का समय कथाकार को नहीं मिल पाता । पर यदि कोई विज्ञान कथाकार चाहे और वह कर सके तो इस पक्ष को पर्याप्त महत्व मिल सकता है । हमारे देश में तो नैतिक मूल्यों और चरित्र का बड़ा महत्व है । संभव है पाश्चात्य विज्ञान कथा

की इस कमी को दूर करने का श्रेय हमें ही मिलना हो ! तो फिर, देर किस बात की ? उठाइए कलम और लिख डालिए एक विज्ञान कथा ! रुक क्यों गये ?

विज्ञान कथा 'कैसे' लिखें ?

लेखन एक कला है, जो निरन्तर अभ्यास से ही निखरती है। लिखने-लिखते ही हम लिखना सीखते हैं। लेखन, विशेषकर विज्ञान कथा लेखन का कोई ऐसा जादुई फार्मूला नहीं है जो किसी नौसिखिए को रातों रात 'विज्ञान कथाकार' बना दे। नौसिखिए द्वारा लिखी गई रद्दी कहानियाँ ही उसे 'अच्छी' कहानियाँ लिखने के योग्य बनाती हैं। यदि आप लिखने से डरेंगे और लिखना शुरू ही नहीं करेंगे तो लेखक बनेंगे कैसे ? तैराक बनने के लिए जिस प्रकार डूबने का भय मन से निकालकर तालाब में कूदकर तैरना सीखना पड़ता है, ठीक वैसे ही अपनी रची प्रारम्भिक विज्ञान कथाओं की अस्वीकृति का डर मन से निकालकर आपको विज्ञान कथाएँ लिखना शुरू ही कर देना चाहिए ! यदि आप के पास विज्ञान की डिग्री नहीं है, तो भी आप विज्ञान कथा लिख सकते हैं—लेकिन आप जो विज्ञान कथा लिखना चाहते हैं उसके कथानक के विकास के लिए जितनी साइंस जरूरी है, उतना तो आपको जानना ही चाहिए ! उदाहरण के लिए यदि आपकी विज्ञान कथा का नायक अन्तरिक्षयान लेकर 'टिटान' पर पहुँचता है तो 'टिटान' के बारे में वैज्ञानिकों द्वारा अब तक अर्जित ज्ञान से आप को अवश्य परिचित होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि आप अपनी विज्ञान कथा में किसी ऐसी बात का वर्णन कर दें, जिसे वर्तमान विज्ञान गलत सिद्ध कर चुका हो ! हाँ, आप अपनी विज्ञान कथा में ऐसी काल्पनिक बातों का समावेश अवश्य कर सकते हैं, जिसके बारे में वैज्ञानिकों ने संभावना व्यक्त की हो या फिर जो वर्तमान वैज्ञानिक ज्ञान से तर्क द्वारा निगमित (निष्पन्न) किया जा सके। पर, निश्चय ही आपकी कल्पना का 'टिटान' 'बृहस्पति' का उपग्रह नहीं होना चाहिए, क्योंकि वस्तुतः यह 'शनि' का उपग्रह है।

इसके अलावा कुछ और 'नियम' भी हैं, जिन्हें ध्यान में रखकर लिखी गई विज्ञान कथाएँ 'अच्छी' सिद्ध हो सकती है। आइए, इन्हें एक-एक कर समझें। ये नियम उन मूलभूत आवश्यकताओं की ओर संकेत करते हैं, जिनके बिना कोई 'विज्ञान कथाकार' बन ही नहीं सकता।

(1) लिखने की तैयारी करें

विज्ञान कथा लिखने की तैयारी की दिशा में पहला कदम है भाषा पर अधिकार। भाषा (यानि हिन्दी) की वर्तनी, व्याकरण और शब्द भण्डार की सही पकड़ सबसे जरूरी है। इसके अलावा वाक्य के गठन, उसके शैलीगत सौन्दर्य, कथोपकथन (dialogue) के आरोह-अवरोह, कथानक की रोचकता में नैरन्तर्य और ऐसी ही अनेक चीजों को सीखने-जानने की आवश्यकता पड़ सकती है। ये सारी बातें सीखने का एक ही सही मार्ग है—

सिद्धहस्त सफल रचनाकारों, कथाकारो के साहित्य का मनन ! अंग्रेजी में जिस प्रकार चार्ल्स डिकेन्स व मार्कट्वेन को पढ़ने की सलाह दी जाती है, वैसे ही हिन्दी में प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, मन्नू भण्डारी, राजेन्द्र यादव, शिवानी आदि हैं लेकिन इन कथाकारों की रचनाएँ पढ़ते समय मनोरंजन का लक्ष्य न रखें बल्कि यह सोचें कि किसी परिस्थिति विशेष में कथाकार ने कोई शब्द विशेष ही क्यों चुना ? किसी भाव-विशेष की अभिव्यक्ति के लिए किस तरह के वाक्य-गठन एवं भाषा-शैली का चयन किया गया है ? स्वयं से ऐसे प्रश्न पूछ-पूछ कर आप भाषा पर अधिकार पा सकेंगे ।

तैयारी की दिशा में दूसरी आवश्यकता विज्ञान का ज्ञान है । जरूरी नहीं कि आप उच्चकोटि के वैज्ञानिक हों (अगर आप हैं, तब तो और भी अच्छी बात है) पर आप में स्वयं विज्ञान पढ़ने और समझने की जिज्ञासा तो होनी ही चाहिए ! उदाहरण के लिए, याद रखिए कि फ्रेडरिक पोह्ल (Frederik Pohl) एक विशिष्ट विज्ञान कथाकार हैं, जिन्होंने हाईस्कूल भी नहीं पास किया । संभव है, आप फ्रेडरिक की तरह 'जीनियस' न हों. फिर भी प्रयास करने में बुराई क्या है ?

पर संभव है, आप 'विज्ञान' को 'लेखन' से जोड़कर 'कथा' का रूप न दे सकें । अतः विज्ञान कथाकार बनने की तैयारी की दृष्टि से तीसरी आवश्यकता इस बात की है कि आप विज्ञान कथाओं के नियमित और सजग पाठक बनें—ताकि शुरू में कथानक के विकास, कथा की शुरूआत व अन्त आदि की तकनीकें सफलतापूर्वक 'चुरा' सकें । आपकी सुविधा के लिए तीन खजानों का पता बताए देता हूँ । याद कीजिए—जुले वर्न, एच० जी० वेल्स और आसिमोव !

(2) लिखना शुरू करें

विज्ञान कथा लिखने की प्रारम्भिक तैयारी कर चुकने के साथ-साथ लिखना भी शुरू कर दीजिए । जिस प्रकार नदी या तालाब में उतरे बिना हम तैरना नहीं सीख सकते, वैसे ही विज्ञान कथा लिखे बिना 'विज्ञान कथा' लिखना भी नहीं आ सकता । इसीलिए लिखना शुरू कीजिए और एक के बाद एक विज्ञान कथाएँ लिखते जाइए......लिखते-लिखते आप खुद बहुत कुछ सीखेंगे......और एक दिन 'विज्ञान कथाकार' हो जाएँगे ।

(3) निराश न हों

अगर एक बार आपने विज्ञान कथाएँ लिखना शुरू कर दिया तो निराश होना भी छोड़ दीजिए । एक बार भी लक्ष्य प्राप्त करने के लिए चल चुकने के बाद जो व्यक्ति कठिनाइयों से निराश होकर बीच में ही प्रयास छोड़ देता है, वह कभी भी मंजिल तक नहीं पहुँचता । आपका लक्ष्य भी तो विज्ञान कथाकार बनना है । अतः लिखी गई विज्ञान कथाओं के प्रकाशनार्थ अस्वीकृत होने से निराश होकर धैर्य खोने के बजाय, और मनोयोग से विज्ञान

कथा लिखने में जुट जायँ। याद रखिए, जब आप पहली विज्ञान कथा लिखते हैं तो मानों पहली कक्षा उत्तीर्ण करते हैं। अब और परिश्रम करें, दूसरी विज्ञान कथा लिखें...फिर तीसरी...फिर चौथी...और विश्वास रखें कि अपनी कमियों को निरन्तर सुधारते रहने से आप अवश्य सफल होंगे।

(4) **आजीविका का साधन न बनाएँ**

लेखन और विशेषकर विज्ञान कथा लेखन एक अद्भुत और संतुष्टिदायक कार्य है, तथापि कोई भी लेखक यानी कथाकार अपनी आजीविका के लिए इसी पर निर्भर नहीं रह सकता! खुद आसिमोव की पहली विज्ञान कथा तीन साल बाद छपी और तब से लगातार लिखते रहने के बाजजूद एक 'सफल' विज्ञान कथाकार बनने में उन्हें सत्रह साल और लगे।

इन चार नियमों को सीख लेने के बाद, आसिमोव की ही तरह मेरा भी विश्वास है कि आप एक 'अच्छे विज्ञान कथाकार बन सकते हैं। पर शुरू में शायद आप अपनी विज्ञान कथा के लिए उपयुक्त कथानक का चयन करने में कठिनाई महसूस करें! अतः आप की सुविधा के लिए तीस विषयों की एक लघु सूची दी जा रही है—जिन्हें आप विज्ञान कथाओं के विषय मान सकते हैं (1) जीन बैंक (2) जेनेटिक इंजीनियरिंग (3) रोबोट या यन्त्रमानव (4) कम्प्यूटर (5) कम्प्यूटरित शिक्षा (6) अन्तर्ग्रहीय यात्रा (7) कालयात्रा (Time travel) (8) विकल्पी काल (Time) मार्ग (9) निम्न गुरुत्व उड़ान (10) गुरुत्व नियन्त्रण (11) अन्तर्नक्षत्रीय यात्रा (12) अन्तरिक्ष बस्तियाँ (13) विश्व ग्राम (14) विश्व सरकार (15) आकाशगंगीय साम्राज्य (16) जीवन-विकास प्रक्रिया का नियन्त्रण (17) अमरत्व (18) जनसंख्या नियन्त्रण (19) मौसम नियन्त्रण (20) दूसरे आकाशीय पिंडों के तापमान, जलवायु आदि को पृथ्वीसम बनाना (21) टेलीपैथी (22) अन्तर्नक्षत्रीय संचार (23) द्रव्यमान-विकिरण स्थानांतरण (24) ब्लैक होल (25) निकट अन्तरिक्ष का आर्थिक उपयोग (26) सागर सम्पदा का उपयोग (27) अन्तर्प्रजातिय संचार (28) स्थायी ऊर्जा-स्रोत (29) पर्यावरणीय विध्वंस (30) कृत्रिम मानव (Android) की रचना।

□□

हमारी विज्ञान कथाओं में 'वैज्ञानिकता'

अरविन्द मिश्र

अभी हाल में ही हिन्दी की दो बड़े बजट वाली स्वनामधन्य साप्ताहिक पत्रिकाओं में मुझे दो वैज्ञानिक कहानियाँ पढ़ने को मिली और मैं अपना सर थाम कर बैठ गया। कारण उनमें ऐसा कुछ भी नहीं था जिसके आधार पर उन्हें वैज्ञानिक कहानियों का दरजा दिया जा सकता। बल्कि वे अवैज्ञानिक 'सोच' और पौराणिक करिश्मे की परम्परा में योगदान देने वाली लगीं। धरती पर गुरुत्व के विरुद्ध उड़ान मानव की कल्पनात्मक 'उड़ान' तो हो सकती है, भौतिक (शारीरिक) उड़ान नहीं। यह आधुनिक विज्ञान के किसी भी सिद्धान्त, मानदण्ड के परे की बात है—एक घटिया वैज्ञानिक 'प्लाट' या संकल्पना। 'धर्मयुग' के हाल ही में प्रकाशित विज्ञान विशेषांक में अरुण साधू की अनूदित विज्ञान कथा ''आदमी के उड़ने की कहानी'' की वैज्ञानिकता (?) कुल इतनी भर थी कि एक आदमी का दिवास्वप्न हकीकत में बदल जाता है (केवल उसके लिये) और वह हवा में ऊँचे और ऊँचे पेंगें मारने लग जाता है। यह 'कथानक' भले ही और 'कुछ' (स्वैर कल्पना, शुद्ध वैयक्तिक सनक) कही जा सकती हो पर वैज्ञानिक कथा तो यह कदापि नहीं है। इसी तरह ''साप्ताहिक हिन्दुस्तान'' की एक कहानी (वह भी अनूदित)–''नारद की करताल'' तो हमें पौराणिक मायाजाल में उलझा देती है–कहानी के अन्त में मेज पर 'नारद की करताल' बची रहती है और सब कुछ लोप हो जाता है–नायक खुद भी। ऐसी कहानियाँ किस तरह वैज्ञानिक सोच का प्रसार कर सकती हैं ?

भला आसिमोव से बेहतर कौन इस विधा पर कह सुन, लिख पढ़ सकता है ? तो आइये, विज्ञान कथाओं में वैज्ञानिकता के सवाल पर सीधे उन्हीं के श्रीमुख और लौह-लेखनी से कुछ सुनें पढ़ें । इस मामले में आसिमोव (आसिमोव आन सांइस फिक्शन) बड़े प्यूरिटनवादी हैं । पहले तो वे विज्ञान कहानियों को ही दो वर्गों में बाँट देते हैं—फिक्शन और फैंटंसी । दोनों का शाब्दिक अर्थ देखिये—लातिनी शब्द ' फिक्शन' का अर्थ है—"आविष्कार करना" और ग्रीक शब्द "फैंटेसी" का अर्थ है—"कल्पना" । ये दोनों 'वर्ग' समकालीन सच्चाई से एक खास अर्थ में भिन्न हैं । "साईंस फिक्शन" समकालीन वैज्ञानिक मान्यताओं व तकनीक की आधारशिला पर ही अपनी गगनचुम्बी (काल्पनिक) इमारत खड़ी करता है, जबकि साइंस फैंटेसी की बुनियाद का एक तरह से अता-पता नहीं रहता । उसका पूरा अस्तित्व ही हवा (ई) महल का सा होता है, बहुत कुछ अपने पुराणों की तर्ज पर । लेकिन 'भविष्य चित्रण' दोनों में ही अनिवार्य 'तत्व' के रूप में विद्यमान होता है, जो उसे अन्य साहित्यिक विधाओं (इतिहास, कहानी, तिलिस्म, हादसा कथा, पुराण आदि) से पृथक आयाम प्रदान करता है । हमारे पुराणकारों की उर्वर कल्पनाशक्ति का लोहा मानना होगा जिन्होंने पुराणगाथा को अतीत वर्तमान तक ही समित न रखकर 'भविष्य पुराण' तक का भी 'विराट' मिथकीय विस्तार दे डाला । यदि "भविष्य पुराण" किस्सा-गोई की पौराणिक परम्परा का उत्कर्ष है, तो फिर कथात्मक "भविष्य विज्ञान" वैज्ञानिक सोच की कलात्मक-साहित्यिक अभिव्यक्ति है । फिर उसके पौराणिक परम्परा से घालमेल की प्रवृत्ति से बचना चाहिये । तभी उत्कृष्ट 'विज्ञान गल्प' का स्वरूप मुखरित हो पाता है । फैंटेसी का पुट वहीं तक उचित और स्वीकार्य है जहाँ तक कि वह समकालीन वैज्ञानिक यथार्थ का अतिक्रमण न करे । आशय यह कि, तिल से ताड़ बन सकता है, तेल का भी ताड़ हो सकता है (पामोलीन) पर 'हवा' का ताड़ नहीं बन सकता । पर यह सचमुच एक 'भयोत्पादक' प्रवृत्ति सी बनती जा रही है कि 'विज्ञान कथाओं' के विशाल संभावना (प्र) क्षेत्र को मद्दे नजर रखते हुये कई लिक्खाड़ प्रतिभायें इसमें कूद पड़ी हैं और जो कुछ भी मन में (अनाप-सनाप) आ रहा है 'विज्ञान कथाओं के नाम पर हिन्दी के पाठकों के सामने (बेचारे हिन्दी के पाठक) परोस रही हैं, ईस्टमैन कलर पत्रिकाओं के जरिये । इस प्रवृत्ति का हमें समवेत स्वरों से विरोध करना होगा, नहीं तो भारतीय विज्ञान कथा का स्वर्णकाल नहीं आने वाला ।

हिन्दी में वैज्ञानिक कथा साहित्य का उद्भव कब हुआ ? यह सवाल अक्सर इस विधा के जिज्ञासुओं के सामने आता रहता है । जवाब में, प्रायः बाबू देवकीनन्दन खत्री के 'तिलिस्म युग' और उनके सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री की अमर (?) कृतियों का उद्धरण दिया जाता है । अब यदि हम आसिमोव की कसौटी पर बाबू देवकीनन्दन खत्री के तिलिस्म साहित्य को परखें तो यह तुरन्त उजागर होगा कि वह 'साइंस फिक्शन' की श्रेणी में तो कदापि नहीं है । तो क्या उसे 'साइंस फैंटेसी' के अन्तर्गत माना जा सकता है ? जी, नहीं, क्योंकि उसमें 'भविष्य दर्शन' का भी तो सर्वथा अभाव है ? अतः यह तय हुआ कि

'तिलिस्म साहित्य' वैज्ञानिक कथा साहित्य नहीं हो सकता। यद्यपि उसके स्तरीय साहित्य होने पर प्रश्न चिन्ह नहीं है। फिर यदि 'तिलिस्म साहित्य' वैज्ञानिक गल्प की कोटि में आता है तो फिर हमारे पौराणिक कथा साहित्य को विज्ञान गल्प की कोटि में क्यों नहीं समेटा जा सकता ? उसमें भी अन्तरिक्ष-पाताल यात्रायें (धरती स्वर्ग पाताल को एक करते (नापते) वामन देव।) स्पेस ट्रेवेल (नारद की यात्रायें) स्पेस स्टेशन (त्रिशंकु) की आरंभिक कल्पनायें (रुडिमेन्टरी इमैजिनेशन) ही तो हैं। हाँ, दुर्गाप्रसाद खत्री के उपन्यास विज्ञान सम्मत चिन्तन के उषाकाल की आभा से आलोकित हैं। मेरा आशय, समकालीन (तत्कालीन) वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के आधार पर भविष्य चिन्तन की क्षमता से है। अब देखिये कि दुर्गाप्रसाद खत्री की कुछ संकल्पनायें जैसे 'चालक विहीन अन्तरिक्ष यान' अब हकीकत बन चुकी है।

अन्तरिक्ष यात्रा के कथानक पर छठें दशक के आरम्भ में डॉ० सम्पूर्णानन्द की साभिप्राय कृति 'पृथ्वी से सप्तर्षि मण्डल' को हम वैज्ञानिक गल्प के क्षेत्र में अनुकरणीय प्रयास मान सकते हैं। डॉ० ओम प्रकाश शर्मा का अतीत व्यामोह पाठकों को भविष्य दर्शन के बजाय भूत दर्शन की रहस्यात्मकता से रोमांचित करता है। पर क्या हमें अपने पौराणिक मिथकों के साथ कौतुक करने की छूट है ? फिर भी डॉ० शर्मा का पाण्डित्य प्रदर्शन नतमस्तक होने को बाध्य करता है। हिन्दी वैज्ञानिक गल्प के दूसरेप्र काश स्तंभ हैं—डॉ० नवल बिहारी मिश्र, जिन पर विदेशी विज्ञान कथाकारों की गहरी छाप है। इसके बावजूद भी छठे-सातवें दशक के उनके कथा साहित्य में मौलिकता की महक है, पर उनकी ज्यादातर कृतियाँ विज्ञान गल्प की हल्की-फुल्की विधा (फैंटेसी) का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। अब आए, कैलाश साह, जो अपनी अद्‌भुत कल्पना शक्ति और शिल्पकला से चमत्कृत करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें आसिमोव की 'आत्मा' प्रविष्ट कर गयी हो (मेरा आशय लेखन की आत्मा से है, ईश्वर आसिमोव को शतायु बनायें)। कैलाश शाह की उर्वर मेधा से निःसृत कृतियाँ (मशीनों का मसीहा, प्रलय के बाद, अन्तरिक्ष के पार, असफल विश्वामित्र मृत्युंजयी कथा संग्रह) हिन्दी वैज्ञानिक कथा यात्रा में मील का पत्थर हैं। सातवें आठवें दशक में अवतरित विज्ञान कथाकारों में कुछ नाम सुनहली आभा से दीप्तिमय हैं—राजेश्वर गंगवार, (कुछ शीर्षक-शीशियों में बन्द दिमाग, साढ़े तैंतीस वर्ष, सप्तबाहु) देवेन्द्र मेवाड़ी (सभ्यता की खोज, गुड बॉय मिस्टर खन्ना, एक कृति 'बर्फानी हिमीकरण' के कथानक पर है, शीर्षक याद नहीं), प्रेमानन्द चन्दोला (सच्चाई का पेण्डुलम, वनस्पति मानव), रमेश दत्त शर्मा (हरा मानव, दोस्ती, हँसोड़ जीन), विष्णुदत्त शर्मा (प्रतिध्वनि, आकर्षण, सईस) यमुनादत्त वैष्णव अशोक (एक पूरा कथा संग्रह ही कुछ वर्षों पूर्व छपकर आया है) आदि। पर कई कहानियों में वैज्ञानिकता का अभाव सा है जो खटकता है।

एक नाम छूट ही गया, महान कथा मनीषी आचार्य चतुरसेन का। उन्होंने भी इस विधा पर लेखनी चलायी है—एक उपन्यास 'दक्षिणी ध्रुव' के वातावरण को कथानक के

रूप में लेकर रचा है। यह उनका एक उत्कृष्ट वैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें विज्ञान की आत्मा सकुशल है, उसका गला नहीं घुटा है। इधर पाकेट बुक्स में वैज्ञानिक उपन्यासों की छायी बहार में कई छदम् नामों ने 'छदम् विज्ञान' को बढ़ावा दिया है—स्वस्थ वैज्ञानिक चिन्तन का गला घोंट डाला है।

अब कुछ ऐसे नामों की भी चर्चा कर ली जाय जिनसे हिन्दी विज्ञान गल्प का अनूदित साहित्य समृद्ध हुआ है—इन्हें मैं त्रिदेव कहूँगा, भारतीय 'वैज्ञानिक पुराण' के त्रिदेव—प्रेमेन्द्र मित्र, सत्यजित राय और स्वनामधन्य जयन्त नारलीकर।

प्रेमेन्द्र मित्र बंगला साहित्य के जाने-माने हस्ताक्षर हैं। उन्होंने एक केन्द्रीय चरित्र का ही सृजन कर डाला है—घना दा (इसी शीर्षक से उनका एक उपन्यास भी हिन्दी में छप चुका है) वाह ! क्या कहने हैं घना दा के मोहक व्यक्तित्व के ! बच्चों को फुसलाते बहलाते वे उन्हें अपने संस्मरण संसार की सैर करा लाते हैं--हिम मानवों की दुनियां दिखाते हैं, फिर पलक झपकते अफ्रीकी कबीलाई परिवार में जा पहुँचते हैं और सहज ही वैज्ञानिक मान्यताओं-संभावनाओं को टटोलने लगते हैं, बच्चे मन्त्रमुग्ध ! उन्हें लगता है कि अभी घना दा उन्हें हिम मानव 'यती' बस दिखाने ही वाले हैं जो वे कहीं पिंजरे में कैद कर छुपा कर रखे हुए हैं। पर यह क्या, कहानी भी खत्म हुई तो ऐसे मोड़ पर कि घना दा बस 'यती' को एक तरह से पकड़कर भी पकड़ नहीं पाये हैं। (आखिर वे वह जड़ी (?) चख ही कहाँ पाये थे, नहीं तो भला क्या मजाल कि यती उनकी फौलादी पकड़ से छूट पाता) किस्सा कोताह यह कि प्रेमेन्द्र मित्र की वैज्ञानिक कहानियाँ, कहानियाँ नहीं सच्ची घटनाओं का पूरा आभास देती हैं। मेरी जोरदार सिफारिश है कि 'घना दा' आप अवश्य पढ़ें।

अब आइये बंगला कला जगत के मसीहा सत्यजित राय की चर्चा करें जो अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के चलते खुद एक 'जीती जागती दन्तकथा' बन बैठे हैं। उनका एक उपन्यास "तेरह वैज्ञानिक कहानियाँ" सद्यः प्रकाशित है। 'तेरह' की संख्या क्यों ? आप ही बतायें। सत्यजित राय 'फैंटेसी' विधा के पुरोधा हैं। उनकी कहानियों में 'हिचकॉक का हॉरर' भी है, भारतीय तन्त्र-मन्त्र जादू टोना (आकल्ट !) का फरेब भी। फिर भी वे ऐसे भटकाव भरे टेढ़े-मेढ़े कथानकों के बीच से वैज्ञानिक कहानी का मार्ग प्रशस्त करते चलते हैं जिनकी समाप्ति कभी कभार घोर हताशा भी उपजाती है। पर उनकी लेखकीय क्षमता, शिल्प बहुत प्रभावित करता है। उनकी किसी भी कृति को आप याद करें। दूरदर्शनी कृतियों को भी।

बामुलाहिजा होशियार ! अब बारी है एक 'धूमकेतु' की प्रतिष्ठा स्थापना की। यानी जनाब जयन्त नारलीकर की। जिनका सद्यः प्रकाशित कथा-संग्रह है "धूमकेतु"

(प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, प्रकाशक का नाम इसलिये याद है कि पुस्तक मेरे सामने है, अभी उस पर दोस्तों की कृपा दृष्टि नहीं पड़ी है) । इसमें संकलित सभी कहानियों में वैज्ञानिकता का आरोपण सहज और सुस्पष्ट है । चाहे वह 'पुत्रवती भव' हो अथवा 'धूमकेतु' या फिर 'फालसा गंज में पुष्पक विमान' सभी में पाठकों को विज्ञान की जानकारी मिलती है । नारलीकर कल्पना के "पागलपन" की हद से बचते नजर आते हैं । वे अपनी कहानियों में 'फिक्शन' को महिमामंडित करते हैं फैंटेसी को पास फटकने नहीं देते (एक दो अपवादस्वरूप स्थलों को छोड़कर) जैसे, उनकी एक बहुचर्चित कहानी "अक्स" में वे ऐसे ज्यामितीय तिलिस्म का ढाँचा बुनते हैं कि पाठक बौरा (या बोर हो) जाता है । वे कुछ-कुछ 'केशवदास' के "कठिन काव्य के प्रेत" वाली स्थिति उपजाते हैं, जो उनके पाण्डित्य प्रदर्शन का (दु:खद) दस्तावेज बन जाती है । आप 'अक्स' पढ़कर खुद ही फैसला कर लें ।

आइये मोटे तौर पर यह भी देख लें कि ऐसी कौन सी अवधारणायें हैं, जो विज्ञान-सम्मत नहीं हैं और जिनसे परहेज की प्रवृत्ति ही श्लाघनीय है । मसलन, गुरुत्व शक्ति पर नियन्त्रण या फिर काल यात्रा (टाइम ट्रेवेल)—ये दोनों अवधारणायें अपने सैद्धान्तिक कलेवर में ही असंभव सी हैं । इनके व्यामोह से बचना होगा । इसी तरह, अन्ध कूपों के सदुपयोग, ब्रह्माण्डीय बादशाह का अस्तित्व, दूरबोध, नक्षत्रीय महाभिनिष्क्रमण की संभावनायें बहुत क्षीण हैं । इनके अलावा भी कई ऐसे रोचक विषय हैं जिन पर बहुत कुछ, बहुभाँति लिखा जा सकता है, जैसे–जनसंख्या नियन्त्रण, वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा, ऊर्जा का अहर्निश स्रोत, रोबोट, कम्प्यूटर, कलम (क्लोन) रोपण, जैव अभियान्त्रिकी, अमरता, अतिचालकता, निकट अन्तरिक्ष का दोहन, अन्तरिक्ष पड़ाव, अन्तरग्रहीय यात्रायें, अन्तरतारकीय संवाद, आदि आदि ।

विज्ञान गल्प का मतलब "चाय की प्याली में तूफान" पैदा करने की सनक तो कदापि नही है । पाठकों को स्वस्थ मनोरंजक और स्तरीय साहित्य के जरिये समकालीन और उससे विकसित भविष्य के विज्ञान और तज्जनित सामाजिक प्रभावों की जानकारी ही विज्ञान गल्प का उद्देश्य है । किसी परलोक वासी (एलिएन) और मानव की "वर्ण संकर" संतति पाठक को रोमांचित तो कर सकती है पर वह विज्ञान का गलत पाठ पढ़ायेगी । क्योंकि आनुवंशकीय विज्ञान की दृष्टि में यह असंभव है । देवर्षि नारद की गति से ब्रह्माण्ड भ्रमण भी असंभव है । आइन्स्टीन का सापेक्षता सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि प्रकाश की गति से तेज नहीं चला जा सकता और इस तरह करीबी तारों तक भी पहुँचने में वर्षों-वर्षों का समय लगेगा । बहुत से लेखक इस तथ्य की अनदेखी कर जाते हैं–कुछ तो लापरवाही के चलते (जैसे हम और आप और गाहे बगाहे आजिमोव भी) और बहुतेरे लेखक अज्ञानतावश), हमारे आपके सिवा दूसरी लिक्खाड़ प्रतिभायें भी तो हैं) पर दोषी कौन अधिक है ? हम, आप या वे ?

ये तो सिर्फ कुछ उदाहरण हैं। ऐसे ढेर सारे "विषय" हैं या हो सकते हैं जो अवैज्ञानिक हैं, जिन्हें विज्ञान कथाओं में समेटना औचित्यपूर्ण नहीं है। और सबसे पहले बढ़कर जरूरी बात तो यह है कि विज्ञान कथाकार को सामान्य विज्ञान की मूलभूत जानकारियाँ तो होनी ही चाहिये, नहीं तो अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती।

भारतीय विज्ञान कथाकारों में सही और जेनुइन विज्ञान-तकनीकी कथानकों के उपासक बिरले ही हैं जो एक शुभ संकेत नहीं है। लाख टके का सवाल यह है कि क्या हम विज्ञान कथाओं के नाम पर फिर उसी तिलिस्म द्वार पर दस्तक देने को लालायित हैं? पुराणों में गहरे पैठ कर भविष्य दर्शन तो फिर भी ठीक है पर विज्ञान के रथ पर सवार होकर पुराणों की मायावी दुनिया में घुसपैठ कहाँ तक उचित है? मानव की उर्वर कल्पनाशीलता से उम्मीद आगे और आगे बढ़ते जाने की है।

□□
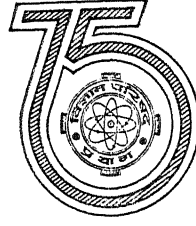
विज्ञान कथा लेखन : समस्याएँ व समाधान

आशुतोष मिश्र

विज्ञान कथाओं के विषय में इस सत्र में आज व्यापक चर्चा हुई है। मैं अपने आलेख के माध्यम से उन मुद्दों की चर्चा करना चाहूँगा, जो कि वास्तव में उठाए जाने चाहिए।

विज्ञान कथाएँ मैंने लिखी तो दो-एक ही हैं, परन्तु पढ़ी बहुत हैं। पहली बात तो यह देखनी है कि आप साइन्स फिक्शन या (विज्ञान-कथा) कहते किसे हैं। भारत में मुख्य समस्या तो यह है कि जो भी कथा जिसमें चार बार रोबोट शब्द का प्रयोग हो गया, या किसी ऐसे वायुयान का उल्लेख हो गया जो प्रकाश के दस गुना वेग से चलता हो, उसे यह कह दिया जाता है कि वह कथा साइन्स फिक्शन है। वास्तव में ऐसा नहीं है। विज्ञान कथा की वास्तविक परिभाषा इस प्रकार है—प्रसिद्ध लेखक ह्यूगो गर्न्सबैक ने 'अमेजिंग स्टोरीज' पत्रिका के सम्पादकीय में विज्ञान कथा के बारे में कहा था—

"A charming romance, intermingled with scientific facts and prophetic vision. Not only do these amazing tales make tremendously interesting reading, they are always instructive. They supply knowledge in a very palatable form. New inventions pictured in science fiction of today are not at all impossible of realization tomorrow." इस परिभाषा में पहली मुख्य बात है —"They are always instructive," और दूसरी "They supply knowledge in a very palatable form." ये दो बातें बहुत आवश्यक हैं—जिस विज्ञान कथा में ये दो बातें नहीं है, वह कथा विज्ञान कथा नहीं कहला सकती। विज्ञान का उद्देश्य मात्र पाठक को मनोरंजन देना नहीं है—मनोरंजन के लिए आप उपन्यास पढ़ सकते हैं। हर विज्ञान कथा का शैक्षिक महत्व होना चाहिए। एक दूसरी परिभाषा भी है

थियोडोरस्टजिअॅन की। यह परिभाषा इस ओर इंगित करती है कि विज्ञान कथा होनी कैसी चाहिए।

"एक विज्ञान कथा का ताना-बाना मनुष्य के चारों ओर बुना हुआ होता है, जिसमें मानव की समस्यायें और उनका निदान समाविष्ट होता है।" अतः विज्ञान कथा में किसी समस्या का होना आवश्यक है। यह नहीं कि आप लिखते गए, लिखते गए और कह दिया कि वह विज्ञान कथा है। फिर उस कथा का उद्देश्य होना भी आवश्यक है। यथा विज्ञान कथा में मानवीय समस्या और उस समस्या का समाधान, दो आवश्यक तत्व हैं। इस परिभाषा में आगे कहा गया है—"और एक ऐसा समाधार जिसका वैज्ञानिक विषय-वस्तु के अतिरिक्त कोई अस्तित्व ही नहीं है।" इसमें ध्यान देने की बात है 'वैज्ञानिक विषयवस्तु' की। सिर्फ विज्ञान का ऊपरी आवरण देने से विज्ञान कथा पूरी नहीं हो सकती।

अपनी वैज्ञानिक विषय-वस्तु की बदौलत विज्ञान कथा विशुद्ध विज्ञान के शोध कार्य को नवीन दिशा प्रदान कर सकती है। मैं एक उदाहरण आपके सामने रखना चाहूँगा, जिससे यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान कथा किस प्रकार भविष्य की नवीन संभावनाओं की ओर इंगित कर सकती है। बचपन में हम लोग फ्लैश गोर्डन की 'कॉमिक्स' पढ़ा करते थे—उसमें एक रॉकेट लगी बेल्ट होती थी, जिसे कमर से बांधकर मनुष्य उड़ सकता था। तब तो यह कोरी कल्पना ही प्रतीत होती थी, परन्तु आज हम जानते हैं, कि इस प्रकार की युक्ति का प्रयोग अंतरिक्ष शटल के अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा सफलतापूर्वक किया जा चुका है। यानी दस साल पहले की कल्पना आज साकार हो रही है।

एक अन्य बात जो अति आवश्यक है, वह यह कि विज्ञान कथा वे ही लिखें जिन्हें विज्ञान का अच्छा ज्ञान हो। वैज्ञानिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उदाहरणस्वरूप प्रकाश के वेग से दस गुना तेज चलने वाले यान की बात। यद्यपि यह सही है कि प्रकाश से तेज चलने वाले कण टेकियॉन होते हैं, परन्तु तथ्यों को तोड़कर अथवा आइंस्टीन के 'सापेक्षता सिद्धान्त' को नकारते हुए या कि द्रव्यमान को ऋणात्मक बनाकर हास्य कथा लिखने से क्या लाभ? इसलिए विज्ञान कथा लिखने से पहले विज्ञान का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। उदाहरणस्वरूप यदि पृथ्वी का व्यास 12000 कि० मी० है, तो वह उतना ही रहेगा ; 24000 कि० मी० के व्यास की पृथ्वी पर विज्ञान कथा लिखना बेवकूफी ही कही जायेगी।

इस संदर्भ में, मैं आपका ध्यान एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी की ओर आकर्षित करना चाहूँगा, जो कि 5—12 सितम्बर 1987 को मॉस्को में आयोजित हुई थी। उसमें मानव समस्याओं के सुलझाने में विज्ञान कथा लेखकों के योगदान पर चर्चा की गई। उस सम्मेलन में यह विचार उभर कर सामने आया कि मनोरंजन के माध्यम से कुछ ऐसी बातों पर विचार होना आवश्यक है जिससे सभी लाभान्वित हो सकें। ऐसी ही कुछ समस्यायें यहाँ रेखांकित की जा रही हैं—

(1) **परमाणविक नि:शस्त्रीकरण**

यह विषय आज उठाया जाना अत्यन्त आवश्यक है—किसी मनोरंजक कथा के माध्यम से पाठक को इस बात का हमें आभास दिलाना है कि यदि हम परमाणविक नि:शस्त्रीकरण पर ध्यान नहीं देते हैं, तो हमारा भविष्य कितने अन्धकार में जा सकता है।

(2) **पर्यावरणीय प्रदूषण**

इससे पहले कि हम अपने पर्यावरण को चौपट करके रख दें, यह आवश्यक है कि हर प्रकार के प्रदूषण पर रोक लगाने के संभावित उपायों की चर्चा की जाय।

(3) **विश्वव्यापी गरीबी और भुखमरी**

विश्व में आज इतनी भुखमरी व्याप्त है, असंख्य लोग इसके शिकार हैं, उसको दूर करने के लिए हमें कुछ करना होगा। आप हज़ारों कहानियाँ लिख जाइए, कोई पढ़नेवाला नहीं होगा तो आप लिखेंगें किसके लिए ?

और भी ऐसी ही अनेक समस्याएँ हैं, जिन पर आज विज्ञान कथाओं में विचार किया जाना चाहिए।

इस आलेख के लिए कुछ सूचनाएँ एकत्र करने की प्रक्रिया में मेरी नज़र अंग्रेजी की प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका '2001' ('साइन्स टुडे') के नवम्बर 1988 के अंक पर गई। वैसे तो इस पत्रिका में हर महीने एक विज्ञान कथा छपती है, पर ये विज्ञान कथायें स्तरीय नहीं कही जा सकतीं। नवम्बर 88 अंक की विज्ञान कथा का शीर्षक 'ट्वाइस अप ऑन ए टाइम' 'ए स्टेट ऑव द आर्ट टू-टाईमिग टेल' मैंने इस कथा को ध्यान से पढ़ा। फिर दो एक अन्य लोगों को भी पढ़ने के लिए दिया और पूछा कि आपको इसका क्या सार नज़र आ रहा है ? आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस पूरी कथा में विज्ञान तो है नहीं, पर प्रेम कथाओं के शब्दों की भरमार है। जैसे—लव एफेयर, वेडिंग, हनीमून, लव आदि। यह कथा विज्ञान कथा के नाम से छपी है। भारत में ऐसी विज्ञान कथायें न ही लिखी जाएँ तो अच्छा होगा, क्योंकि ऐसी विज्ञान कथाएँ जब "2001" जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपती हैं, तो वे एक उदाहरण पेश करती हैं। इससे नए लेखक यह समझने लगते हैं कि विज्ञान कथा लिखना बायें हाथ का खेल है। विज्ञान कथा के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण बात है शब्द-निर्माण की। विदेशी भाषाओं की विज्ञान कथा में नित नए शब्दों, रोबोट, ऐंड्रॉयड आदि, का प्रयोग खुलकर हुआ है, परन्तु भारतीय लेखकों की क्या इतनी भी कल्पना-शक्ति नहीं है। क्या वे उन्हीं पुरानी घिसी–पिटी विदेशी कल्पनाओं के पीछे भागना चाहते हैं ? पिछले 70 सालों में क्या भारतीय विज्ञान कथाओं में सराहनीय नवीनता आई ? बिल्कुल नहीं ! आज आवश्यक है कि हम विज्ञान कथाओं में साहित्य और विज्ञान दोनों का उचित मूल्यांकन करें। आवश्यकता है परिश्रम की, लगन की, पुरुषार्थ की तभी हम स्तरीय विज्ञान कथायें लिखने में समर्थ हो सकते हैं।

□□

विज्ञान-कथा विवेचन

मंजुलिका लक्ष्मी

विज्ञान कथाओं की बढ़ती हुई लोकप्रियता और बढ़ते प्रकाशन दोनों को देखते हुए उनके महत्व, प्रासंगिकता और स्वीकार्य स्वरूप का समय-समय पर आकलन आवश्यक हो जाता है। आज विज्ञान कथाओं का सर्वोच्च महत्व इस बात में निहित है कि मानव-जाति के समक्ष चुनौती के रूप में खड़ी भयावह समस्याओं की पहचान कराने व उन पर विजय पाने की दिशा में यह दोहरी शक्ति वाला 'वैज्ञानिक-साहित्यिक' उपाय क्या सहायक भूमिका निभा सकता है? प्रगति और उससे जुड़े खतरों, विज्ञान और तकनीकी की असीम संभावनाओं, सभ्य मानवजाति के नैतिक मूल्यों आदि के परिप्रेक्ष्य में विज्ञान-कथा एक रोचक और विचारोत्तेजक माध्यम बन कर कैसे मानवजाति को आगाह करे, यह आज समूचे बुद्धिजीवी वर्ग के समक्ष एक ज्वलन्त प्रश्न है जो हमारी धरती और उसकी सभ्यता की सुरक्षा में रुचि रखता है।

विज्ञान-कथा के स्वरूप को परिभाषित करने के क्रम में बारंबार यह कहा गया कि फंतासी में लिपटा इनका मायावी स्वरूप परिभाषा की सीमा में निबद्ध करना कठिन है। तथापि यह कहा जा सकता है कि विज्ञान के तथ्य, भविष्य में झाँक सकने की दूरदर्शिता, उर्वर कल्पना और मानव से संबद्धता का रोचक संम्मिश्रण ही विज्ञान कथा का आधार है। वैज्ञानिक विश्वसनीयता ही इसकी रीढ़ है। यद्यपि कुछ विज्ञान-कथा के समीक्षकों ने इस मान्यता को व्यर्थ समझा है कि विज्ञान-कथा का सच्चे विज्ञान से कुछ भी लेना देना हो सकता है किन्तु इसे कदापि अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वैज्ञानिकता के अभाव में विज्ञान कथा प्राणरहित निर्जीव शरीर के समान है।

अपने विकास के क्रम में विज्ञान कथा ने क्रमशः एडवेंचर, अतिवैज्ञानिकता, सामाजिक प्रश्नों से प्रतिबद्धता और शैली की कलात्मकता के सोपानों पर चढ़कर अपनी यात्रा तय की है। किन्तु क्रमशः कहने का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि इनमें से कोई भी पड़ाव पीछे छूट चुका है। न्यूनाधिक हर काल की विशिष्टताएँ आज की विज्ञान-कथा में भी विद्यमान हैं।

विज्ञान-कथाओं की सर्वोपरि प्रतिश्रुति मनोरंजन के साथ-साथ पाठक वर्ग के वैचारिक क्षितिज और दृष्टिकोण को विस्तार देना है। मनोरंजन के साथ-साथ इसलिए क्योंकि मनोरंजन से विहीन होकर वह विज्ञान-कथा नहीं, वैज्ञानिक प्रबन्ध मात्र रह जायेंगे (यह एक अलग विषय है कि लेखों में भी पठनीयता के लिए रोचकता वांछनीय है)। चूँकि विज्ञान किसी देश-काल की परिधि में प्रतिबंधित न होकर सार्वभौम होता है अतः विज्ञान-कथाओं की सार्वभौमिकता भी स्वतः पुष्ट है। यह कथायें हमारे सारे विश्व को नियंत्रित करने वाले शाश्वत नियमों से परिचित कराती हैं। इसी सार्वभौमिकता के कारण विज्ञान-कथाओं की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो उठती है। उन पर मनुष्य जाति को अधिक मानवीय बनाने का गुरुतम उत्तरदायित्व आ पड़ता है।

विज्ञान-कथाओं का दूसरा बड़ा दायित्व मानवता पर मँडराती भयानक विभीषिकाओं से सतर्क करना है। न्यूक्लियर विस्फोट, वातावरण प्रदूषण, पारिस्थितिक असंतुलन, ऊर्जा भंडारों का क्षय, भुखमरी, अकाल और रोग जैसे अनेकानेक दृश्य-अदृश्य राक्षस हैं, जिनके चंगुल से मुक्ति दिलाने में विज्ञान-कथाओं की चेतावनी सार्थक सिद्ध हो सकती है। इन विज्ञान-कथाओं से ही समस्याओं की पहचान के बाद उनसे जूझने की प्राथमिकतायें भी निर्धारित की जा सकती हैं। इन बिशाल उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मनुष्य में एक नई चेतना, एक नये स्वस्थ वैचारिक धरातल की सृष्टि का कार्य यह विज्ञान-कथायें सफलतापूर्वक कर सकती हैं। इस दृष्टि से एक नई सोच का निर्माण आज की विज्ञान-कथाओं का सर्वप्रमुख लक्ष्य हो सकता है।

वास्तव में विज्ञान-कथायें भविष्य में झाँक कर भविष्य के ऐसे रंगीन अथवा धूसर चित्र प्रस्तुत करती हैं जो सामान्य पाठक से लेकर वैज्ञानिक और हमारे भाग्य-विधाता राजनीतिज्ञों तक सभी की संवेदनाओं को झकझोर सकें। साथ ही केवल भविष्य में झाँक कर अदृष्ट के संबंध में एक निश्चित भविष्यवाणी जैसी करना ही विज्ञान-कथाओं का अभिप्रेत नहीं है। यह स्मरणीय है कि इनका लक्ष्य भविष्यवाचक होना नहीं वरन् तार्किक पूर्वानुमान है। यह भविष्य के संबंध में ऐसे संभावित कल्पनाचित्र प्रस्तुत करती हैं जिनका आधार आज के विज्ञान के प्रचलित सिद्धान्त होते हैं अथवा विज्ञान की आने वाले कल की संभावित गति के अनुरूप होते हैं। इन संभावनाओं में कौन सी सर्वाधिक संभाव्य और यथार्थ के निकट है ? कौन सी समूचे विश्व को सर्व मंगल की दृष्टि से काम्य है ? कौन सी

हमें सभ्य, सुसंस्कृत और 'मानवीय' बनाये रख सकती है ? समय रहते इसका निर्णय ले सकने का अवसर प्रदान करती हैं यह विज्ञान कथायें। इसीलिए इनका महत्व भविष्य वक्ता (Predictor) के रूप में नहीं बल्कि भविष्यद्रष्टा (Visionary) के रूप में अधिक है। इन में अंकित की गई स्थितियों को भविष्यवाणी से अधिक आज की स्थिति की समीक्षा और चेतावनियों के रूप में लिए जाने में इनकी सार्थकता है। उदाहरणार्थ कार्सन रेशेल की पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' ने वातावरणीय ख़तरों से आगाह करने में युगान्तरकारी भूमिका निभाई और वातावरण पर हो रहे अत्याचार के प्रति उदासीन, सुप्त मस्तिष्कों को झकझोर कर रख दिया। इसी प्रकार हमारी आज की अनेक समस्याओं के हल के बीज विज्ञान-कथाओं की अति विशाल उर्वर कल्पना-भूमि में छिपे पड़े हैं। जनसंख्या की अधिकता से लड़ने के लिए अंतरिक्ष में स्थापित कृत्रिम मानव बस्तियों में मानवों का स्थानान्तरण, पर्यावरण की स्वच्छता बनाये रखने के लिए धरती के औद्योगिक कारखानों का अंतरिक्ष में संस्थापन, कच्चे माल के लिए पृथ्वी के चुकते भंडारों की जगह चन्द्रमा की धरती से प्राप्य संसाधनों का दोहन आदि ऐसी संभावनाएँ हैं, जिन्हें रेखांकित कर विज्ञान कथायें कल का सच बना सकती हैं।

विज्ञान-कथाओं का एक और प्रभावशाली पक्ष यह भी है कि आने वाले कल के संभावित परिणामों को आज सामने रखकर वे हमारे 'आज' को भी बुद्धिमत्तापूर्वक जीने लायक बनाने का कार्य करती हैं। युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता के विध्वंसक-भयावह परिणामों को दिखाकर वे अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में हमें और सहिष्णु बना सकती हैं और संभवतः संपूर्ण विश्वशान्ति और एक सुखी समाज ही सभी विज्ञान कथाओं का मूलमंत्र है। मानव तथा प्रकृति के संबंधों को सुधारना तो उनका प्रमुख कथ्य है ही।

एक उद्देश्यपूर्ण विज्ञान-कथा प्रत्यक्ष रूप से इस बात पर बल देती है कि हम इस पृथ्वी के स्वामी नहीं; केवल एक अवधि विशेष के लिए इसके भंडारों के उपभोक्ता हैं और हमें न तो नीति के स्तर पर न व्यवहार के स्तर पर इसकी नियामतों के साथ मनमाना व्यवहार करने का अधिकार प्राप्त है। इसे भविष्य की पीढ़ियों के लिए अधिक समृद्ध करके छोड़ना ही हमारा कर्तव्य है।

आज की विज्ञान-कथा युवा पाठक वर्ग की नैतिक और बौद्धिक शिक्षा का भी एक स्रोत हो सकती है क्योंकि आज की कोरी कल्पना और फंतासी को यथार्थ का जामा पहनाने का उत्तरदायित्व अंततः उन्हीं के कन्धों पर पड़ने वाला है। विज्ञान-कथायें उनकी कल्पना शक्ति को नये आयाम देकर उसे दीर्घगामी भी बनायेंगी और विस्तृत भी करेंगी, क्योंकि अद्यतन ज्ञान को अति रोचक बना कर प्रस्तुत करना केवल विज्ञान-कथाओं के बस की बात है।

मानव मन में एक सहज कौतूहल होता है यह जानने का कि मैं क्या हूँ ? मेरा कल कैसा होगा ? मानवजाति के लिए भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है ? और यदि आशंकायें हैं

तो उनको मार्ग से दूर करने के उपाय (यदि हों तो) क्या हो सकते हैं ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर विज्ञान-कथायें प्रदान कर सकती हैं; क्योंकि वैज्ञानिक और तकनीकी प्रत्ययों के साथ सामाजिक चेतना को गुंफित कर, मनुष्य को एक नये युग में प्रवेश की दिशा दे सके, यही तो विज्ञान-कथा की समूची यात्रा है। इन्हीं कारणों से आज के समाज को हमेशा से अधिक विज्ञान-कथा की आवश्यकता है। वे हमारी प्रगति को तो निस्संदेह प्रतिबिम्बित करती हैं, आज के विश्व और समाज की जटिलताओं की प्रतिच्छवि भी पेश करती हैं। इनकी उपेक्षा करना, इनके प्रति उदासीनता का भाव या इन्हें दूसरे दर्जे का साहित्य समझने की खतरनाक प्रवृत्ति से तो हम अपना परिप्रेक्ष्य ही खो बैठेंगे। इस तरह विज्ञान-कथायें नये युग, नये समाज, नये घटनाचक्रों के 'निर्माण' के साथ-साथ नई वैज्ञासिक मनोवृत्ति का भी सर्जन करती हैं।

इतना कुछ विज्ञान-कथाओं के कथ्य के विषय में। एक दूसरा विचारणीय तथ्य यह भी है कि इनका स्वरूप, संगठन कैसा हो ? जैसा कि पहले कहा जा चुका है विज्ञान-कथाओं की प्रभावोत्पादकता की पहली शर्त यह है कि वे रोचक और मनोरंजक हों। अन्यथा उनकी पठनीयता पर ही प्रश्नचिन्ह् लग जायेगा। फंतासी और यथार्थ का आवश्यक और सानुपातिक संयोजन विज्ञान-कथा की जान है। कल्पना की आकाश से भी ऊँची उड़ान वह केन्द्रक है जिसके चतुर्दिक कथा आकार पाती है। इसी कारण रक्तमज्जा से निर्मित जीवित मानव सदृश यथार्थ की सीमा छूने वाले पात्र, उनका विश्वसनीय चरित्रांकन, सुस्पष्ट विचार, वैचारिक और सामाजिक परिवेश की सामान्यता आदि के साथ उर्वर कल्पना की पृष्ठभूमि ही एक सफल विज्ञान-कथा को जन्म देती है। उनमें प्रदर्शित समस्यायें या संघर्ष सुदूर भविष्य को हानिरहित आशंका के स्थान पर आज और अभी की विभीषिका प्रतीत हों तभी कथा की प्रभावोत्पादकता सार्थक होगी।

विज्ञान के सिद्धान्तों की सही समझ का अभाव, कृत्रिम वैज्ञानिक शब्दजाल, कल्पनाशीलता की अनुपस्थिति, वैज्ञानिक अवधारणाओं संबंधी भ्रम और भाषा शैली की प्रभावहीनता विज्ञान कथा को निष्प्राण बना देती है। अतः इन सभी अंगों पर पूरी ईमानदारी से किया गया परिश्रम ही कथा की सार्थकता को पूरा और अपेक्षित विस्तार दे सकता है।

साहित्य की अन्य विधाओं से विज्ञान-कथा में कुछ अन्तर है। अन्य स्थापित विधाओं में उनके अच्छे बुरे के मूल्यांकन करने के मानदंड हैं, समीक्षक हैं। पर अपेक्षाकृत नई होने के कारण विज्ञान-कथाओं के प्रति या तो गहरा उत्साह है या गहरी उपेक्षा। दोनों ही स्थितियाँ अवांछित हैं, असंतुलन दर्शाती हैं और विचारहीन लेखन को प्रश्रय देती हैं।

पारंपरिक से विरोधाभास, अतिरंजना और अतिशयोक्ति, असंभव से प्रतीत होने वाले संभाव्य पूर्वानुमान विज्ञान-कथा के भवन के प्रमुख स्तम्भ हैं, और फंतासी इस भवन में किया गया रंग-रोगन। फंतासी इनका साध्य नहीं है। एडवेंचर, अंतरिक्ष यात्रायें, अन्यान्य ग्रहों के अद्भुत जीव, काल यंत्र में भविष्य या भूल की यात्रा आदि विज्ञान-कथाओं की पारंपरिक विषयवस्तुएँ रही हैं। आज की विज्ञान-कथायें सही अर्थों में विज्ञान और सामाजिक चेतना के प्रभुत्व से नियंत्रित होती हैं। इसीलिए आज न्यूक्लिर विस्फोट न्यूक्लियर शीत, ओज़ोन छतरी में छिद्र, वातावरण से बलात्कार, परखनली प्रजनन और मनुष्य के प्रतिरूप का निर्माण जैसे विज्ञान के नवीनतम चर्चित विषयों की प्रमुखता है। एक सूक्ष्म अन्तर यह भी आया है कि विज्ञान के भौतिक नियमों की अपेक्षा अब जैविक विज्ञान के सिद्धान्तों पर अधिक बल है।

इस नई विधा के सिद्धान्तों, संयोजन, सार और विशिष्टताओं के संबंध में अभी वहुत अध्ययन-विवेचत की आवश्यकता है। किंतु इन मूलाधारों पर मतभेद होते हुए भी एक बात सर्वमान्य है कि मानव ही साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति विज्ञान-कथाओं का भी मुख्य विषय और मुख्य उद्देश्य है। सारे सैद्धान्तिक प्रतिपादनों के बावजूद विज्ञान-कथा मानवीय समस्याओं और संवेदनाओं को केन्द्र में रख कर चले तभी जीवित रह सकती है। इनके द्वारा आधुनिक युग के मानव उसकी इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं और समस्याओं की संतुलित समीक्षा की जा सकती है। आज की यह विज्ञान-कथा मनुष्य और विश्व के भाग्य को पहचानने व सुधारने का एक कलात्मक और सशक्त उपाय सिद्ध हो सकती है।

□□

बंगाल का विज्ञान कथा साहित्य : विहंगावलोकन

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

हिन्दी भाषी क्षेत्र के पाठकों का बंगला साहित्य से परिचय सामान्यतः अनुवाद के माध्यम से ही हुआ करता है। बंगाल की 'शस्य श्यामला' भूमि में जैसे साहित्य की अन्य सब विधायें खूब पुष्ट और समृद्ध हुई हैं, उस प्रभाव से विज्ञान कथा क्षेत्र भी अप्रभावित नहीं रहा है। मुख्य रूप से विज्ञान कथाओं के लेखन में गति स्वतन्त्रता के बाद के काल में आई। अन्य भाषाओं की भाँति विज्ञान कथाओं के प्रारम्भिक युग पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके पीछे एक ठोस कारण था ; चूँकि भारत में विदेशी प्रभाव के कारण विज्ञान ही आयातित था और आज भी किसी सीमा तक विज्ञान और तकनीकी हम पश्चिम से ही आयात करके प्रयोग में ला रहे हैं अतः स्वाभाविक था कि उससे जुड़े विज्ञान कथा लेखन में भी विदेशीपन हो।

कुछ समय पश्चात् जब विज्ञान कथायें अपने लिए बंगाल के प्रबुद्ध पाठक-वर्ग में अपना एक स्थान बना सकीं, तो प्रारम्भिक लेखन मुख्यतया बाल पाठकों को ध्यान में रखकर उन्हीं के इर्द-गिर्द बुना गया।

बँगला विज्ञान कथा साहित्य की प्रथम कथा डॉ० सर जगदीश चन्द्र बोस द्वारा रची गई मानी जाती है। 1897 ई० में लिखी गई 'तूफान पर विजय' नामक इस कथा में एक शीशी केश तेल द्वारा समुद्र में आये चक्रवात को शांत करने के प्रयास का रोचक वर्णन है। इसमें विज्ञान कथा के उपयुक्त जो सबसे बड़ी विशिष्टता पाई जाती है वह यह कि यह वैज्ञानिक तर्कों के आधार पर एक असंभाव्य, अलौकिक सी लगने वाली घटना को व्याख्यायित करने का प्रयास करती है।

इस क्षेत्र के अग्रग्रामियों में सत्यजित राय का नाम एक विशेष स्थान रखता है। उनके द्वारा निर्मित प्रो० शंकु के चरित्र ने वहाँ बालकों के बीच अतीव लोकप्रियता प्राप्त की। धीरे-धीरे बालकों का यह प्रिय चरित्र बड़ों के हृदय में भी घर करने लगा। इन कथाओं में विज्ञान तो है पर कल्पना का पुट कुछ अधिक ही है। उनकी कथाओं में फंतासी का तत्व प्रमुख है। कहीं-कहीं ऐसी स्थितियों की सृष्टि की गई है, जिसमें पूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है फिर भी कुछ सूक्ष्म तार्किक संकेत ऐसे हैं जो पाठक को संतुष्टि भी देते हैं और विचारोत्तेजना भी। बंगला विज्ञान कथाओं के क्षेत्र में कुछ बहुत रोचक और प्रभावशाली कथाओं के लेखन का श्रेय सत्यजित राय को जाता है। एक जीवभक्षी पौधे की कथा 'सैप्टोपस' और एक विस्थापित ग्रह की कथा 'विचित्र मण्डल' बहुत सराही गई।

सत्यजित राय की उत्तरार्द्ध वाली विज्ञान कथाओं पर सस्ती और निम्नस्तरीय होने का आरोप लगाया जाता है। उनकी परवर्ती काल की कथाओं में विज्ञान और फंतासी के स्थान पर साहसिकता और रोमांचवाली एडवेंचर कथाओं ने अधिकार जमा लिया। अन्त में अनेक कथायें केवल रहस्य रोमांच की कथायें होकर रह गईं।

सत्यजित राय के पूर्व ही, जैसा कि अक्सर नई साहित्यिक विधा के पैर जमाने के समय होता है, मौलिक सृजन की अपेक्षा बंगाल में अनूदित विज्ञान कथाओं की बाढ़ सी आई। 'आर्थर कानन डायल' और 'जूल्स वर्न के अनुकरण पर भी अनेक कथायें लिखी गईं और इनके अनुवाद भी हुये।

आगे चलकर 'फैंटास्टिक' नामक पत्रिका द्वारा विज्ञान कथाओं के स्वतन्त्र और मौलिक लेखन को खूब प्रश्रय मिला। सम्पादक 'अदृश्यवर्धन' द्वारा यह बंगला विज्ञान कथा की दिशा में पहला 'गंभीर' और 'ईमानदार' प्रयास था। इसमें प्रकाशित कथाओं में अजनबी ग्रह के वासियों की पृथ्वी यात्रा, अंतरिक्ष की उड़ान, यन्त्र मानव और मनुष्य के जीवित प्रतिरूपों जैसे विज्ञान के अति चर्चित, महत्वपूर्ण और नवीनतम विषयों को स्थान प्राप्त हुआ। वर्तमान विज्ञान कथा के सभी सम्मानित हस्ताक्षरों—क्षितीन्द्र नारायन भट्टाचार्य, एनाक्षी चट्टोपाध्याय, नारायण सान्याल, निरंजन सिनहा, रोनेन घोष, और समरजीत कार की रजनायें इस पत्रिका में प्रकाशित होती रही हैं। कथावस्तु की दृष्टि से इन कथाओं में वैज्ञानिक उड़ानें नये-नये क्षितिजों को छूने वाली हैं, किन्तु अक्सर शैली और कलात्मकता की दृष्टि से ये कुछ कमज़ोर सिद्ध होती हैं।

वर्तमान विज्ञान कथा लेखकों में समरजीत कार का नाम पर्याप्त तीव्रता से लिखने वालों में लिया जा सकता है। किन्तु उनकी रचनाओं में भी अकसर विज्ञान का तत्व बहुत अस्पष्ट सा हुआ करता है। उदाहरण के लिए एक कथा में अंटार्कटिका के यात्री दल पर कुछ ऐसे 'ब्रह्माण्ड कणों' की वर्षा होती है, जो उन्हें पागल बना देती है। इस असाधारण घटनाक्रम की कोई तार्किक वैज्ञानिक व्याख्या या इंगित कहीं कथा में नहीं मिलता। स्वाभाविक है कि ऐसी विज्ञान कथायें निष्प्रभावी सिद्ध होती हैं।

'फैंटास्टिक' पत्रिका के संपादक अदृश्य बर्धन ने स्वयं भी कुछ अत्यन्त स्तरीय विज्ञान कथाओं की रचना की है। उनकी विज्ञान कथाओं का केन्द्रीय चरित्र 'प्रो० नट बोल्टू भोकरो' नामक एक काल्पनिक पात्र है। सामान्यतया डैनिकेन के सिद्धान्तों के आधार पर उनकी कहानियाँ बुनी गई हैं। मानिक बन्दोपाध्याय नामक एक अन्य लेखक की विज्ञान कथा में कालयन्त्र द्वारा भविष्य में यात्रा कर मानव जाति को काल्पनिक आदर्श-लोक में पहुँचा दिखाया गया है। वस्तुतः बंगला विज्ञान कथाओं में कालयन्त्र और काल्पनिक आदर्श लोक के चित्रण की प्रवृत्ति बहुत रही है।

आज बंगला में विज्ञान कथायें लिखी तो भारी संख्या में जा रही हैं, किन्तु अधिकांश या तो बालोपयोगी हैं या स्तरीय नहीं हैं। अधिकतर लेखन किसी अन्य भाषा की विज्ञान कथा का अनुवाद है या उसके अनुकरण पर आधारित है।

ऐसी स्थिति में वर्तमान का बड़ा सुनहरा और संतोषजनक चित्र तो सामने नहीं आता, पर बंगाल की भूमि में साहित्य की और नवीनता को आत्मसात करने की जो अटूट परम्परा रही है, उसे देखते हुए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बंगला भाषा में विज्ञान कथाओं का भविष्य उज्जवल है।

□□

विज्ञान कथा लेखन का प्रशिक्षण आवश्यक

प्रो० डी० एन० सिनहा

आज जब हम अपने चारों ओर देखते हैं तो ऐसा लगता है हम एक ऐसे ग्रह में रह रहे हैं जिसके चारों ओर समस्यायें ही समस्यायें हैं। पिछले अनेक वर्षों से हम 'जनसंख्या-विस्फोट' और 'भुखमरी' जैसी समस्याओं से जूझते रहे हैं। बाद में हमें 'प्राकृतिक सम्पदाओं के छीजने' और 'पर्यावरण प्रदूषण' की जुड़वाँ समस्या का सामना करना पड़ा। समस्यायें कम नहीं हुईं और नईं समस्यायें विकराल रूप रखकर सामने आ गईं। नाभकीय विश्व युद्ध की विभीषिका दैत्याकार रूप में सामने खड़ी है। यदि नाभिकीय युद्ध हुआ तो पृथ्वी के समस्त जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों का विनाश हो जायगा। साक्षात प्रलय।

यदि थोड़ी देर के लिए हम यह मान लें कि मनुष्य का विवेक उसे नाभिकीय युद्ध से अवश्य ही रोकेगा, तो भी आज दो ऐसी पर्यावरणीय समस्यायें हैं जिनसे इस धरती के समस्त जीवधारियों को न केवल खतरा है बल्कि उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

पहली समस्यायें है ईंधन-लकड़ी या कोयले के दहन से वातावरण में कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस की बढ़ती हुई मात्रा। इससे धरती गर्म हो रही है। ऐसा अनुमान है कि इस शताब्दी के अंत तक ताप 1.5° सेन्टीग्रेड से बढ़कर 4.0° सेन्टीग्रेड हो जायेगा। इससे उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की बर्फ पिघल जायेगी और समुद्र के जल का स्तर इतना ऊँचा हो जायेगा कि समुद्रतटीय क्षेत्र जलमग्न हो जायेंगे और इसी के साथ उन भूखण्डों की जैव-सम्पदा पानी में डूब जायेगी।

दूसरी बड़ी समस्या है अंटार्कटिका के ऊपर के आसमान में ओज़ोन की छतरी में छेद । यह हम सभी जानते हैं कि ओज़ोन की पर्त धरती के जीवों की रक्षा घातक अंतरिक्षीय किरणों से करती है । पर क्लोरोफ्लूरो कार्बन के लगातार वातावरण में पहुंचने से ओज़ोन की चादर झीनी होती जा रही है और यदि इसी गति से क्लोरोफ्लूरोकार्बन मुक्त होकर वातावरण में मिलते रहे तो ओज़ोन की चादर घातक अंतरिक्षीय किरणों को रोक पाने में सर्वथा अशक्त होगी । परिणाम यह होगा कि पराबैंगनी किरणें धरती पर प्रवेश कर जायेंगी । इससे चमड़ी का कैंसर आम बात होगी । वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं पर प्रभाव घातक होगा ।

अतएव इस गोष्ठी के माध्यम से मेरा विवेदन है कि आज की इन दो पर्यावरणीय चर्चित समस्याओं से जूझने के लिए हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में लोकप्रिय लेखन को बढ़ावा दिया जाए । ताकि समय रहते हम सावधान हो जायें ।

अच्छा तो यह होगा कि इन दो वर्तमान समस्याओं के ताने-बाने से रोचक विज्ञान कथाओं की सर्जना की जाये । मेरा यह निश्चित मत है कि विज्ञान कथा विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए सर्वाधिक सशक्त माध्यम है । अतएव हमें चाहिए कि हम विज्ञान साहित्य की इस विधा का भरपूर उपयोग करते हुए इन समस्याओं से निपटने का संकल्प लें । इसके लिए अमेरिका और रूस की भाँति हमें भी विज्ञान कथा लेखन को भारतीय विश्वविद्यालयों में एक अलग विषय के रूप में विकसित करना चाहिए । विज्ञान कथा लेखन का विधिवत प्रशिक्षण होना चाहिए । विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए तो विज्ञान कथा लेखन विश्वविद्यालय स्तर पर एक अनिवार्य विषय होना चाहिए । जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक आम लोगों तक विज्ञान को पहुँचा सकना अत्यन्त दुष्कर कार्य होगा ।

इस गोष्ठी में विश्वविद्यालय के अध्यापक और सरकारी अधिकारी भी हैं । अतएव इस गोष्ठी के माध्यम से मैं शिक्षाविदों से निवेदन करूँगा कि वे विश्वविद्यालयों में विज्ञान कथा लेखन का विधिवत प्रशिक्षण अविलम्ब प्रारंभ करायें ।

प्रशिक्षण के लिए प्रारंभ में 'आइजक आसिमोव' और 'आर्थर सी० क्लार्क' सरीखे चोटी के विद्वानों की सेवायें छोट-छोटी अवधियों के लिए ली जा सकती हैं ।

□□

विज्ञान में भाषा का महत्व

चन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव

आज दुनिया विज्ञान की बुनियाद पर खड़ी है। अहम सवाल यह है कि क्या सभी लोग विज्ञान की आम बातों को जानते हैं, समझते हैं ? अपने देश के संदर्भ में यह निर्विवाद सत्य है कि अधिकांश लोग, विशेष रूप से गाँवों में रहने वाले लोग, कृषि संबंधी वैज्ञानिक बातों कों समझ नहीं पाते और इसी कारण विज्ञान का समुचित लाभ पाने से वंचित रह जाते हैं। विज्ञान को न समझ पाने का मुख्य कारण है भाषा। किसी विद्वान ने कहा है, "जब तक विज्ञान को अपनी भाषा के माध्यम से नहीं जानेंगे, तब तक न तो उसे ठीक तरह से समझ ही सकेंगे और न ही उसका पूरा लाभ उठा सकेंगे।"

विज्ञान का विद्यार्थी जितना समय और श्रम भाषा को समझने में लगाता है, लगभग उतना ही समय और परिश्रम उसे विज्ञान के विभिन्न विषयों को समझने में लगाना पड़ता है। किन्तु यदि विज्ञान के उसी ज्ञान को विद्यार्थी की अपनी मातृभाषा के माध्यम से दिया जाये तो उसे समझने में आसानी होती है। यही बात गाँवों में रहने वाले लोगों, विशेष रूप से कृषकों, पर भी लागू होती है।

आज भी देश के करोड़ों किसान आधुनिक तकनीकी का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। इसका मूल कारण यह है कि उन्हें उनकी अपनी भाषा में वैज्ञानिक उपलब्धियों का ज्ञान नहीं कराया जाता। उदाहरण के लिए यदि हम कीटनाशी रसायनों के प्रयोगों को देखें तो ज्ञात होता है कि आवश्यकता से कम या अधिक मात्रा में किसान कीटनाशी का प्रयोग करता है अथवा असावधानीवश खाने-पीने की चीजों के साथ मिल जाने से अपने जीवन से हाथ धो बैठता है। एक सहज सा प्रश्न उठता है कि क्या इसके लिए भाषा दोषी है ? ऐसा

लगता है कि जो बातें उसे बतायी या समझाई जाती हैं, वह किसान की अपनी भाषा में संभवतः न होने से उसे वह समझ नहीं पाता। उपयुक्त भाषा के प्रयोग की कमी हमारे विज्ञान की बुनियाद को मज़बूत नहीं होने देती है।

अतएव राष्ट्र के सजग प्रहरियों से मेरा विनम्र निवेदन है कि बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं में विकसित की गई वैज्ञानिक विधियों को कृषकों के लाभार्थ, कृषि के लाभार्थ, देश की प्रगति के लिए, सरल एवं क्षेत्रीय भाषा में, हिन्दी भाषा में ग्रामीणों तक पहुँचाया जाये। इसी में देश का कल्याण है। □□

प्रकाशन एवं अन्य माध्यमों द्वारा विज्ञान का लोकप्रियकरण

प्रो० सी० डी० पाटिल

प्रस्तुत आलेख में लेखक ने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए, जन-जन तक पहुँचाने के लिए, प्रकाशन एवं अन्य माध्यमों की विस्तार से चर्चा की है। प्रारम्भ में लेखक ने गेलीलियो और हार्वे का उल्लेख करते हुए विज्ञान के इतिहास और प्रगति पर प्रकाश डाला है।

लेखक के अनुसार विज्ञान जन-जन में इस कारण लोकप्रिय न हो सका क्योंकि जो भी पुस्तकें उपलब्ध थीं वे अंग्रेजी भाषा में थीं। इस कारण एक प्रकार का 'कम्यूनिकेशन गैप' था। 1960 के बाद विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए क्षेत्रीय भाषाओं की महत्ता स्वीकार की जाने लगी।

लेखक ने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय बताये हैं—

1. क्षेत्रीय भाषाओं में विज्ञान की लोकप्रिय पत्रिकाओं और विज्ञान की शोध पत्रिकाओं के प्रकाशन द्वारा।
2. विज्ञान प्रदर्शनियों द्वारा जिनमें विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी हो।
3. किसानों के लिए कार्यशालाओं के आयोजनों द्वारा।
4. विज्ञान संग्रहालय, विज्ञान क्लब, जिला विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से।
5. विशिष्ट वैज्ञानिकों और विज्ञान अध्यापकों के व्याख्यानों द्वारा।
6. रेडियो कार्यक्रमों और टी० वी० फिल्मों के माध्यम से, जो निश्चय ही अधिक प्रभाव छोड़ते हैं।

Popularization of Science through Publication and other Media

Prof. C. D. Patil

Before we take an overview of various ways and means of propagating science—of actually taking Science to the Common man—I feel it is necessary for us to trace the origin and development of Science.

Although we are living in an age of Sciencc, one thing is elear and that is that Science did not spring from the mind of man as a full-blown idea. Rather it grew bit by bit out of man's creative intellect. And its progress or lack of it, followed the cultural development of man himself. And so the history of Science is the history of man exploring and struggling with his environment. It all started with his curiosity to know, —to ask why—to understand and explain a phenomenon. This led him from place to place, from one thing to the other and from one person to another. These early scientists had to combat rather unsuccessfully, superstition and theology of their times. Galileo was made to swear against his discovery of new stars. Harvey did not dare say 'The human body is a machine'.

The method followed by those scientists was just an attempt to express the mode of working of the humnn mind. They tried to analyse and find reason for every phenomenon in a precise and exact manner. Their success in finding answers and explanations, has brought about enormous material progress to the present day world. When we look

into the progress achieved in the field of Industry, Medicine, Agriculture, Transport, Education and even warfare, we are simply awed by the unbelievable sea-change-development that has been possible because of science. At the same time science has helped in bringing closer distant countries not just by means of transport facilities, but also through trade and commerce.

The emergence of democracies has been an important factor in the cause of development of science. There is enormous scope for scientific study, research and free and frank exchange of views on any topic. Had there been some Hitlers, I am afraid, Scientific development would have been equated with only bombs and warfare. No constructive development would have been possible on this earth. Interplanetary communication, conquest of space or landing on the moon would not have been a reality.

Thanks to the democratic spirit and the democrats guiding and patronising us, it has been possible to achieve and excel. In Science the old and the less accurate ideas are replaced by new ones. And it is through this process that science builds, refines and moves towards an even greater and better understanding of the world. Of course, there is bound to be one error at some stage. But this error or failure will not deter the scientists from pursuit. On the other hand these errors or failures are taken as a challenge by the scientists as they prompt them for new adventures which prove to be not only profitable to humanity but also thrilling and exciting experiences for the scientists.

With this background let us divert our attention towards taking science to the masses. It is an accepted fact that science education in our country has been confined to laboratories and class-rooms. It is yet to reach the masses. No doubt, research is the backbone of science. Without it science would be a stagnant body of facts, empty of significance. But when we talk of popularisation of science, we have to take into consideration the common man and his needs.

With the advent of freedom, we gave priority to industry, agriculture and ofcourse education. But it took decades for planners and educationists to realise the need for popularisation of science among the masses. Providing medicine to the patient, impliments to the farmer, laying roads leading to cities alone is not enough. What is required to day is an awareness—a scientific temper, an attitude. Propagation of

scientific temper and stressing the supremacy of reasons are very important, specially in our country, which is being plagued, with a number of problems arising out of irrationality. We have to make the farmer realise and understand the utility of Fertilizers, the need for hygiene. He must be made to realise the dangers posed by the felling of trees, the pollution problem and also the harmful effects of bacteria. Our country is steeped in superstitions. One of the greatest miracles of this century is the co-existence of science and superstition. Although we love modern technology, yet our thinking continues to be primitive. Even among the clite group we come across people who consider eclipses a religious phenomenon rather than a scientific one. While every one likes to have the fruits of science, very few think in terms of scientific temper. Consequently blind beliefs, fundamentalism and obscurantism have been polluting our society. It is here we need proper education. We have to make people realise the facts. We have to make them shed their age-old superstitions which are deep rooted. I know this is an uphill task. But I must add here, that the time has come to make a beginning on a war footing in this direction. Every scientist and science teacher must treat this crusade as a social commitment. The following lines of the chinese philosopher Quantz, are worth quoting in this context.

> If you are planning for a year, grow food. If you are planning for a century, grow trees. If you are planning for life, provide good education.

Popularisation of science among the masses was not possible because of medium/linguistic problem. Since science books were available only in English there was communication gap. Only the educated had the benifit of science. The need for popularisation of science in regional languages was felt in the early seventies and since then some progress has been possible in communicating with the masses.

Let us take a look at the ways and means of communicating with the masses in order to create awareness.

1. Through popular science articles (in regional languages), in science journals and popular journals. These articles should be informative and must be in simple language. These articles should never be too technical and scholarly.

2. Through science exhibitions in schools and colleges with special emphasis on the progress made by our country in the field of science and

technology. The teacher and students must be involved actively in these exhibitions. The students must perform and explain the experiments like Blood test, Mathematical puzzles, Human physiology etc., N. C. C. and N. S. S. students must undergo training in First Aid, Traffic Signalling etc.,

3. Work-shops for farmers-(i) use of Fertilizers-(ii) use of Pesticides, (iii) Use of Good Seeds, (iv) Soil test. The Government agencies have been doing useful work in this direction.

4, Science Museums, District Science Centres, Science Clubs/Associations—the branches of NCERT-are promoting the cause of science by arranging exhibitions, Film Shows, Seminars and special Lectures by emiinent scientists.

5. Films, and T. V. shows have been of immense help in the propagation.

Here comes the role of institutions.

(1) Vikram Sarabhai Community Science Centre, Ahemadabad

(2) Kerala Shastra Parishad

(3) Pendicherry Science Forum

(4) Tamil Nadu Science Forum

(5) Eklavya Group of Bhopal

(6) Bangalore Science Forum

(7) Karnataka Rajya Vijnan Parishad, Bangalore.

These are some of the institutions established with the sole aim of not only popularising science in regional languages, but also in taking science to the masses. These institutions have been playing a pioneering role in evolving the scientific temper.

1. The Vikram Sarabhai Community Science Centre, could be called a mini-science world. Here the students-ranging from primary school to college level—are free to perform experiments, find solutions to puzzles etc. Its 'Do it yourself' experiments (both in English and Gujrati) are very popular with the students. This centre is a model for one and all.

2. The Pondicherry Science Forum formed in 1985 has to its credit 14 publications (both in Tamil and English). The Karntaka Rajya Vijnan

Parishad, formed in 1980, with the aim of popularising science among the masses, has to its credit 32 booklets (on different topics in Kannada). It has been conducting work-shops for popular science writers and science teachers. The monthly magazine 'Bala Vijnan' (Science for Children) started in 1978 (about 20,000 copies every month) and the wall paper 'Vijnan Deepa' (Science light) started in 1983 have been very popular with the student community. This vijnan parishad has more than 150 science units in almost all the district head quarters and in many of the villages of Karnataka. It has already conducted 3 conferences. The exhibition arranged in Tumkur last year had attracted more than 30,000 students and 10,000 elderly people. It is for its zealous efforts to popularise science, that the K. R. V. P. was awarded a prize of Rs. 1 Lakh and a bronze medal this year. This appreciation and honour is for all of us engaged in this endeavour. Under the auspices of K. R.V. P. science centres at Belgaum and Mysore were started on the model of Vikram Sarabhai Community Science Centre. These centres have been conducting work-shops, summer programmes etc., for the primary school teachers and students of the area. The K. R.V.P. has been arranging work-shops on making and using Telescopes. The K. R. V. P. has purchased 5 mobile planetaria from Japan. They are used for observation at various units.

It has been my good fortune to be associated with this organisation as a secretary of the Raichur Dist. Unit. We have been conducting literary competitions for high school students. Workshops on Rocket making and launching have been arranged by us in different parts of the state. And more than 10,000 students have participated in it. Besides these, we have been arranging lectures by eminent scientists on pollution, environment etc., and also conducting training camps in First Aid, Blood test for the high school and College students. 'Electricity and electricial connection for housewives programme' was a success. The women were taught to deal with electrical connection like putting a bulb in the holder, putting fuse wire etc., Workshops on study of enviroment model making with cheap materials, using science kits, study of planets have been arranged by us. We conducted inter-collegiate popular science Elocution competitions. I am happy to announce that our University (Gulbarga University) students won the first prizes in both Physical Science and Biological Soience competitions. Tree plantation in different parts of the city is on our list.

There is one important duty to be performed by all the volunteers of these institutions. Population Education. While educating them about science we should also speak to them about the population problem. Since the poor and the illiterate class are ignorant and superstitious, we must throw light on this problem and make them realise the need for a small and happy family, how a small family can live happily within its limited income, how small families are healthy families etc., Indirectly we should introduce them to the need of Nutrition, cleanliness etc.,

The villagers too are responding and are coming forward to know and understand. Today's villager, however backward he—be, knows that he should seek the advice of a doctor and not the astrologer or palmist for his ailments. He would take his animal to a veterinary hospital for artificial insemination. He would rush to the department concerned for financial help.

Thus efforts of popularisation of science is gaining ground every where. This is a good sign and will encourage us to work harder. One of the fundamental duties of citizens enshrined in the Indian Constitution makes it mandatory on the part of all citizens to develop scientific temper, humaniusm, spirit of inquiry and reform. As educated persons and more so as scientists and science teachers, it is our duty to work honestly and conscientiously for the popularisation of science. Science has a value and it should not become a mere profession. It should be a mission and a way of life.

□□
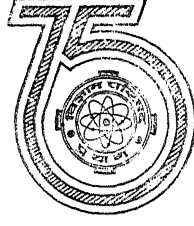
तेलुगु में विज्ञान का प्रचार-प्रसार

वसंतराव वेंकटराव

लेखक ने प्रस्तुत आलेख के माध्यम से उन कठिनाइयों अथवा कारणों पर प्रकाश डाला है जिनके कारण विज्ञान का प्रचार-प्रसार, विशेष रूप से तेलुगु भाषा के माध्यम से, प्रभावी नहीं हो सका । अनेक कारणों में अर्थाभाव, उच्च स्तर के वैज्ञानिकों और विज्ञान लेखकों की विज्ञान की रचनाधर्मिता में रुचि न लेना हैं ।

फिर भी लेखक का ऐसा मानना है कि देश में ऐसी सरकारी और गैरसरकारी विज्ञान संस्थायें और समितियाँ हैं, जो विज्ञान को आम आदमी के द्वार तक ले जाने का प्रशंसनीय कार्य सम्पादित कर रही हैं । इनमें केन्द्र सरकार की एन० सी० ई० आर० टी०, तेलुगु भाषा समिति, तेलुगु अकादमी, आंध्र प्रदेश की विज्ञान अकादमी, आंध्र विश्व-विद्यालय, मद्रास विश्वविद्यालय के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं जो विज्ञान लेखन पर बल दे रहे हैं । पिछले कुछ वर्षों से 'विज्ञानम', 'आधुनिक विज्ञानम', 'विज्ञान स्रावन्ती' जैसी पत्रिकायें फल-फूल रही हैं ।

प्रस्तुत आलेख में इन सभी पहलुओं की चर्चा की गई है ।

Popularization of Science Through Telugu

Vasantha Rao Venkata Rao

Popularization of Science in Indian languages in general, and Telugu in particular, has not proved very effective. Experiment, observation and consolidation of results with the help of mathematics are essential for the progress and understanding of Science. It is only working scientists who are capable of conveying the scientific concepts to the layman in simple language without sacrificing accuracy and precision. Popularization of science in Indian languages in an art of considerable subtlety. In the west we find great scientists producing books on science for the common man. This has been in vogue during the last three centuries.

In the middle of the last century the three Universities of Bombay, Calcutta and Madras were established, and since then Science was taken up seriously. Colleges were affiliated to the Universities. In course of time National Laboratories and Institutes came into existence. English being the lingua franca, it took long to develop regional languages for spreading scientific information and concepts among the language groups. Yet, the efforts made by some individuals in the last century will be discussed later.

The first ever organisation to express scientific ideas in Telugu was the *Vijnana Chandrika Grantha Mandali* organised by a group of people headed by Kumarrain Verikata Lakshmana Rao. It was setup in 1906. It got published books on History, Biography, Physics, Chemistry, Biology,

Geology and Agriculture. By 1916 about 30 books were published Unfortunately it could not survive for more than a decade. Efforts were made to revive it once in 1924 and again in 1948 and ultimately it could publish 48 books.

The Madras University launched a programme of offering prizes for the best books on popular science. A number of books were published.

The Andhra University was offering prizes for books which were prescribed as texts for the Intermediate class 'Ekko As Mndi Elkodiki ?' (from where to where) and other books on popular Science were chosen for the award. The University initiated 'University Extension Lectures' on a large number of subjects including science. Lectures were delivered at specified colleges affiliated to the University (The author delivered lectures on Physics). Further the University was including essays on science in Telugu text books at the Intermediate level.

The *Telugu Bhasha Samiti* was an organization that came into existence in 1948. Soon after attaining independence there was a spirit in the country to carry knowledge to the door of the common man in regional languages. Telugu Bhasha Samiti represents the aspirations of the Telugu speaking people. It first took up the publication of an encyclopaedia in 16 volumes. As it is beyond the reach of an individual to purchase an encyclopaedia—the entire set of volumes—it was decided to publish separate volumes, each containing allied subjects, like Physics and Chemistry etc. This was for a reader interested in one or two subjects to purchase the volume. It has brought out 15 volumes and the last is ready to go to the press. (The author was the compiler-Editor of Physics and Chemistry volume). The Samiti was awarding prizes for best books including books on Science. It published popular science journals like '*Vijnana Pragathi*', [6]*Vijnana Vahini*', which were very popular. It organized popular lectures. (The author delivered a lecture on 'Time').

The Andhra Pradesh Academy of Sciences was probably the first Science Academy sponsored by a state. It has been engaged in publishing the Telugu translations of standard books on Science, organizing Science fairs, holding exhibitions ; thus arousing the scientific temper among the people.

The Telugu Academy sponsored by the Government of Andhra Pradesh was set up in 1968 as a Society and as an autonomous organiza-

tion when the Government decided to encourage Telugu as the medium of instruction at the Intermediate and Degree levels with the cooperation of hundreds of Professors, Principals and Lecturers. The Academy so far has published about 600 (Six hundred) text books on various subjects. (The author was in charge of bringing out 24 text books on Physics). 400 (four hundred) books are in various stages of production. Besides the text books the Academy published monographs, reviews, popular series, reference books and translations.

The National Council of Educational Research and Training wing of the Union Government holds National Prize Competition for Children Literature at two levels, one for the age group of 5-8 years and the other for the age group of 9-15 years. It stimulated a good number of Science Writers to write books on popular science.

'The Tirumala-Tirupati Deva Sansthanam' in Tirupati was running summer schools as a refresher course for teachers. Lectures on popular science was one of the items. (The author delivered lectures on 'Science and Religion').

Kavi Kokil Dubbari Rani Reddy was a poet of extraordinary brilliance. He evinced great interest in Science. An award was instituted in his memory. People popularising science were chosen for the award. (The author received the award in 1953).

Science journals in Telugu have had a very chequered existence. The first journal '*Vijnana*' had a very short life of 3 years. '*Adhunika Vijnanam*' could not survive for even a year and a half. '*Srishti*' was another journal. '*Science Vani*' is the only journal now catering to the needs of the entire Telugu population of over 6 crores.

Radio and Television are now playing an important role in distant tecahing and popularising science. This goes a long way in inculcating scientific temper.

Apart from institutions and organizations individuals played fruitful role even in the last century. Kandu Kuri Veeresahngam, a poet, social worker and teacher, published popular science books in the last decade of the last century. 'Science Paper Series' were published by Valluri Narasimharayndu, dealing with 'Light', 'Sound' and 'Invisible Letters'. Professors Vissa Appa Rao and Sripoda Gopala Krishnamurty authored

popular science books. Gobbum Venkata Anavda Raghawa Rao, A.V. S. Rama Rao, Dr. M. Nalini Mohana Rao, Vemaraju Bhanumnisy and Jamini Koneti Rao are some of those that applied their minds to disseminate scientific knowledge. (The author produced 30 books on popular scince in Telugu).

Terminology posed a great obstacle in the path of Science writers. The Union Government's 'Standing Commission for Scientific and Technical Terminology' held a number of Seminars and workshops in its endeavour to promote all the recognised languages. (The author participted in a seminar held at Mussoorie, in which equivalents for terms in Physics at the post graduate level were finalised). The Telugu Bhasha Samiti and the Telugu Academy had their own share in this. The latter published glossaries for several science subjects.

In the case of Telugu there is a peculiar difficulty. Most of Telugu is Sanskrit-ridden. We have 'Samasas' or compound words. In a compound word all the words should belong to the same language, Sanskrit or Telugu. This has led to the formation of Telugu equivalents consisting mostly of Sanskrit terms. With the passage of time there is relaxation and simple terms are coming into vogue. We cannot say that Telugu equivalents are finalised. Consider an example. There is a term 'wave length.' Both are simple words which could be understood by students of third class. The equivalent first coined was 'Tharanga Dairghyam' when expressed in Telugu it becomes 'Ala podavu.' These terms are rarely understood. So. there is bound to be changes in terminology as more and more writers take to popularisation.

Why are we lagging behind in popularising science ? It is because those that are capable of transmitting knowledge are indifferent. The western scientist feels his duty to communicate the scientific knowledge to the common man in a language that could be understood by him. That urge is lacking in our scientists. It seems as though they feel that they do not belong to the society. They do not realise the need for sharing their knowledge with the less fortunate.

वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति : कुछ अपेक्षित आवश्यकताएँ

महाराज नारायण मेहरोत्रा

भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति के मार्ग में जो बाधायें अनुभव की जाती रही हैं, उन्हें मैं यहाँ सार रूप में प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

जैसा कि आप सब को विदित है, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा लगभग चार लाख तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय प्रकाशित किए गए हैं जो तकनीकी तो नहीं है फिर भी वैज्ञानिक लेखों में उनका प्रयोग विशेष माने रखता है। उदाहरणार्थ किसी वस्तु की बारम्बारता प्रदर्शित करने के लिए Flooded, Abundant, Common, Frequent आदि शब्द प्रयोग में आते है, जो वस्तु की उपलब्धता की विभिन्न मात्राओं को बताते हैं। ऐसे शब्दों की मालाएँ बनाकर उनके पर्याय निर्धारित करने की आवश्यकता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रमुख उन्नत भाषाओं में प्रकाशित वैज्ञानिक लेखों के त्वरित अनुवाद की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। विकसित देशों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया है और एक दूसरे की वैज्ञानिक उपलब्धियों का भरपूर लाभ उठाया है। "प्लेनम और डेकर" जैसी अनुवाद संस्थाएँ स्थापित की जाएँ। यह आवश्यक है कि अनुवाद विषय के विशेषज्ञों द्वारा ही कराया जाए। उन्नतिशील देशों में अनुवाद में कम्प्यूटर का उपयोग तेजी से किया जा रहा है। हमें भी इस नयी वैज्ञानिक देन का अविलम्ब लाभ उठाना चाहिए।

एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शब्दाववी आयोग को शब्दावली के विवादास्पद शब्दों पर पुनर्विचार करना चाहिए। उदाहरणार्थ ज्वाइण्ट का पर्याय संधि बनाया गया है।

सामान्य अर्थ में यह ठीक है, पर भूविज्ञान में इसका प्रयोग पारिभाषिक शब्द के रूप में किया जाता है, जिसकी व्याख्या है "शैलों में एक प्रकार का विभंग या विभाजन जिनके अनुदिश शैलों का कोई सुप्रेक्ष्य संचलन नहीं हुआ होता।" यहाँ भाव 'सन्धि' का नहीं 'वियोजन' का है।

चौथी महत्वपूर्ण बात यह है कि अंग्रेजी की "इंगलिश फॉर स्पेसिफिक परपजेज सीरीज" के समान हिन्दी में भी पुस्तक-मालाएँ प्रकाशित की जाएँ। इससे हिन्दी लेखन को बढ़ावा मिलेगा।

मेरी दृष्टि में सर्वाधिक महत्व का विषय यह है कि इस गोष्ठी के पूर्व जो और महत्वपूर्ण गोष्ठियाँ तकनीकी हिन्दी के विकास के लिए आयोजित की गई थीं उन सभी संगोष्ठियों, विशेषकर रुड़की 1984, अहमदाबाद 1986, कानपुर 1986, रुड़की 1988 द्वारा पारित संस्तुतियों को कार्यान्वित कराने के लिए भगीरथ प्रयास किए जायें। अन्यथा इन गोष्ठियों को आयोजित करने का उद्‌देश्य पूरा नहीं होगा।

विज्ञान की लोकप्रियता भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही सम्भव

डॉ० रमेश चन्द्र तिवारी

सम्प्रति भारत वैज्ञानिक युग के परिवेश में प्रवेश कर चुका है। कम्प्यूटर से लेकर अन्तरिक्ष तक की यात्रा का समाचार नगरों एवं पढ़े लिखों के लिए कोई नई बात नहीं रह गई है। किन्तु अधिकांश लोग इसकी तकनीकी का कोई ज्ञान नहीं रखते। वे उन्हें अजूबा वस्तु की संज्ञा देते हैं। लोग विज्ञान की उपलब्धियों का लाभ तो कमोबेश ले रहे हैं किन्तु उनके सही उपयोग, उनके दोषों आदि से परिचित नहीं हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि कभी-कभी विज्ञान का उपयोग विपदा बन कर रह जा रहा है।

कृषि-विज्ञान से जुड़े होने के नाते मैं इतना अवश्य कहूँगा कि विज्ञान का उपयोग कृषि में काफी हो रहा है। भारी उपज देने वाली किस्में, उर्वरक, अन्य रसायन (कीट विष, खरपतवार-नाशी, रोग-नाशी) मशीनरी आदि से गाँवों के लोग परिचित तो हैं किन्तु उनका सही उपयोग नहीं कर पा रहे और परिणाम यह हो रहा है कि प्रदूषण से लेकर, मिट्टी का घटियापन, उपज में गिरावट, रसायनों का कुप्रभाव आदि आए दिन देखने में आ रहे हैं। जानकारी न होने के कारण कृषि-रसायन विष के रूप में पशु-पक्षियों एवं मानव को रोगी बनाकर मृत्यु तक पहुँचा दे रहे हैं। इन सभी का प्रमुख कारण उप-भोक्ता को विज्ञान की विस्तुओं का सही ज्ञान न होना है। यह ज्ञान काम चलाऊ पढ़े लिखे एवं अनपढ़ लोगों को उनकी अपनी भाषा में ही सही ढँग से दिया जा सकता है। भूमि प्रबन्ध एवं उर्वरक उपयोग पर विगत लगभग 10-12 वर्षों में मैंने वाराणसी, गोरखपुर एवं फैजाबाद मण्डल के (नेपाल सीमा तक) लगभग 60 से 70 हजार किसानों के सामने व्याख्यान दिया है। इन व्याख्यानों को वे मंत्रमुग्ध होकर सुनते हैं और बाद में उसका मूल्यांकन करने पर पता चला है कि 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत श्रोता एवं दर्शक इसे

समझते एवं अमल में लाते हैं । इसके पीछे वास्तविकता यह है कि ये व्याख्यान "अवधी" इलाहाबाद की (स्थानीय) ग्रामीण भाषा में होते हैं । गँवई-गँवार की संज्ञा पाने वाले कृषक भी बुद्धिमान हैं । बशर्ते कि विज्ञान जैसी विद्या को उन्हें सुग्राह्य भाषा में सम्प्रेषित किया जाय ।

विज्ञान की लोकप्रियता "सुनो, देखो और करो" पर आधारित है । उसके लिए क्षेत्रीय, स्थानीय एवं हिन्दी भाषाओं का प्रयोग एक प्रभावी योगदान कर सकता है ।

□□

भारतीय भाषाओं का माध्यम ही विज्ञान के विकास की कुंजी है

इरफान भारतीय

भारत ने विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में अपरिमित सफलता प्राप्त की है। व्यवहारिक विज्ञान में विविध आयामों का समावेश हुआ है। आज विश्व में जहाँ कम्प्यूटर का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है वहीं हमारा देश भी इस ओर अग्रसर है। अब आवश्यकता इस बात की है कि वैज्ञानिक ज्ञान एक साधारण व्यक्ति तक इस प्रकार पहुँ-चाया जाये कि हर सामान्य व्यक्ति उसे समझ सके।

आज, प्रसारण के बाद, प्रकाशन ही सूचना और शिक्षा का वह दूसरा माध्यम है जिस माध्यम से कोई अपनी बात किसी तक आसानी से पहुँचा सकने में सक्षम है। विज्ञान का प्रचार-प्रसार भी इसी माध्यम (पत्र-पत्रिकाओं) से होता रहा है। देश में विज्ञान की पत्र-पत्रिकाएँ मुख्य रूप से दो प्रकार की हैं—पहली वह जिसके माध्यम से वैज्ञानिक अपने अनुसंधानों की सूचना अन्य वैज्ञानिकों तक पहुँचाते हैं तथा दूसरी वे जिनका मुख्य उद्देश्य जनसाधारण या विद्यार्थियों को सरल भाषा में विज्ञान की प्रगति से अवगत कराना होता है।

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति संधि काल में है। आज का युग वैसे तो विज्ञान का युग है लेकिन वैज्ञानिक साहित्य नाममात्र को ही दिखाई पड़ता है। आज देश में व्यवसायिक स्तर पर सफल और वैज्ञानिक पाठक वर्ग को संतोषप्रद सामग्री देने में सक्षम यदि विज्ञान पत्रिकाएँ हैं भी तो उनकी संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है। अर्थात 'ऊँट के मुँह में जीरा' वाली कहावत चरितार्थ होती है।

कुंजी और गाइडों वाली हमारी शिक्षा में बहुत कम बच्चे स्कूली दायरे से बाहर की विज्ञान पुस्तकें और पत्रिकाएँ पढ़ पाते हैं। बच्चे क्या पढ़ें इस फैसले में बच्चों के अभिभावक भी ध्यान नहीं देते, स्पष्ट है कि ऐसे में बच्चों के कोमल मन रंगीन चित्रकथाओं, जासूसी कॉमिक्स, कल्पना लोक जैसे जादुई और तन्त्र-मन्त्र की बाजारू बाल-पत्रिकाओं में उलझ कर रह जाते हैं।

आज विज्ञान के पाठक वर्ग को सही वैज्ञानिक साहित्य देने के लिए यदि कोई विज्ञान पत्रिका प्रकाशित भी होती है तो दो-तीन या चार अंकों के बाद उसे दम तोड़ देना पड़ता है। ऐसा नहीं है कि हमारे देश में विज्ञान पत्रिकाओं की माँग नहीं है। यदि किसी पत्रिका की स्थिति खराब होती है तो उसका मुख्य कारण उसके विज्ञापन और प्रचार में कमी हो सकती है। पत्रिका की कम बिक्री (कम प्रसार) के कारण पत्रिकाओं का मूल्य बढ़ता जाता है। परिणामस्वरूप वह एक सामान्य व्यक्ति की खरीद से दूर होती जाती हैं और यही कारण है आसमान छूने वाले अधिक मूल्य की विज्ञान पत्रिकाएँ पाठक वर्ग में अपनी लोकप्रियता खो देती हैं।

विज्ञान पत्रिकाओं की असफलता का दूसरा कारण सम्पादन और मुद्रण में कमी है। जनसाधारण के लिए तो विज्ञान की भाषा बहुत कठिन है और दूसरे तकनीकी शब्दों का सीधा प्रकाशन उसे और कठिन बना देता है। एक अच्छा सम्पादक इस भाषा को सरल बनाकर जनता तक पहुँचा सकता है। किन्तु यदि पत्रिका में प्रकाशित सामग्री अच्छी है पर मुद्रण नहीं तो भी पत्रिका की लोकप्रियता कभी ऊँची नहीं उठ सकती।

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों का राष्ट्र भाषा और सभी क्षेत्रीय भाषाओं का एक सार्वभौमिक मानककोश तैयार करने पर भी विचार करना चाहिए। क्योंकि विज्ञान जन-साधारण तक राष्ट्रभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से ही पहुँच सकता है। इस स्थिति से उभरने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकारें, युवक युवतियाँ एवं वैज्ञानिक संगठन इसमें रुचि लें और विज्ञान पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ करें।

यह सत्य है कि विज्ञान जनसाधारण तक अंग्रेजी भाषा के माध्यम से कभी नहीं पहुँचाया जा सकता क्योंकि अंग्रेजी भाषा को अभी जनसंख्या के दो प्रतिशत लोग ही समझते हैं। पर दुर्भाग्य यह है कि आज का प्रकाशक वर्ग अंग्रेजी का ही दामन पकड़े हुए है। अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान, मनीला में कार्यरत भारतीय कृषि वैज्ञानिक, 'विश्व खाद्य पुरस्कार' से सम्मानित डॉ स्वामिनाथन अपने संस्मरण में लिखते हैं कि वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान की जिस गैलरी में उन्हें बैठने का कमरा मिला था, उसमें दीवार पर 'धान के हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रु' शीर्षक से बहुरंगी पोस्टर (जो कि हिन्दी में छपा था) चिपका था। डॉ० स्वामीनाथन के वहाँ पहुँचने पर प्रकाशन

विभाग के अध्यक्ष डॉ० थामस हारग्रोव ने 'फार्मर्स प्राइमर' के तमिल, कन्नड़, मराठी, उड़िया, बंगला, उर्दू और नेपाली संस्करण दिखाए।

विज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रकाशक अंग्रेजी की दौड़ में शामिल न होकर अपनी मातृभाषा को आगे बढ़ाएँ, क्योंकि भारतीय भाषायें ही विज्ञान के विकास की कुँजी हैं और यह सत्य है कि कोई भी देश विज्ञान के शीर्ष पर तभी पहुँच सकता है जब उसकी शिक्षा का माध्यम उस देश की अपनी मातृभाषा हो।

□ □

प्रतिभागी-सूची

1. श्री जी० टी० नारायण राव
   एश्री० एट्थ क्रास
   कुवम्पुनगर, मैसूर-570023
   (कर्नाटक)

2: श्रीमती हरिप्रसाद
   साइंटिस्ट (पब्लिक रिलेशन्स)
   सेण्ट्रल फूड टेक्नोलॉजिकल रिसर्च
   इंस्टीट्यूट, मैसूर-570013
   (कर्नाटक)

3. श्री जे० कोनेटीराव
   23, एम० आई० जी० द्वितीय सेक्टर
   तृतीय एम० वी० पी० कॉलोनी
   विशाखापत्तनम-17 (आन्ध्रप्रदेश)

4. श्री सम्मेता गोवर्धन,
   प्रवक्ता, वनस्पति विभाग, 3-13-
   115 कुमार-पल्ली
   पोस्ट-होनमकोंडा-506001
   (आन्ध्र प्रदेश)

5. डॉ० एम० नलिनी मोहन राव
   उपनिदेशक, राष्ट्रीय भौतिकी
   प्रयोगशाला, नई दिल्ली-12

6. डॉ० शिवगोपाल मिश्र
   प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद
   विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-
   211002.

7, श्री विजय जी
   जवाहर इण्टर कॉलेज, जारी
   इलाहाबाद-212106

8. डॉ० महेन्द्र सिंह वर्मा
   रसायन विभाग, विक्रम विश्वविद्या-
   लय, उज्जैन-456010

9. डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल
   रीडर, रसायन विभाग, इलाहाबाद
   विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-
   211002.

10. श्री रवीन्द्र वर्मा

11 श्रीमती डॉ०बी० अनुराधा, साइंटिस्ट
   (पब्लिक रिलेशन्स) सेण्ट्रल फूड
   टेक्नोलॉजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट
   मैसूर-570013 (कर्नाटक)

12. श्री रवीन्द्र नाथ खरे

13. डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल
प्रोफेसर, रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक, हरियाणा

14. डॉ० रामगोपाल
उपनिदेशक, रक्षा प्रयोगशाला
जोधपुर, राजस्थान-342001

15. डॉ लोकेन्द्र सिंह
रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर
(राजस्थान) 342001

16. श्री रमेश दत्त शर्मा
प्रधान संपादक, खेती, आई० ए० आर० आई० (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्) नईदिल्ली-12

17. श्री श्याम सुन्दर शर्मा
सम्पादक, 'विज्ञान प्रगति', प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिल साइड रोड, नई दिल्ली-110012

18. श्री तुरशन पाल पाठक
सम्पादक एवं विशेष अधिकारी, भारत की सम्पदा, सी० एस० आई० आर०, नई दिल्ली-110012

19. डॉ० सुभाष लखेड़ा
केन्द्रीय सचिवालय, हिन्दी परिषद्
एक्स वाई 68, सरोजिनी नगर
नई दिल्ली-110023

20. डॉ० गोबिन्द प्रसाद कोठियाल
सम्पादक, 'वैज्ञानिक'
हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्
सूचना प्रभाग, सेण्ट्रल काम्प्लेक्स
भाभा-परमाणु अनुसंधान केन्द्र
बम्बई-400085

21. श्री मनोज कुमार पटैरिया
भारत की सम्पदा, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
सी० एस० आई० आर०
हिल साइड रोड, नई दिल्ली-12

22. डॉ० रामकृष्ण पाराशर
प्रधान संपादक, प्रसार निदेशालय
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वद्यालय, फैजाबाद (उ० प्र०)

23. प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
संपादक, 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-211002.

24. डॉ० मनोहर मो० मोघे
घरकुल 'नाइक वाडी' आरे मार्ग, गोरेगाँव, पूर्व बम्बई-400063

25. आचार्य रामचरण मेहरोत्रा
अवकाशप्राप्त कुलपति
रसायन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

26. श्री विश्वम्भर प्रसाद 'गुप्तबंधु'
बी-154 लोक विहार, पीतमपुरा
नई दिल्ली-110034

27 श्री शुकदेव प्रसाद
निदेशक, विज्ञान वैचारिकी संस्थान
34 एलनगंज, इलाहाबाद-
211002

28. डॉ० सुप्रभात मुकर्जी
ज्योत्सना कुटीर, 189-बी/2
अलोपीबाग, इलाहाबाद-211006

29. श्री दिनेश द्विवेदी मणि
शोध छात्र, शीलाधर मृदा अनु-
संधान संस्थान, इलाहाबाद-
211002

30 श्री द्वारिका प्रसाद शुक्ल
मुख्य प्रशिक्षक
स्टाफ प्रशिक्षण केन्द्र, भारतीय स्टेट
बैंक, इलाहाबाद-211002

31. स्वामी डॉ० आत्मानन्द परमहंस
गणित विभाग, काशी विश्वविद्यालय
वाराणसी-5

32. श्री गिरिराज किशोर
रचनात्मक लेखन एवं प्रकाशन केन्द्र
आई० आई० टी०, कानपुर
208016 (उत्तर प्रदेश)

33. डॉ० हरिमोहन कृष्ण सक्सेना
उपनिदेशक (तकनीकी)
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, मानव संसाधन विकास
मंत्रालय, भारत सरकार
नई दिल्ली-110066

34. श्री प्रेमानन्द चंदोला
ई-1, साकेत, एम० आई० जी०
फ्लैट, नई दिल्ली-110017

35. प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव
46 पाण्डेय बाजार, आजमगढ़
(उ० प्र०)-276001

36. श्री नारायण नरहर भिसे,
वैज्ञानिक, केन्द्रीय भवन अनुसंधान
संस्थान, रुड़की-247667
(उ० प्र०)

37. श्री विष्णु दत्त शर्मा
राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला
हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-
110012

38. डॉ० अशोक कुमार गुप्ता
कृषि रसायन विभाग
इलाहाबाद एग्रीकल्चर इंस्टीट्यूट
इलाहाबाद-211007

39. श्री राजशेखर भूसनूरमठ
के० सी० स्टाफ क्वार्टर्स, माला-
मड्डी, धारवाड़-580007
(कर्नाटक)

40. श्रीमती डॉ० ज्योत्स्ना पटनायक,
प्रवक्ता, रसायन विभाग, रीजनल
कॉलेज ऑव एजूकेशन, भुवनेश्वर-
751007 (उड़ीसा)

41. श्री पी० रंगनाथ
29-3-20 सी गोवर्नोरपेट

(वेंकटेश्वर स्ट्रीट) विजयवाड़ा-520002 (आन्ध्रप्रदेश)

42. श्री अनिल कुमार शुक्ल
संयुक्त मंत्री
विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-211002

43. श्री अरविन्द मिश्र
मुख्य कार्यकारी अधिकारी, मत्स्य पालक विकास अभिकरण, अधिकारी आवास, झांसी-3

44. श्री आशुतोष मिश्र
आई० आई० टी०, कानपुर-208016 (उत्तर प्रदेश)

45. श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी
स्वतन्त्र लेखन
5 ई/4 स्टाफ क्वार्टर्स, लिडिल रोड जार्ज टाउन, इलाहाबाद-211002

46. डॉ० डी० एन० सिनहा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, एनाटॉमी विभाग, महारानी लक्ष्मी बाई मेडिकल कॉलेज, झाँसी-384128 (उत्तर प्रदेश)

47. श्री चन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव
शोध छात्र, शीलाधर मृदा अनुसंधान संस्थान, इलाहाबाद-211002

48. प्रो० सी० डी० पाटिल
एल० वी० डी० कॉलेज, रायचूर (कर्नाटक)-584101

49. श्री वसंतराव वेंकटराव
543-बी, एम० एस० एम० कॉलोनी, ज्ञानपुरम, विशाखापत्तनम (आन्ध्रप्रदेश) -530004

50. डॉ० महाराज नारायण मेहरोत्रा
प्रोफेसर, भौमिकी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-5

51. डॉ० रमेशचन्द्र तिवारी
प्रोफेसर, मृदा रसायन विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-5

52. श्री इरफान भारतीय, कोआर्डिनेटर स्टूडेण्ट्स साइंस सोसायटी, 67, अंता, शाहजहाँपुर-242001